

# शोध दिशा

शोध अंक 7

जनवरी-जून 2009

100 रुपए

## संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,  
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)  
फोन : 01342-263232  
ई-मेल : giriraj3100@rediffmail.com  
वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

## क्षेत्रीय कार्यालय

दिल्ली एन॰सी॰आर॰  
अनुभूति  
सी-106, शिव कला  
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा  
फोन : 09928570700

## राजस्थान

अंकुर गोयल  
402, यूनीक सांघी अपार्टमेंट  
सांघी फार्म, महावीर नगर, जयपुर (राज॰)  
फोन : 0141-2722548, 09351553454

## हरियाणा, हिमाचल एवं पंजाब

डॉ॰ हरिहरण वर्मा  
710/35 जनता कालोनी  
रोहतक (हरियाणा) 124001  
फोन : 01262-248211, 09355676460

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

## संपादक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

## प्रबंध संपादक

डॉ॰ मीना अग्रवाल

## संयुक्त संपादक

मनोज अबोध

## सह संपादक

डॉ॰ रश्मि त्रिवेदी

## कला संपादक

गीतिका गोयल  
अनुभूति

## उपसंपादक

डॉ॰ अशोककुमार

## विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

## आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

## शुल्क

वार्षिक शुल्क : चार सौ रुपए

यह प्रति : एक सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

## परामर्श-मंडल

- डॉ. आर.पी.सिंह (पूर्व कुलपति, मेरठ विश्वविद्यालय) प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली (उ.प्र.)
- डॉ. अशोक चक्रधर, प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- डॉ. हरिमोहन, प्रोफेसर हिंदी विभाग, के.एम.मुंशी हिंदी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
- डॉ. हरमहेंद्रसिंह बेदी, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय, अमृतसर
- डॉ. रामसजन पांडेय, प्रोफेसर हिंदी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)
- डॉ. योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण', (पूर्व प्राचार्य) 74/3 नया नेहरूनगर, रुड़की (उत्तराखंड)
- डॉ. शारदा शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, मुंलां एवं जंनांकं महाविद्यालय, सहारनपुर (उ.प्र.)
- डॉ. मुकेश गर्ग, रीडर हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ. माया टाक, प्रोफेसर संगीत विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
- डॉ. संतराम वैश्य, प्रोफेसर हिंदी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखंड)
- डॉ. लालबहादुर रावल, प्राचार्य, आर.एस.एम. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धामपुर (उ.प्र.)
- डॉ. मंजुलाकुमार, प्राचार्या, रानी भाग्यवती देवी महिला महाविद्यालय, बिजनौर (उ.प्र.)
- डॉ. हरिशरण वर्मा, 710/35 जनता कालोनी, रोहतक (हरियाणा) 124001
- डॉ. महेश दिवाकर, अध्यक्ष हिंदी विभाग, गुलाबसिंह कॉलेज, चाँदपुर (उ.प्र.)
- डॉ. मिथिलेश दीक्षित, अध्यक्ष हिंदी विभाग, बी.डी.एम.एम. महिला महाविद्यालय, शिकोहाबाद (उ.प्र.)
- डॉ. महेशचंद्र, रीडर हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
- डॉ. शंकरलाल शर्मा, अध्यक्ष हिंदी विभाग, आर.एस.एम. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धामपुर (उ.प्र.)
- डॉ. आद्याप्रसाद द्विवेदी, पूर्व अध्यक्ष हिंदी विभाग, सतीशचंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया
- डॉ. जितेंद्र वत्स, रीडर हिंदी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया (बिहार)
- डॉ. शंभुनाथ तिवारी, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भीलवाड़ा (राज.)
- डॉ. सुरेंद्र विक्रम, अध्यक्ष हिंदी विभाग, लखनऊ क्रिश्चियन कॉलेज, लखनऊ (उ.प्र.)
- डॉ. श्यामधर तिवारी, प्रोफेसर हिं.वि., संघटक महाविद्यालय पौड़ी, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर
- डॉ. प्रवीणकुमार वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, च सनातन धर्म कॉलेज, पलवल (हरियाणा)
- डॉ. संतोषकुमार गौड़ रीडर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
- डॉ. उषारानी वर्मा, रीडर हिंदी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रुद्रपुर (उत्तराखंड)
- डॉ. सभापति मिश्र, अध्यक्ष हिंदी विभाग, हंडिया पोस्टग्रेजुएट कॉलेज, हंडिया (इलाहाबाद)

## हिंदी शोध : कुछ अनबूझे सवाल

एक लेख भेजने की तैयारी में लगा हूँ। कुछ ही पंक्तियाँ लिखी होंगी कि घंटी बजती है। बाहर जाकर देखता हूँ तो एक युवक को खड़ा हुआ पाता हूँ। सामान्य परिचय के उपरांत वह अपना मंतव्य प्रकट करता है। मैं उसको साथ लेकर अध्ययनकक्ष में आ जाता हूँ।

युवक फिर दुहराता है— सर, मुझे पी-एच०डी० करनी है। मुझे उसके लिए क्या करना होगा?

मेरी यह आदत है कि मैं शोध के लिए आनेवाले छात्रों को निरंतर टालने की कोशिश करता हूँ। एकदम राजी नहीं होता। 'मेरे पास स्थान नहीं है। किसी दूसरे प्राध्यापक के पास क्यों नहीं चले जाते हो?' यदि छात्र जिज्ञासु है तो उटा रहता है अन्यथा चला जाता है। उस दिन भी कुछ ऐसा ही हुआ। वह ज़िद करता रहा तो मैंने पूछ ही लिया— किस विषय पर पी-एच०डी० करना चाहते हो?

'सर, हिंदी में।' मैंने उसकी ओर घूरकर देखा। मेरा मंतव्य था किस विधा में अथवा किस टॉपिक पर शोधकार्य करने का मन है! मैंने फिर कहा— 'वह तो ठीक है। किस विषय पर शोध करोगे यानी क्या टॉपिक रहेगा?'

'सर, जो भी आप ठीक समझें।'

'यानी तुम किसी भी विषय पर शोध कर सकते हो?' स्वर में कुछ तीखापन उभरा।

'सर, यह तो मैंने सोचा ही नहीं है। आप जैसा आदेश देंगे।'

यहीं से शुरू होती है शोध की वह कहानी, जो हमारी वर्तमान शोध-व्यवस्था और शोध-प्रणाली की कोख से जन्म लेती है।

जिन्होंने किसी भी प्रकार अपनी स्नातकोत्तर परीक्षा में पी-एच०डी० उपाधि की अर्हता वाले अंक प्राप्त कर लिए हैं, वे परीक्षा-परिणाम के तुरंत बाद पी-एच०डी० के लिए चक्कर काटना आरंभ कर देते हैं। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि पी-एच०डी० कोई परीक्षा नहीं है, एक साधना है, तप है अथवा ऐसा ही कुछ। शोध की प्रविधि अथवा परंपरा से अनभिज्ञ ऐसे छात्र, जिनमें प्रायः छात्राओं की संख्या अधिक होती है, उपाधि प्राप्त करने की लालसा में शोध-निदेशकों के पास पहुँचते हैं। जबसे पी-एच०डी० और नौकरी परस्पर जुड़ गए हैं, पी-एच०डी० उपाधि नौकरी के लिए अनिवार्यता बन गई है, ज्ञान और मौलिक शोध का यह क्षेत्र भी अन्य उपाधियों की तरह दुष्चक्र में फँसकर रह गया है।

अब तो कारखानों में निर्मित माल की तरह शोध-प्रबंधों का उत्पादन हो रहा है। प्रायः कहा जाता है 'एक दीपक से दूसरा दीपक जलाओ', लेकिन अब तो एक शोध-प्रबंध से दूसरा शोध-प्रबंध तैयार हो रहा है; और हम बिना किसी भेदभाव के, उदारता के साथ, भाईचारा निभाते हुए सभी को शोध-उपाधियाँ बाँटते चले जा रहे हैं। शायद यह हमारी मजबूरी है या फिर

हमारे पास कोई चारा ही नहीं है। क्या आपको पता है कि इसके लिए भी अब भरपूर 'चारा' डाला जाने लगा है ताकि हम बिना विचारे 'बेचारे' बनकर पी-एच०डियों की फौज तैयार करते चले जाएँ। और हम कर रहे हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व तक हमारे देश के केवल आठ विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय में शोधकार्य होता था, जबकि आज 80 से अधिक विश्वविद्यालयों में उपाधिपरक शोधकार्य हो रहा है। भारत में सर्वप्रथम शोध-उपाधि (डी०लिट्) सन् 1934 में श्री पीतांबरदत्त बड़थवाल को हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी से प्राप्त हुई। सन् 1950 तक भारतीय विश्वविद्यालयों ने 49 अनुसंधानों को हिंदी में शोध-उपाधियाँ प्रदान कीं। सन् 1970 में यह संख्या 1800 थी और 1979 में 4,500 से अधिक हो चुकी थी। अब तो प्रतिवर्ष लगभग 500 शोध-छात्रों को ये उपाधियाँ प्राप्त हो रही हैं। मेरे द्वारा संपादित शोध-संदर्भ के चारों भागों में सन् 2003 तक स्वीकृत शोध-प्रबंधों की संख्या 15,000 से अधिक थी। निश्चय ही यह अब 20,000 के लगभग होगी।

शोध-प्रबंधों की इस संख्या को देखकर मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाना अप्रत्याशित नहीं है। इतना व्यापक शोधकार्य और केवल एक विषय में; हमारे शोध की द्रुतगति, शोध-विभागों की सक्रियता, शोध-निदेशकों और शोधकर्ताओं के समर्पण के प्रति आदर का भाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन क्या ऐसा वास्तव में है?

शोध-सूचियों के बनाते समय जो तथ्य सामने आए हैं, कम-से-कम उनसे तो ऐसा नहीं लगता है। एक ही शीर्षक पर अनेक विश्वविद्यालयों में शोध-प्रबंधों की स्वीकृति केवल इस बात की ओर संकेत नहीं करती कि ऐसा अनजाने में हुआ होगा, बल्कि इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है कि ऐसा जानबूझकर भी हुआ होगा। मैं ऐसा नहीं कहता कि दो दूरस्थ साहित्यकारों के मन में एक जैसे भाव-विचार पैदा नहीं हो सकते, होते ही हैं; लेकिन जब विषयों की पुनरावृत्ति में शब्दों की भी हरेफेर न हो तो शंका की संभावना तो पैदा हो ही जाती है। यहाँ कुछ विषयों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। जैसे— प्रेमचंद की कहानियों का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन (राजस्थान विश्वविद्यालय 1972 तथा दिल्ली विश्वविद्यालय 1987), प्रेमचंद के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन (महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक 1981, गोरखपुर विश्वविद्यालय 1994, मगध विश्वविद्यालय 2003)। प्रेमचंद के उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा का अन्वेषण (भागलपुर विश्वविद्यालय 1983) तथा प्रेमचंद के उपन्यासों पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव (राजस्थान विश्वविद्यालय 1992) जैसे विषय तो अनेक मिल जाएँगे।

शोध की दिशा निर्धारित करने में चार तत्त्व मुख्य रूप से उत्तरदायी होते हैं— 'शोध-कर्ता, शोध-निदेशक, शोध-समितियाँ, और शोध-परीक्षक।

शोधकर्ता तो इस उद्देश्य से आता ही है कि उसे येन-केन-प्रकारेण शोध-उपाधि प्राप्त हो जाए। आप सहज प्रश्न उठा सकते हैं कि मैंने 'येन-केन-प्रकारेण' शब्द-समूह का प्रयोग क्यों किया है? आपका और शोध के प्रति चिंतित हर व्यक्ति का यह प्रश्न स्वाभाविक है। हमें यह स्वीकार करना ही चाहिए कि पी-एच०डी० उपाधिधारी अपने उस विषय का विशिष्ट विद्वान् होता है, जिस विषय पर उसने शोध-प्रबंध तैयार करके विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया है और

विश्वविद्यालयों के विद्वान् परीक्षकों ने उस प्रबंध को मौलिकता का प्रमाणपत्र देकर उसे शोधोपाधि के लिए उपयुक्त ठहराया है।

मुझे यह कहते हुए खेद है कि इन प्रबंधों के अधिकांश लेखक या 'अनुसंधाता' अपने विषय से नितांत अपरिचित, अनभिज्ञ और अनजान होते हैं। किसी मौलिक शोध-दृष्टि का अभाव तो उनमें होता ही है, कई बार तो ऐसा भी आभासित होता है कि उन्होंने विषय के साथ न्याय ही नहीं किया। आप छूट दें तो मैं कहना चाहता हूँ कि 'अन्याय' किया है। इसके लिए जिम्मेदार कौन है? आगे इस पर भी चर्चा करेंगे।

शोधछात्र शोध की प्रविधि से नितांत अपरिचित होते हैं। शोध-प्रक्रिया का कमतर ज्ञान भी उन्हें नहीं दिया जाता है। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि उनके शोध का लक्ष्य क्या है?

अनुसंधान-प्रक्रिया का एक प्रमुख तत्त्व है वैज्ञानिक परीक्षण, क्योंकि यह परीक्षण सोद्देश्य, क्रमबद्ध एवं नियोजित होता है। यह अनुसंधान निरीक्षण तक सीमित न रहकर समस्या का निदान भी खोजता है। इसलिए अनुसंधान की प्रक्रिया तार्किक होती है, जिसमें गहनता और विशिष्टता का समावेश होता है। यह क्रिया खोखले शाब्दिक तर्कों पर निर्भर न होकर प्रदेय के ठोस धरातल पर आधारित होती है।

शोधकर्ता को इस तथ्य से भी परिचित होना चाहिए कि अनुसंधान और आलोचना में भारी अंतर है। हिंदी में प्रस्तुत किए जानेवाले शोध-प्रबंध प्रायः समीक्षा या आलोचना की श्रेणी तक सीमित रह जाते हैं। वस्तुतः शोधार्थी की स्थिति आलोचक से थोड़ा भिन्न होती है। समीक्षक या आलोचक एक सीमा तक अपनी व्यक्तिगत रुचियों तथा वैयक्तिक तत्त्वों के आधार पर समीक्षा-कर्म में तत्पर हो सकता है। इसके विपरीत शोधार्थी को व्यक्तिगत रुचियों से तटस्थ और निरपेक्ष रहकर शोधकार्य में लगना अनिवार्य है। समीक्षक की दृष्टि आत्मपरक भी हो सकती है, जबकि शोधार्थी को यथासंभव वस्तुपरक दृष्टि अपनानी पड़ती है। समीक्षा-कार्य में व्याख्या की प्रमुखता होती है, जबकि शोधकार्य में तथ्यों की तर्कपूर्ण योजना की। लक्ष्य की दृष्टि से भी दोनों कार्यों में भिन्नता रहती है। समीक्षक का लक्ष्य कृति की रचना-प्रक्रिया और उसके सौंदर्यान्वेषण में केंद्रित होता है, जबकि शोधार्थी को अब तक के ज्ञान में वृद्धि करने के लिए कृतसंकल्प होकर आगे बढ़ना होता है। उसकी दृष्टि में कुछ नया प्राप्त करने की लक्ष्य विशिष्ट होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अनुसंधान में सत्यान्वेषण, नीर-क्षीर-विवेक दृष्टि, वैज्ञानिक पद्धति, चिंतन मनन में सातत्य, केंद्रीयता और संतुलन, नवीनता और मौलिकता, तर्कसम्मत विभाजन और प्रतिपादन की वैज्ञानिक शैली आवश्यक होती है। इस प्रकार शोध का मूल लक्ष्य है— सत्योपलब्धि।

लेकिन शोधार्थी अपने शोध-विषय के साथ कितना जुड़ पाते हैं और उसके साथ कितना न्याय कर पाते हैं, इस पर ही शोध और शोध-प्रबंध का स्तर निर्भर करता है।

एक तथ्य यह भी है कि शोध-प्रबंधों के लेखन से कुछ व्यक्ति अब 'बाकायदा' अपनी रोजी-रोटी कमा रहे हैं। किसी भी विषय पर और कितना ही छोटा या बड़ा शोध-प्रबंध लिखकर दिया जा रहा है। निर्भर इस पर करता है कि शोधकर्ता की जेब कितनी भारी है और वह 'लेखक' को कितना आभारी कर सकता है। आश्चर्य तो तब होता है, जब कई जिम्मेदार

व्यक्तियों के पत्र आते हैं कि वे शोध-प्रबंध के लेखन में शोधार्थी की भरपूर सहायता कर सकते हैं।

मैंने ऐसे कितने ही शोधप्रबंधों को शोध-उपाधि के लिए अयोग्य ठहराया है और अपनी विपरीत टिप्पणी दी है, किंतु मुझे पता है कि मेरी टिप्पणी से भले ही मुझे सुख मिला हो; किंतु शोधछात्र को शोध-उपाधि फिर भी मिल गई होगी। इस पर 'टिप्पणी' करना उचित नहीं है कि कैसे?

विश्वविद्यालयों में शोधप्रबंध की परीक्षा के बाद मौखिक परीक्षा का प्रावधान है। हम जानते हैं कि शोधछात्र अपने विषय से पूर्णरूपेण अनजान है। शोध-उपाधि हेतु की जानेवाली मौखिक परीक्षा में शोधछात्र के 'अज्ञान' का ज्ञान हमें भली प्रकार हो जाता है, फिर भी हम अपनी उदारता के वशीभूत उसे शोधोपाधि प्रदान करने की संस्तुति कर ही देते हैं।

शोध का दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है शोध-निदेशक। शोध-निदेशक वह महत्त्वपूर्ण कड़ी है, जो शोधार्थी को गंतव्य तक पहुँचाता है, उसके डगमगाते प्रत्येक कदम को संभालता है, उसे कार्य की ऊर्जा देता है, विषय की दृष्टि देता है, सत्यान्वेषण की रुचि व क्षमता जाग्रत करता है, सूक्ष्म निरीक्षण की प्रेरणा देता है और बार-बार आत्मविश्वास जगाता है, ताकि शोधछात्र अपना शोधकार्य पूरी लगन और दक्षता से कर सके।

शोध-निदेशक अनुभवी तथा शोधोपाधि-प्राप्त प्राध्यापक होता है। विश्वविद्यालयों तथा शोधविभागों में निदेशक कतिपय औपचारिकताओं के पूरा हो जाने के बाद बनाए जाते हैं। इनमें पाँच या सात वर्षों का स्नातकोत्तर अध्यापन-अनुभव भी सम्मिलित है। कई विश्वविद्यालयों ने शोधोपाधि प्राप्त उन प्राध्यापकों को भी शोध-निदेशक बनने की आज्ञा प्रदान की है, जो स्नातक कक्षाओं में अध्यापन कर रहे हैं, किंतु जिनके शोध-आलेख शोधपत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। कुछ दशक पहले तो शोधोपाधि समिति की बैठक में इस नियम को भी शिथिल करके शोधोपाधि के बिना भी कुछ अनुभवी प्राध्यापकों को शोध-निदेशक के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी। अब प्रायः ऐसी स्थिति नहीं है।

शोध-निदेशकों को अद्यतन साहित्य और उनसे संबंधित शोध से जुड़ना भी आवश्यक है ताकि वे भावी शोध की दशा निर्धारित कर सकें और अपने शोधछात्रों को शोध की दिशा दे सकें।

एक निदेशक के निर्देशन में शोधकार्य करनेवाले शोधार्थियों की संख्या भी निश्चित रहती है। प्रायः शोध-निदेशक एक बार में छह: शोधार्थियों को शोधकार्य करा सकते हैं।

एक अन्य स्थिति पर भी ध्यान आकर्षित करने की आवश्यकता है। प्रत्येक शोध-निदेशक हर प्रकार के शोधविषय पर शोधकार्य करा सके, यह संभव नहीं है। अतः शोध-निदेशक का चुनाव करते समय दो स्थितियाँ हो सकती हैं—

1. विषय के अनुसार निदेशक का चुनाव अथवा
2. निदेशक के अनुसार विषय का चुनाव।

दोनों ही स्थितियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं किंतु शोधछात्रों की बढ़ती हुई संख्या और शोध-निदेशकों की माँग के अनुसार अब ऐसा होना संभव नहीं रह गया है। प्रायः अधिकांश शोध-निदेशक विविध क्षेत्रों में शोधछात्रों का पंजीयन करा देते हैं। परिणाम वही होता है कि

शोधछात्र अपनी समस्याओं के समाधान के लिए भटकता ही रहता है।

इसका एक दूसरा पहलू भी है। शोधकार्य में शोधार्थी को अपनी रुचि के अनुसार विषय और शोध का क्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। किंतु मेरे एक साथी ऐसे भी हैं, जो केवल जैन-साहित्य में ही शोध कराते हैं। यदि छात्र की गति इस क्षेत्र में नहीं भी है, तब भी उनके साथ काम करने का अर्थ है, उनके अनुसार कार्य करना। इस स्थिति में शोधकार्य के प्रति कितना न्याय होता होगा, यह कौन समझेगा!

जैसा कि मैंने पहले कहा है, नौकरी के लिए शोधोपाधि की अनिवार्यता और इस उपाधि को प्राप्त करने की बलवती इच्छा के कारण शोधछात्रों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हुई है। शोधछात्रों को बार-बार शोध-निदेशकों के पास चक्कर लगाते हुए देखा जा सकता है। इनमें कितने ही ऐसे छात्र भी होते हैं, जो शोध की क्षमता से नितांत शून्य होते हैं, लेकिन शोधोपाधि उनकी ज़रूरत होती है।

यहीं से शोध में विषम चक्र प्रारंभ होता है। शोध-निदेशकों और शोधछात्रों के बीच माँग और पूर्ति का नियम आरंभ हो जाता है और शुरू होता है धन का खेल। यह खेल दस-बीस हजार से लाख रुपए के बीच फैला है।

कुछ शोध-निदेशकों ने पूरी कार्यशालाएँ स्थापित कर रखी हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार प्रत्येक विषय का शोधप्रबंध तैयार किया जा सकता है। शोधछात्र पंजीकरण फार्म पर हस्ताक्षर करने के बाद निश्चित हो जाता है। शोधप्रबंध की रूपरेखा, उसका लेखन, विश्वविद्यालय में प्रस्तुति, परीक्षकों की नियुक्ति और मौखिक परीक्षा के लिए आनेवाले विद्वान् तक की व्यवस्था की जिम्मेदारी संबंधित पक्ष की होती है। शोधछात्र को तो केवल उनकी 'आवश्यकता' की पूर्ति-भर करनी होती है।

कुछ शोध-निदेशकों ने शोध के निश्चित 'फारमेट' तैयार कर रखे हैं। उन्हें उसमें संबंधित सामग्री को भरना-भर होता है। जैसे तुलसी की भाषा का समाज-भाषावैज्ञानिक अध्ययन। इसमें आप सूर, जायसी, कबीर, रसखान, पद्माकर, घनानंद कुछ भी भर सकते हैं। कई अध्याय तथा अध्यायों के उपशीर्षक नितांत एक ही प्रकार के होंगे। शेष में भाषा-व्याख्या एक ही होगी। हाँ उदाहरण बदले हुए होंगे।

इसी तरह 'संगीत तत्त्वों की दृष्टि से प्रसाद के काव्य का अनुशीलन' में और 'संगीत तत्त्वों की दृष्टि से पंत या महादेवी के काव्य का अनुशीलन' में प्रारंभिक दो या तीन अध्यायों में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। दो या तीन अध्याय ऐसे होंगे, जिनमें संबंधित कवि के काव्य से उदाहरणों का संग्रह किया जाएगा और शोधप्रबंध पूरा।

ऐसे ही एक शोधार्थी से मैंने शोध समिति की बैठक में एक सामान्य-सा प्रश्न पूछ लिया था। एक तो उसने इस द्विआयामी शोध के लिए संगीत का किसी भी प्रकार का अध्ययन नहीं किया था। उसकी तैयारी भी इस दृष्टि से बिल्कुल नहीं थी। मैंने उससे मात्र इतना पूछा था कि ताल और लय किसे कहते हैं? क्या संगीत-संबंधी अध्ययन के लिए इतनी मोटी-सी जानकारी भी ज़रूरी नहीं थी? किंतु शोधनिदेशक के बने-बनाए 'फारमेट' में वह शोधकार्य संपन्न होना था। हुआ ही होगा।

यही दशा तुलनात्मक शोधकार्यों की है। किन्हीं भी दो साहित्यकारों के साहित्य की

तुलना करते समय उनके युग, युग की परिस्थितियों के प्रभाव, विषय-प्रतिपादन और प्रतिपाद्य में समानता अथवा अंतर, भाषा और कला की दृष्टि से वैशिष्ट्य आदि का व्यापक अध्ययन करके निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाने चाहिए, किंतु तुलनात्मक शोधप्रबंधों में तुलना का अंश कितना होता है, यह विवाद और संवाद का विषय है।

शोधकार्य के लिए शोध-समितियों की भूमिका को भी मैं अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ। अपने विश्वविद्यालय में शोध-समिति के संयोजक तथा अन्य विश्वविद्यालयों में विषय-विशेषज्ञ के रूप में मैंने वहाँ की गतिविधियों को गहराई से देखा है और उनका हिस्सा बना हूँ।

शोध समिति की बैठक से पूर्व विश्वविद्यालय में प्रस्तुत की गई रूपरेखाओं की एक-एक प्रति सभी संबंधित सदस्यों को भेजी जाती है ताकि वे उन रूपरेखाओं का अध्ययन करके उनके प्रति अपना अभिमत निर्धारित कर सकें। मैंने प्रायः देखा है कि शोध-समिति के सदस्य उन रूपरेखाओं का अध्ययन भी नहीं करते। कई बार वे उन्हें अपने साथ लाना भी उपयुक्त नहीं समझते हैं।

अपनी शोध-समितियों की बैठक में मैंने अनेक शोधार्थियों की रूपरेखाओं तथा उनके विषयों में व्यापक परिवर्तन कराए हैं ताकि उनके शोध की दिशा निर्धारित हो सके।

शोध-समितियों का यह भी दायित्व है कि वे अनुपयुक्त विषयों को अस्वीकार करें तथा उपयुक्त विषयों पर अपनी व्यावहारिक टिप्पणियाँ दें। यद्यपि उन पर भी कई प्रकार के दबाव होते हैं, फिर भी न्याय और अन्याय, उपयुक्त और अनुपयुक्त के बीच विभाजक रेखा खींचना तो ज़रूरी है ही।

शोध के गिरते हुए स्तर पर अपनी चिंता प्रकट करते हुए कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने शोध-नियमों में परिवर्तन किए हैं। कुछ विश्वविद्यालयों में शोधछात्रों के पंजीयन से पूर्व परीक्षा का प्रावधान किया गया है। शोध-निदेशकों की अर्हता के लिए कम-से-कम पाँच शोध आलेखों का प्रकाशित होना अनिवार्य कर दिया गया है। कुछ विश्वविद्यालयों में शोधप्रबंध के प्रस्तुत करने से पूर्व शोधार्थी के कम-से-कम दो शोध आलेख प्रकाशित होने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

अब चर्चा करें शोधप्रबंध के परीक्षकों की। कितने ही विधायी प्रबंध कर लीजिए; किंतु उनका परिपालन करनेवाला तंत्र यदि जागरूक नहीं है तो भी हम घाटे में ही रहेंगे।

विश्वविद्यालयों के नियमानुसार शोधप्रबंधों के परीक्षकों का पैनल दो स्तरों पर तैयार होता है— शोध-निदेशक तथा शोध-समिति का संयोजक। विश्वविद्यालय का निर्देश रहता है कि परीक्षकों के पैनल में विश्वविद्यालयों के 'प्रोफेसर' तथा 'रीडर' रखे जाएँ।

संभवतः विश्वविद्यालयों ने यह नियम किन्हीं विवशताओं या आवश्यकताओं के तहत बनाया होगा। इसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं है। लेकिन मैंने इस पर शंका उठाई है। पहली तो यह कि क्या शोध के हर क्षेत्र की जानकारी केवल विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर्स तथा रीडर्स के पास ही होती है?

दूसरी इस समय देश के सभी विश्वविद्यालयों में कितने प्रोफेसर्स और रीडर्स हैं, क्या उनकी कोई विधिवत् सूची विश्वविद्यालयों के पास है? मेरी जानकारी में कितने ही ऐसे



विश्वविद्यालय हैं, जिनमें हिंदी-विभागों में प्रोफेसर पद ही नहीं हैं और हैं भी तो उन पर कोई प्राध्यापक नियुक्त नहीं है।

विश्वविद्यालय की शोध-समिति के अपने संयोजक-काल में मैंने अपने विश्वविद्यालय को परीक्षकों के एक सौ से अधिक पैनल भेजे होंगे। इस अनुपात से मुझे 600 से अधिक प्रोफेसर्स और रीडर्स की सूची दरकार थी। यदि यह नहीं थी तो स्वाभाविक है कि परीक्षकों की पुनरावृत्ति हुई होगी। ठीक यही स्थिति शोध-निदेशकों के सामने भी रही होगी।

अब वास्तविकता का दिग्दर्शन करते हैं। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि किसी भी नामचीन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के पास शोधप्रबंधों का ढेर लग जाता है। तब क्या यह संभव है कि शोधपरीक्षक प्रबंध पर अपनी आख्या देने से पूर्व उसका बारीकी से अध्ययन कर पाएगा? निश्चय ही नहीं। प्रायः शोधपरीक्षक शोधसार या रूपरेखा को पढ़कर अपनी संस्तुति कर देते हैं। कई बार तो शोधप्रबंध का एक शब्द भी उनकी निगाह से नहीं गुज़रता। प्रायः एक वाक्य जोड़ दिया जाता है— शोधप्रबंध की कतिपय शंकाओं का समाधान मौखिक परीक्षा के समय किया जाएगा। यानी अब आप उन्हीं परीक्षक को मौखिक परीक्षा के लिए भी आमंत्रित करें ताकि उनकी शंकाओं का समाधान हो सके।

प्रायः मौखिक परीक्षा भी औपचारिकता का महान उदाहरण बन जाती है। सर्वप्रथम तो शोध-परीक्षक अपने गंतव्य को जाने की जल्दी में होता है। इसलिए उसका बिल समय से बन जाए, उसका भुगतान हो जाए, इस व्यवस्था में ही उसका अधिकांश समय बीत जाता है।

इसके अतिरिक्त यदि शोध-परीक्षक को मौखिक परीक्षा के लिए आमंत्रित नहीं किया गया है, तो उसके परीक्षण के बिल का भुगतान विश्वविद्यालय से आ जाए, इसकी संभावना प्रायः धूमिल ही होती है। कितने ही विश्वविद्यालयों के शोधप्रबंधों के परीक्षक होने के नाते मैं यह बात पूरे विश्वास से कह सकता हूँ। इसलिए भी शोधप्रबंधों का परीक्षण औपचारिकता-मात्र रह गया है।

शोध की दिशा निर्धारित करने में हम किधर जा रहे हैं, या हमारी शोध की दिशा किधर जा रही है, इस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।



डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

संपादक

## अनुक्रम

एक साहित्यकार पर विश्वकोश की रचना / डॉ० कमलकिशोर गोयनका	13
उत्तर प्रदेश का बाल-साहित्य / डॉ० राष्ट्रबंधु	20
समकालीन कविता में विविध सोपान / डॉ० रमाकांत पांडेय, डॉ० बलवीरसिंह	29
अमृतलाल नागर के कथा-चरित्रों में विवाहेतर प्रेम-संबंध / कु० मंजू सिंह	34
सत्साहित्य संरक्षक के रूप में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी / डॉ० निर्मला तिवारी	39
भारतेंदु और व्यंग्य-विधा / डॉ० ऋचा सिंह	43
सामाजिक चेतना के प्रहरी संत कबीर / डॉ० महेशचंद्र	47
डॉ० रांगेय राघव के उपन्यास : एक परिचय / डॉ० वीरेंद्रकुमार शर्मा	49
मैं द्रौपदी नहीं हूँ : नारी के अंतःकरण की वेदना / डॉ० प्रवीन यादव	60
मोहन राकेश की कहानियों में मानवीय संबंध / डॉ० कुलदीप सिंह	65
डॉ० परशुराम शुक्ल की बाल-कविता / डॉ० दयाराम राहुल	69
भारत-नेपाल का धार्मिक संबंध / डॉ० अनिलकुमार मेहरा	76
संत जैतराम की दार्शनिक चेतना / ऋतुराज साहारण	80
काव्यशैली का अनिवार्य तत्त्व : शब्द-चयन / डॉ० निकेता	90
हिंदी बाल-साहित्य : स्वातंत्र्योत्तर शोध और समीक्षा / डॉ० कमलकिशोर गोयनका	100
आतंकवाद के साए में लेखन / कृष्ण राघव	111
काव्य में अप्रस्तुत योजना / डॉ० अशोक उपाध्याय	119
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में प्रेम, संयोग एवं वियोग-पक्ष / नीनू	134
राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' का राष्ट्रीय काव्य / रासुलता	141
अभिमन्यु अनंत के उपन्यास अपनी-अपनी सीमा में नारी की स्थिति / नीलम सिंह	159
विद्यापति की पदावली में मिथिला संस्कृति / डॉ० मिथिलेश कुमारी	165
समकालीन कहानियों में सांप्रदायिकता-विरोधी चेतना / डॉ० मनोजकुमार	173

आज के युवावर्ग के समक्ष चुनौतियाँ / शशि	189
पेज श्री और चैप्टर श्री : भोगवाद और कर्मयोग / विश्वमोहन तिवारी	193
हिंदी प्रबंधकाव्यों में मानवता-संबंधी नैतिकमूल्य / डॉ० उर्मिला राव	202
वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में पारिवारिक समस्या का निरूपण / कमलेशकुमारी	208
भारतीय राजनीति में दलित-चेतना / चंद्रप्रकाश	222
विवेकीराय के उपन्यासों में गाँव / डॉ० चंद्रशेखर तिवारी	226
महात्मा बुद्ध : विश्वशांति और मानवता की साक्षात् प्रतिमूर्ति / डॉ० रश्मि चतुर्वेदी	230
रामायण में प्रतिपादित इक्ष्वाकुवंश का इतिहास / डॉ० चित्रा जैन	237
निर्धनता : एक विश्वव्यापी समस्या / डॉ० विश्वनाथ पांडेय	242
मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यास-त्रयी में नारी-विमर्श / डॉ० परविंदर कौर	247

# शोध संदर्भ-5

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

डॉ० मीना अग्रवाल

जैसा कि आपको ज्ञात ही है कि शोध-संदर्भ के अब तक प्रकाशित चार खंडों में उपाधिपरक हिंदी-शोध के आरंभ से सन् 2003 तक स्वीकृत शोध प्रबंधों का वर्गीकृत विवरण दिया गया है। अब शोध-संदर्भ-5 को प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है, जिसमें सन् 2003 के बाद स्वीकृत शोधप्रबंधों का विवरण प्रकाशित किया जाएगा।

आपसे आग्रह है कि इसके लिए पी-एच०डी० अथवा डी०लिट् उपाधि के लिए स्वीकृत अपने शोध- प्रबंध का विवरण निम्न क्रम से देने की कृपा कीजिए—

1. नाम
  2. जन्मतिथि .
  3. शोध का विषय
  4. विश्वविद्यालय का नाम
  5. उपाधि वर्ष
  6. निदेशक का नाम व पता
  7. प्रकाशन का विवरण  
क. प्रकाशन के बाद शीर्षक  
ख. प्रकाशक का नाम व पता  
ग. प्रकाशन वर्ष; घ. पृष्ठ संख्या च. मूल्य
  8. पता
  9. फोन नं० तथा ई-मेल
- अपना विवरण इस पते पर भेजें—

**हिंदी साहित्य निकेतन**

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)

01342-263232, 09368141411

## एक साहित्यकार पर विश्वकोश की रचना

डॉ० कमलकिशोर गोयनका

प्रेमचंद पर पीएच०डी० का शोध-प्रबंध लिखते समय मेरे मन में प्रेमचंद पर विश्वकोश की रचना की कोई कल्पना नहीं थी और न ही यह सोचा था कि पीएच०डी० करने के बाद आगे क्या करूँगा। मुझे सन् 1972 में अपने शोध-प्रबंध 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प-विधान' पर पीएच०डी० की उपाधि दिल्ली विश्वविद्यालय ने प्रदान की। इसके एक परीक्षक डॉ० रघुवंश थे और उन्होंने अपनी रिपोर्ट में इस शोध-प्रबंध की भरपूर सराहना की थी। डॉ० नगेंद्र अध्यक्ष थे और उन्होंने भी अपने इस शिष्य की पीठ थपथपायी थी। मेरे जीवन का एक अध्याय पूरा हो चुका था। 'दैनिक हिंदुस्तान' में मुझे पीएच०डी० प्राप्त होने की खबर छपी तो लगा कि कद कुछ ऊँचा हुआ है, लेकिन मुझे क्या इसी से संतोष करना है? क्या मैं अपने बुलंदशहर स्थित अपने व्यापारिक परिवार को छोड़कर दिल्ली केवल इसलिए आया था कि मुझे अध्यापक बनना है? निश्चय ही, मेरा लक्ष्य कुछ करने का था। यह कुछ क्या था, उस समय स्पष्ट नहीं था। मुझे अब स्वयं से पूछना था कि पीएच०डी० के बाद क्या मुझे बी०ए० तथा एम०ए० की कक्षाओं को पढ़ाने में ही जीवन व्यतीत करना है, या इसके साथ कुछ और भी कोई ऐसा काम करना है, जो उससे पहले न हुआ हो। यह सोच-विचार चलता रहा, रात-दिन इसी के मंथन में लगा रहा और एक दिन प्रेमचंद पर विश्वकोश की रचना की कल्पना मेरे मन में उभरने लगी। पहला प्रश्न यही था कि क्या एक साहित्यकार पर विश्वकोश की रचना हो सकती है? क्या प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार हो सकते हैं, जिन पर विश्वकोश तैयार किया जा सकता है? मेरी जानकारी में शब्द-कोश थे, कथा-कोश थे, साहित्य-कोश थे, धर्म एवं दर्शन पर कोश थे, लेकिन शेक्सपीयर, कालिदास, टाल्स्टाय आदि साहित्यकारों पर कोई विश्वकोश मुझे पुस्तकालयों में देखने को नहीं मिला। इस संबंध में मेरी जानकारी सीमित हो सकती थी, परंतु मैंने पुस्तकालयों में देशी-विदेशी सभी प्रकार के कोश और विश्वकोश देखे, परंतु मुझे किसी देशी-विदेशी साहित्यकार पर कोई कोश या विश्वकोश देखने को नहीं मिला। इसका अर्थ था कि एक साहित्यकार पर कोश या विश्वकोश बनाने की कोई परंपरा पहले नहीं थी और मुझे ही इसकी कल्पना करनी थी।

मेरे लिए यह अकल्पनीय था, क्योंकि मैं कोशकार नहीं था और न मेरी सोच ही कोशकार की थी। मैंने पीएच०डी० की उपाधि प्राप्त कर ली थी और इस कारण मैं स्वयं को शोधकर्ता और समीक्षक ही मानता था। अतः मेरे लिए कोश अथवा विश्वकोश की कल्पना

करना सर्वथा नया क्षेत्र था। मेरे सम्मुख डॉ० धीरेंद्र वर्मा के संपादकत्व में प्रकाशित 'हिंदी साहित्य-कोश' था, जो दो खंडों में छपा था तथा जिसके एक खंड में साहित्यकारों एवं कृतियों का परिचय था एवं दूसरे खंड में साहित्यिक प्रवृत्तियों का विवेचन था, लेकिन इससे किसी एक साहित्यकार पर विश्वकोश की कोई कल्पना उभरती नहीं थी। अपने शोधकार्य और पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के बाद समय व्यतीत हो रहा था और नए कार्य का कोई स्वरूप जन्म नहीं ले पा रहा था। मन व्याकुल था और मैं बराबर सोच में था कि प्रेमचंद पर कोई ऐसा मौलिक एवं बड़ा काम नहीं हो सकता, जिससे उनके जीवन, साहित्य एवं विचार के साथ देश-विदेश में हुए उन पर कार्यों का संपूर्ण विवरण हिंदी में आ सके? इस विचार के सामने एक बड़ी चुनौती भी थी। अमृतराय ने सन् 1962 में प्रेमचंद के अज्ञात-अप्राप्य साहित्य को नौ पुस्तकों में प्रकाशित किया था और उनकी जीवनी 'कलम का सिपाही' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुई थी। निश्चय ही, यह खोज का इतना बड़ा काम था, जो इसके पहले हिंदी-साहित्य के इतिहास में कभी नहीं हुआ था, जिसके कारण यह वातावरण बना कि भविष्य में प्रेमचंद पर किसी भी बड़े कार्य की संभवनाएँ समाप्त हो गई हैं। इस ऐतिहासिक घटना से मेरे जैसे नए-नए शोधकर्ता-समीक्षक के हौसलों को आघात लगना स्वाभाविक था, परंतु मुझे आगे बढ़ना था। मेरे पूर्वजों के इतिहास और पारिवारिक संस्कारों ने मुझे इतना तो सिखा दिया था कि किसी भी नए क्षेत्र में प्रवेश करने से भयभीत नहीं होना चाहिए और कर्मशीलता, संकल्पशीलता, परिश्रम और लक्ष्य को प्राप्त करने की दृढ़ता तथा ईश्वर पर विश्वास से ही अंधकार में भी प्रकाश की किरण खोजी जा सकती है। मेरे पूर्वज राजस्थान के मण्डावा (शोखावाटी) से निकलकर बुलंदशहर जैसे अनजान स्थान पर आए थे तो उन्होंने नए सिरे से जीवन शुरू किया था और मेरे दादा जी सेठ बद्रीदास गोयनका म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन के पद तक पहुँचे थे। इससे मुझे साहित्य के क्षेत्र में कुछ नया करने की प्रेरणा मिली और मेरा मस्तिष्क इस नए की कल्पना में लगा रहा।

यह संभवतः सन् 1973 की बात है कि रात को सोते-सोते मेरे मस्तिष्क में प्रेमचंद पर विश्वकोश बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। मैं बिस्तर से उठा और कागज़-पैन लेकर बैठ गया और इस विश्वकोश की रूप-रचना को रूप देने लगा। मैंने उस समय इसका शीर्षक रखा—'प्रेमचंद साहित्य-कोश', क्योंकि उस समय इसे विश्वकोश बनाने की कोई कल्पना मेरे सामने नहीं थी। इस 'प्रेमचंद साहित्य-कोश' के चार खंडों की रूपरेखा बनी— पहला खंड प्रेमचंद की जीवनी जो कालक्रमानुसार होगी तथा शोधपरक भी। मुझे यह विचार गांधी वाङ्मय के खंडों को देखकर आया था, जो भारत सरकार ने प्रकाशित किए थे तथा जिसमें गांधी के पत्र, भाषण, लेखादि तारीख़बार लगाए गए थे। मुझे लगा कि प्रेमचंद की जीवनी भी तारीख़बार लिखी जा सकती है, यद्यपि मैं यह समझता था कि गांधी के समान प्रेमचंद के 56 वर्षों के जीवन के प्रत्येक दिन की घटनाओं तथा गतिविधियों की जानकारी असंभव ही है। प्रेमचंद की यह जीवनी शोधपरक जीवनी होगी और जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन को कालक्रम में रखते हुए तिथि के अनुसार उनके जीवन को देखना होगा। इस जीवनी पर बड़ा परिश्रम करना पड़ा, देश की अनेक लाइब्रेरियों में महीनों खाक छानी गई और अनेक हिंदी-उर्दू पत्रिकाओं को देखा गया। इस प्रकार प्रेमचंद की अनेक अज्ञात एवं अप्राप्य रचनाएँ मिलीं। उनकी कृतियों पर

प्रकाशित, समीक्षाएँ मिलीं तथा उनके कुछ कार्यों, विवादों, आरोपों आदि की सूचनाएँ मिलीं तथा सैकड़ों ऐसे पत्र मिले, जो प्रेमचंद ने लिखे थे तथा जो उन्हें लिखे गए थे और जिन्हें अमृतराय प्राप्त नहीं कर पाए थे अथवा जिनका उन्होंने उपयोग नहीं किया था। इस खोज-ख़बर से प्रेमचंद से संबंधित लगभग तीन हज़ार मूल दस्तावेज़ों का संग्रह हो गया, जिसमें उनकी बैंक की पास-बुकें तथा सर्विस-बुक भी थी। इन दस्तावेज़ों ने प्रेमचंद की शोधपरक कालक्रमानुसार जीवनी लिखने में बड़ी मदद की, और सच तो यह है कि इनके अभाव में ऐसी जीवनी की कल्पना नहीं की जा सकती थी। प्रेमचंद की इस कालक्रमानुसार जीवनी को निम्नलिखित अध्यायों में लिखा गया था :

1. प्रेमचंद का जीवन
2. वस्त्र तथा अन्य वस्तुएँ
3. अध्ययन-संसार
4. प्रमाण-पत्र एवं नियुक्ति-पत्र
5. आर्थिक जीवन
6. यात्रा-विवरण
7. प्रकाशकों से अनुबंध एवं रायल्टी
8. बाह्य संसार
9. रचना-संसार
10. रचनाओं का कालक्रमानुसार विवरण

प्रेमचंद की यह कालक्रमानुसार जीवनी दस अध्यायों में बँटी थी और प्रायः सभी में कालक्रम को आधार बनाया गया था। इस प्रकार यह जीवनी वैज्ञानिकता से लिखी गई थी और जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों को नई शोधपरक सामग्री और दस्तावेज़ों के आधार पर उद्घाटित किया गया था। हिंदी ही नहीं, यह भारतीय भाषाओं में जीवनी लिखने का नया प्रयोग था, जिसमें तथ्य एवं सूचना को प्रमाण के साथ जोड़ा गया था। इस नयी पद्धति से जीवनी के धाराप्रवाह को अवश्य ही आघात लगा तथा अमृतराय की जीवनी 'प्रेमचंद : क़लम का सिपाही' जैसी निरंतरता, एकसूत्रता और धारा-प्रवाहिकता इसमें नहीं आ सकी, लेकिन इस कालक्रमानुसार लिखी जीवनी से प्रेमचंद के जीवन और कृतित्व के अनेक पक्ष खुले, उन्हें अध्यायों में बाँटा गया तथा सारे विवरण प्रमाण के आधार पर लिखे गए। अमृतराय ने जो अनेक तथ्य एवं सूचनाएँ छोड़ दी थीं तथा वे जिन तक जाने-अनजाने नहीं पहुँच पाए थे, उन सबको इस जीवनी में स्थान मिला। इस प्रकार 'प्रेमचंद विश्वकोश' के प्रथम खंड के रूप में प्रेमचंद की जो कालक्रमानुसार जीवनी प्रकाशित हुई, वह अमृतराय की प्रेमचंदीय मूर्ति को और विस्तृत तथा प्रामाणिक बनाती है तथा अनेक अज्ञात प्रसंगों तथा रचनाओं की पहली बार जानकारी देती है। अमृतराय अपनी जीवनी को रोचक तो बना पाए, परंतु वे प्रेमचंद की संपूर्ण मूर्ति की रचना नहीं कर पाए। इसका बड़ा कारण यह था कि वे सर्जनात्मक लेखक थे और शोध के कठिन मार्ग पर चलने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। इसी कारण वे अपने ही शहर इलाहाबाद में रहने वाले प्रेमचंद के सहयोगी प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय' की खोज नहीं पाए और यह आश्चर्यपूर्ण तथ्य है कि उन्होंने अपनी जीवनी में उनका उल्लेख तक नहीं किया। प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय'

सरस्वती प्रेम के मैनेजर थे, 'हंस' और 'जागरण' पत्रिकाओं के सहायक संपादक थे तथा प्रेमचंद की पुस्तकों के प्रकाशक एवं विक्रेता थे। उनके उल्लेख के बिना सरस्वती प्रेस, 'हंस' एवं 'जागरण' का इतिहास नहीं जाना जा सकता। अमृतराय ने इसके अलावा प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू रचनाओं की सूची तक देने का कष्ट नहीं किया। उन्होंने प्रेमचंद की केवल 224 कहानियों की सूची दी, जिससे यह भ्रम उत्पन्न हुआ कि उन्होंने इतनी ही कहानियाँ लिखी थीं, जबकि प्रेमचंद की 300 से अधिक कहानियों के प्रमाण उपलब्ध हैं। अतः यह कल्पना साकार हुई कि विश्वकोश में भी किसी साहित्यकार की जीवनी दी जा सकती है और उसे कालक्रम तथा शोध के अनुशासन में बाँधकर भी उसे सर्जनात्मकता के साथ शोधपरक भी बनाया जा सकता है। विश्वकोश की दृष्टि से यह एक मौलिक उपलब्धि थी, जिसे हिंदी के विद्वानों एवं लेखकों ने सराहा और उसे मान्यता प्रदान की।

'प्रेमचंद विश्वकोश' के बारे में मैं पहले कह चुका हूँ कि उसकी कल्पना 'प्रेमचंद साहित्य-कोश' के रूप में हुई थी। इसका प्रारूप तैयार करके मैंने अपने सहयोगी गंगाप्रसाद 'विमल' को दिखाया और हम फिर प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय से मिले। उन्हें भी योजना पसंद आई और उन्होंने पत्राचार आदि का खर्चा देने का निर्णय किया, पर यह व्यवस्था चल नहीं पायी। गंगाप्रसाद 'विमल' अपने कम्युनिस्ट मित्रों के दबाव में साथ छोड़ गए और श्रीपतराय ने भी दी गई थोड़ी-सी धनराशि मेरी रायल्टी में से काट ली और इस कोश को प्रकाशित करने के अपने वायदे से भी मुकर गए। मेरे सामने बड़ा भारी संकट खड़ा हो गया, लेकिन इससे भी बड़ा संकट तो यह था कि मैं 27 जुलाई 1975 को इंदिरा गांधी द्वारा लगाई गई इमर्जेंसी में दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्य दो सौ प्रोफेसरों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। अब परिवार के पालन-पोषण के साथ अपने जीवन की रक्षा का प्रश्न था। मैं तिहाड़ जेल में महीनों तक रहा, जमानत पर आया और इमर्जेंसी के हटने तक महीने में दो बार अदालत में अपनी हाजिरी देता रहा, लेकिन जेल से लौटने के बाद मैं फिर 'प्रेमचंद विश्वकोश' के काम पर लग गया और इलाहाबाद गया। इलाहाबाद में मैं श्रीपतराय की मुस्लिम ससुराल में ठहरा और अमृतराय से कई बार मिला और उन्होंने स्वेच्छा से अनेक दस्तावेज़ मुझे सौंप दिए। इस बीच पूरी रूपरेखा पर विचार होता रहा और अब 'प्रेमचंद साहित्य-कोश' का नाम बदलकर 'प्रेमचंद विश्वकोश' हो चुका था और उसके चार खंड अब पाँच खंडों में बदल चुके थे। ये पाँच खंड थे—

1. प्रेमचंद का जीवन
2. प्रेमचंद का साहित्य
3. प्रेमचंद के पात्र
4. प्रेमचंद के विचार
5. प्रेमचंद की समीक्षा

'प्रेमचंद विश्वकोश' के पहले खंड 'जीवनी' की चर्चा हो चुकी है। यह तारीख़वार जीवनी हिंदी के लिए ही नहीं, भारतीय साहित्य के लिए नई घटना थी। इसने प्रेमचंद के जीवन के अदृश्य, दुर्लभ तथा जानबूझकर दबा दिए प्रसंगों को प्रस्तुत करके उनके जीवन की अधूरी मूर्ति को पूर्ण किया और पूरी प्रामाणिकता के साथ लिखी गई। हिंदी के किसी भी साहित्यकार के जीवन की लगभग 1500 तिथियों के जीवन को दस अध्यायों में विभक्त कर दस्तावेजों



के प्रमाण के साथ प्रस्तुत करना एक अनोखा ही साहित्यिक अनुष्ठान था, जिसे लगभग पच्चीस वर्ष बाद भी कोई ऐसा कार्य नहीं कर पाया है।

‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के दूसरे खंड में साहित्य को लेना आवश्यक था, क्योंकि जीवनी के बाद साहित्य ही किसी साहित्यकार की मूर्ति को पूर्ण करता है, बल्कि साहित्य ही साहित्यकार के अस्तित्व का कारण होता है। प्रेमचंद ने अपने जीवन में लगभग 2000 रचनाएँ लिखी थीं। इनमें उनकी कहानी, उपन्यास, नाटक, लेख, संपादकीय, पुस्तक-समीक्षा, भूमिका, अनुवाद, बाल-साहित्य आदि सम्मिलित हैं। इसमें उनके पत्र, इंटरव्यू आदि की गणना नहीं की गई है। इस खंड में इन सभी 2000 रचनाओं को अकारादि क्रम में रखकर प्रत्येक रचना की विधा, हिंदी या उर्दू रचना, प्रथम प्रकाशन तथा संकलनों की सूचना के साथ उसका सारांश दिया गया है। इसमें प्रेमचंद की हिंदी-उर्दू रचनाओं का अलग-अलग परिचय दिया गया है तथा यह भी दिया गया है कि उर्दू-रचना का हिंदी शीर्षक क्या है तथा कुछ उन रचनाओं की भी जानकारी दी गई है, जो अप्राप्य एवं अज्ञात थीं। चेष्टा यह भी की गई कि प्रथम संस्करणों के आवरण-पृष्ठों के चित्र दिए जाए तथा उनकी पुस्तकों के प्रथम प्रकाशन की सही-सही जानकारी दी जाए। इस ‘साहित्य-खंड’ में भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं में हुए उनके अनुवादों का भी विवरण दिया गया है, जिससे प्रेमचंद की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति स्पष्ट होती है और ‘विश्वकोश’ शीर्षक को सार्थकता प्राप्त होती है।

‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के ये दो खंड सन् 1981 में प्रकाशित हुए थे, परंतु काम सभी पाँचों पर चल रहा था। आरंभिक दो खंडों को तैयार करके उन्हें प्रकाशित कराया गया, जिससे प्रेमचंद जन्म शताब्दी पर उन्हें पाठकों तथा पहुँचाकर प्रेमचंद जन्म शताब्दी का स्वागत किया जा सके। इसी अवसर के लिए मैंने ‘प्रेमचंद जन्म-शताब्दी राष्ट्रीय समिति’ बनायी थी और जैनेंद्र कुमार को इसका अध्यक्ष बनाया और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी इसकी संरक्षक थीं। इस समिति ने नई दिल्ली के सबसे बड़े हाल फिक्की में प्रेमचंद पर राष्ट्रीय कार्यक्रम किया और अमृतराय ने इन दो खंडों का विमोचन किया और सन् 1986 में ‘भारतीय भाषा परिषद्’ कोलकाता के कार्यक्रम में तत्कालीन राष्ट्रपति जैलसिंह ने ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ पर मुझे पुरस्कृत-सम्मानित किया। यह राष्ट्रीय मान्यता थी और इसके मूल में कोलकाता के प्रो० विष्णुकांत शास्त्री तथा प्रो० कल्याणमल लोढ़ा तो थे ही, मेरे गुरु प्रो० विजयेंद्र स्नातक भी थे। इस सम्मान के बाद यह मेरी नैतिक जिम्मेदारी थी कि ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के शेष तीन खंड भी शीघ्र प्रकाशित हों, लेकिन मेरे न चाहने पर भी समय बीतता गया और मैं दूसरी योजनाओं में उलझता गया और इस तरह इतना बड़ा समय व्यर्थ ही निकल गया। यह साहित्यिक अपराध किसी भी प्रायश्चित से क्षम्य नहीं है।

‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के शेष तीन खंडों का कार्य लगभग 90 प्रतिशत पूरा हो चुका है और मुझे आशा है कि सन् 2010 में ये तीनों खंड प्रेम में जा सकेंगे। इस ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ का तीसरा खंड प्रेमचंद के पात्रों से संबंधित है। इस खंड में प्रेमचंद की कहानियों, उपन्यासों, नाटकों आदि के लगभग तीन हजार पात्रों का समाजशास्त्रीय एवं चारित्रिक परिचय अकारादि क्रम से दिया जाएगा और उनके लिंग, आयु, शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, वर्ग आदि के आधार पर तालिकाएँ दी जाएँगी। इसकी चेष्टा भी होगी कि उनके पात्रों का फ़िल्मों तथा रंगमंच पर

अभिनय करने सचित्र परिचय दिया जाए।

‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के चौथे खंड में प्रेमचंद के विचार-पक्ष को दिया जाएगा। प्रेमचंद के रचनाकार के रूप में उनका चितक के रूप में भी बड़ा योगदान है और वह प्रायः अभी तक छुटपुट रूप में ही सामने आया है। उनके सर्जनात्मक साहित्य में तथा पत्र, लेख एवं भाषणों आदि में उनके विचार बिखरे पड़े हैं। उन्हें विषय के अनुरूप संकलित करके प्रस्तुत किया जाएगा और जिन विचारकों का उन पर प्रभाव रहा है, उनका सचित्र परिचय भी रहेगा। इसका पाँचवाँ खंड ‘समीक्षा’ खंड होगा। इसमें प्रेमचंद के समग्र साहित्य का लगभग तीन सौ विषयों के आधार पर मूल्यांकन होगा, जिनमें अनेक ऐसे विषय हैं, जिनके आधार पर संभवतः पहली बार प्रेमचंद-साहित्य को देखा जाएगा। इस अंतिम खंड में प्रेमचंद के प्रसिद्ध देशी-विदेशी समीक्षकों के परिचय के साथ उन पर लिखी गई समीक्षात्मक पुस्तकों तथा शोध-ग्रंथों का परिचय तो होगा ही।

‘प्रेमचंद विश्वकोश’ की कल्पना और रूपरेखा यही है। प्रेमचंद कालिदास, शेक्सपीयर तुलसीदास, टालस्टाय और रवींद्रनाथ टैगोर आदि के समान एक अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यकार की स्थिति और मूर्ति बन चुकी है। वे अपने जीवनकाल में ही जर्मनी, जापान और मॉरिशस आदि देशों के साहित्य-समाज तक पहुँच गए थे और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तो वे सभी भारतीय भाषाओं के साथ विश्व की प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुके थे। यही कारण था कि उनकी जन्मशताब्दी पर देश-विदेश में सभी स्थानों पर उनकी स्मृति में कार्यक्रम हुए और उनके साहित्य की महत्ता, उपयोगिता एवं प्रासंगिकता पर गंभीर चर्चाएँ हुईं। प्रेमचंद अब भारत के ही नहीं, विश्व के साहित्यकार थे, अतः उन पर ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ की रचना सर्वथा उपयुक्त एवं आवश्यक थी, जिससे उनके जीवन, साहित्य, विचार तथा समीक्षा को वैज्ञानिकता के साथ संकलित करके नयी पीढ़ी को सौंपा जा सके। एक प्रेमचंद जैसा साहित्यकार इतिहास की दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है, जितना उस समय का सम्राट या शासक। चंद्रगुप्त मौर्य के समय चाणक्य का ‘अर्थशास्त्र’ तथा अकबर के जमाने में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित ‘रामचरितमानस’ किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व का नहीं है, बल्कि सत्य तो यह है कि ये ग्रंथ सम्राटों और बादशाहों की यश-कीर्ति से भी बड़े कीर्तिमान हैं। अतः एक साहित्यकार पर विश्वकोश की रचना पर प्रश्न करने वालों को समझना चाहिए कि साहित्यकार के वैश्विक रूप धारण करने तथा विश्व-समाज का अंग बन जाने पर उस पर विश्वकोश की रचना क्यों नहीं होनी चाहिए? ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ के ये पाँचों खंड प्रकाशित होने पर इस विश्वकोश का औचित्य अपने आप स्पष्ट हो जाएगा। प्रेमचंद विश्व के साहित्यकार हैं। वे अपने देश की तथा हिंदी-उर्दू भाषाओं की सीमाओं को लाँघकर पूरे भूमंडल में व्याप्त हो चुके हैं। अतः उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संपूर्णत्व तथा भूमंडल में उनकी उपस्थिति एवं स्वीकृति के तथ्य, प्रमाण तथा सभी ज्ञात-अज्ञात सामग्री का साक्षात्कार इस ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ में हो सकेगा। अमृतराय की जीवनी ‘प्रेमचंद : कलम का सिपाही’ में प्रेमचंद का केवल जीवन था, परंतु ‘प्रेमचंद विश्वकोश’ में उनका जीवन तो है ही, परंतु साहित्य, पत्र, विचार तथा समीक्षा के लिए भी पूरे-पूरे खंड दिये गए हैं। प्रेमचंद जैसे वैश्विक व्यक्तित्व के साहित्यकार का वास्तविक एवं पूर्ण बिम्ब केवल विश्वकोश से ही निर्मित हो सकता था। हिंदी में विश्वकोश की यह एक

नयी शुरुआत है और यह परंपरा तभी बन सकती है, जब चरितनायक का चयन सही हो और समर्थ कोशकार सामने आएँ। कोश का कार्य वैसे ही श्रमसाध्य एवं विवेकसाध्य होता है, उस पर विश्वकोश की रचना तो और भी समर्थ-कौशल, समर्पण और निष्ठा चाहती है। 'प्रेमचंद पत्र कोश' तो छप चुका है और 'प्रेमचंद कहानी-कोश' अब प्रेस में हैं।

हिंदी में शब्द-कोश तो हैं, परंतु साहित्य-कोश एवं साहित्यकार कोशों को कोई परंपरा नहीं है। डॉ० धीरेंद्र वर्मा के 'हिंदी साहित्य-कोश' को भी हिंदी के प्रोफेसर तथा हिंदी विभाग संशोधित एवं परिवर्द्धित नहीं कर पाए। मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के कई प्रोफेसरों-अध्यक्षों से कहा तथा योजना बनाने का दायित्व भी लेने को तैयार था, परंतु कोई भी तैयार नहीं हुआ। भारत के अधिकांश हिंदी प्रोफेसर इस पद पर पहुँचकर लिखना-पढ़ना छोड़ देते हैं तथा हिंदी विभाग भी राजनीति के अड्डे बन गए हैं। हिंदी में भारतेंदु हरिश्चन्द्र, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, नवीन, दिनकर, रेणु, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेंद्र, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता आदि ऐसे अनेक साहित्यकार हैं, जिन पर साहित्य-कोश की रचना हो सकती है, परंतु इस संकल्प को लेने वाला कोई नजर नहीं आता। मेरा दृढ़ मत है कि देश के कुछ हिंदी विभागों को इस दायित्व को उठाना चाहिए और हिंदी में साहित्य एवं साहित्यकार कोशों की परंपरा को समृद्ध करना चाहिए। कोश और विश्वकोश ज्ञान के स्थायी भंडार हैं जो युगों तक ज्ञान के स्रोत होते हैं। हिंदीभाषा को समृद्ध एवं सशक्त बनाने के लिए इस कोश-विधा को विकसित करना अत्यावश्यक है और इसका दायित्व प्रोफेसरों, समीक्षकों और हिंदी विभागों का है। ये कोश और विश्वकोश हिंदीभाषा की बुनियाद होंगे और आनेवाली नस्लें अपनी भाषा की शक्ति और सामर्थ्य पर गर्व कर सकेंगी। हिंदी के प्रगतिशीलों-अप्रगतिशीलों की उपेक्षा और उदासीनता निश्चय ही हिंदीभाषा के लिए घातक होगी। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने भारतीय भाषाओं के साहित्य का विश्वकोश कुछ वर्ष पहले प्रकाशित किया था, परंतु वह अँग्रेजी में छपा था और वह आज तक हिन्दी में अनुदित भी नहीं हो सका है। हिंदी संसार को ऐसी स्थिति को चुनौती देनी होगी, तभी हिंदीभाषा को अपने अधिकार मिल सकेंगे। हिंदी आपके संकल्पों और उनके क्रियान्वयन की प्रतीक्षा में है। क्या देश के साठ-सत्तर प्रतिशत हिंदीभाषी जनता इसी प्रकार मौन बनी रहेगी? क्या अपने अधिकारों के प्रति कुछ भी सचेत न रहेगी?

□ ए-98, अशोक विहार

फेज प्रथम, दिल्ली 110052

09811052469

## उत्तर प्रदेश का बालसाहित्य

डॉ० राष्ट्रबंधु

उत्तरप्रदेश से उत्तरांचल अथवा उत्तराखंड राज्य अलग बन जाने से स्थितियाँ तो बदली ही हैं, परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। हिमालय से उसका चरणांग, तराई भाग छिन गया है। सारे तीर्थ, उत्तराखंड में आज जो हैं, कभी उत्तरप्रदेश में थे। अब हरिद्वार तक भी उत्तरप्रदेश से बिलग है फिर भी उत्तरप्रदेश में वर्तमान में 70 जिले हैं जोकि बहुत से राज्यों के जिलों से, क्षेत्रफल और जनसंख्या में ज्यादा हैं। भाषिक दृष्टि से हिंदी की बोलियों में कुमाऊँनी, गढ़वाली और पहाड़ी, वर्तमान के उत्तरप्रदेश में नहीं हैं। वहाँ के गोविंदवल्लभ पंत, शिवानी, रमेशचंद्र पंत, गिरिजाशंकर त्रिवेदी, रमेश नौटियाल, सुमित्रानंदन पंत आदि जो हिंदी में भी लिखते हैं उत्तरप्रदेश की तालिका में सम्मिलित नहीं किए जाते। कितने ही डबराल, चमोला, किरमोलिया, करोला, पंत जोशी इन दोनों प्रदेशों के बाहर प्रवासी हैं और बच्चे इस तमाशे से दुखी हैं।

आगरा और अवध जैसे दो सूबों को मिलाकर आज का यू०पी० (उत्तरप्रदेश) पहले यूनाइटेड प्राविंस था, जिसमें शिक्षा प्रसार के तौर तरीकों, रीति-रिवाजों, लोकाचारों और व्यवहारों की भिन्नताओं को एकीकृत किया गया। ब्रज और अवध के साहित्य को भी हिंदी में समाविष्ट किया गया। हिंदी के भारतेंदु काल से पूर्व शिक्षा के विस्तार और पाठ्यक्रमों के प्रारंभ से पूर्व उर्दू, पुरबियाऊ, खड़ीबोली और कैरवी गड्डमगड्ड शब्दों को समीक्षकों ने छाँटा है और उनके समुच्चय से हिंदी का शब्द-भंडार अभिवृद्ध हुआ है।

हम उस समागम को संगम कहते हैं, जहाँ काम तक की कामना को त्यागना पड़ता है। यमुना जब गंगा से मिल जाती है तो अपना सर्वस्व सौंप देती है। नाम तक त्याग देती है। जिस मिलन में समझौते होते हैं, शर्ते होती हैं, दुहरी रीतियाँ और नीतियाँ बनाने के अनुबंध रखे जाते हैं, वहाँ संबंध नहीं ठहरते। बालसाहित्य का समागम जब साहित्य की मुख्यधारा से होता है, तब वह बालसाहित्य नाम भी त्याग देने से स्थिर रहता है। उमसें अज्ञात और अदृश्य सरस्वती भी सम्मिलित होती है। इसमें अन्यथा का स्थान कहीं नहीं है। कविता की छंदबद्धता ऐसी मुख्यधारा है, जिसमें अपनी परंपरा रागात्मकता और अगेयता के अलगाव आदि सम्मिलित नहीं किए जा सकते।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग में बालसाहित्य का विकास बहुत तीव्रता से हुआ। उनके मंडल के अंतर्गत सर्वश्री बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि उत्तरप्रदेश के ही गौरवमय रचनाकार थे, जिनके प्रदेश को सारे हिंदी-भाषी प्रदेशों ने मान्यता दी।

स्वतंत्रतापूर्व में शिशु (1916) वानर, बालसखा (1917) जैसी पत्रिकाओं ने बालसाहित्य

चेतना की धमनियों में रक्त संचार किया। उन्होंने लेखकों को उत्साहित किया और प्रकाशकों को पाट्येतर बालसाहित्य रचने की प्रेरणा दी। इन संपादकों में ऐसे भी सज्जन थे, जिन्होंने एक मास्टर की तरह अपने शिष्यों को विषय देकर उनसे लेखन कराया और संशोधन किए।

गुरु रूप में पं० लल्लीप्रसाद पांडेय और उनके अनगिनत शिष्यों ने बालसाहित्य को एक स्तरीय पत्रिका बना दिया। पांडे जी ने बालसाहित्यकारों का एक ऐसा स्कूल स्थापित किया जो कि प्रसिद्ध साहित्यकार तैयार कर सका और कृतज्ञजन इसके प्रति आभार और आदर व्यक्त करते हैं।

ठाकुर श्रीनाथसिंह ने 'मनमोहन' और रामनरेश त्रिपाठी ने 'वानर' का प्रकाशन किया। इलाहाबाद एक ऐसा शहर है, जिसमें सर्वाधिक पत्र-पत्रिकाएँ और प्रकाशक बालसाहित्य को योगदान दे सके हैं।

कानपुर तथा काशी के नाम के बाद बलिया, बरेली, गोरखपुर, मेरठ और सहारनपुर आदि शहरों ने बालसाहित्य को गंभीरता से लिया और महत्त्वपूर्ण प्रयास किए।

विषयों की दृष्टि से इनमें ज्ञानपरक और उपदेशात्मक रचनाएँ बच्चों को परोसी जाती थीं स्वतंत्रता के महत्त्व का स्वर भी इनमें प्रधान था। मैथिलीशरण गुप्त (सरकस), महादेवी वर्मा (गौरेया, ठाकुर जी भोले हैं), रामसिंहासन सहाय 'मधुर' (डोम-डोमिन, गांधी जी), सुमित्रानंदन पंत (अल्मोड़ा का घंटाघर, स्वामी विवेकानंद, माँ मैंने पैसे बोए थे।), सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (महाराणाप्रताप, भिखारी) आदि की कृतियाँ यह सिद्ध करती हैं कि बड़े नामी-गिरामी कवियों ने बालसाहित्य रचना को अपना कर्तव्य स्वीकार किया। बंगला भाषा के बड़े-बड़े कवियों की परंपरा में उपेंद्रकुमार राय, डी०के० राय, गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर (छाड़ार छवि, मेरे बचपन के गीत), श्रीमती लीला मजूमदार रहल, दे पारवीर पाठक, आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी आदि बालसाहित्य के प्रवर्तक थे। उनके अनुशरण में हिंदी में भी सुप्रसिद्ध लेखकों ने बालसाहित्य लेखन किया।

पंजाबी भाषा में ज्ञानी लालसिंह ने बालक (1932) मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया और तदनंतर गुरुबख्श सिंह ने बालसंदेश (1942) में। एक्टिविटी स्कूल और लोकजीवन से टप्पों का प्रभाव हिंदी पर बहुत पड़ा। इनसे शिशु कविता विकसित हुई।

स्वतंत्रता से पूर्व माता-पिताओं को संबोधित लेख हिंदी में लिखे गए, जिनमें बालकों के पालन-पोषण, स्वास्थ्य के साथ-साथ चारित्रिक, नैतिक और शिक्षात्मक विषय निर्धारित किए जाते थे। यात्रा वर्णन द्वारा भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान देने की प्रक्रिया अपनाई गई।

पौराणिक कहानियाँ, विदेशों से आई कहानियाँ, मित्रलाभ, हितोपदेश और अन्य लोक-परंपरा की कहानियाँ पुस्तकों के माध्यम से बच्चों के लिए प्रस्तुत की जाती थीं। इनके अतिरिक्त देशी-विदेशी घटनाएँ और जीवनियाँ भी परोसी गईं। गद्य लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचंद, विष्णु प्रभाकर, बल्लनदास बिन्नानी 'ब्रजेश' आदि स्वतंत्रता से पूर्व के बालसाहित्य सर्जक थे।

#### **संस्थाओं के संरक्षण में बालसाहित्य :**

स्वतंत्रता के पश्चात् बालसाहित्य को बहुत गंभीरता से लिया जाने लगा और इसको बच्चों और युग के अनुकूल बनाने के लिए प्रशिक्षण गोष्ठियाँ भी आयोजित की जाने लगीं।

उत्तर प्रदेश में इसके लिए बाल समाज, भारतीय समाज, भारतीय बालकल्याण संस्थान, अखिल भारतीय बालसाहित्य परिषद आदि सामाजिक संस्थाओं ने बालकल्याण के लिए बालसाहित्य को मेरुदंड के रूप में स्वीकार किया। इन संस्थानों ने उत्तरप्रदेश में अनेक आयोजन किए, जिनमें बालसाहित्य पर गंभीर चर्चाओं के लिए कार्यक्रमों में विशेष सत्र रखे जाते थे। सर्वश्री तरुण भाई (वाराणसी), आचार्य कृष्ण विनायक फड़के और बालसेवक बिरादरी के लोकेश्वरनाथ सक्सेना दादाजी, नरेशचंद्र सक्सेना सैनिक, भगवतीप्रसाद गुप्त, नारायणप्रसाद अरोड़ा, शंभुनाथ टंडन (कानपुर) ने विभिन्न आयोजन किए और बालसाहित्यकारों को सम्मानित किया। इनमें से एक उल्लेखनीय है। डॉ॰ हरिवंशराय बच्चन की अध्यक्षता में लल्लीप्रसाद पांडेय का अभिनंदन किया गया।

लखनऊ में डॉ॰ कृष्णमोहन सक्सेना, मोहसिना किदवाई, विनोदचंद्र पांडेय, सूर्यकुमार पांडेय, सोहनलाल द्विवेदी आदि ने बालसाहित्य सम्मेलन को भारतव्यापी बना दिया।

इलाहाबाद में डॉ॰ शकुंतला सिरोठिया ने अपने नाम पर ही बालसाहित्यकारों को सम्मानित किया। उनके द्वारा आयोजित समारोह बहुत गरिमापूर्ण थे। इनमें बालसाहित्य के स्तर उन्नयन पर वक्ता प्रभावी वक्तव्य देते थे और इसके परिणाम अच्छे आते गए। नए-पुराने लोगों को लगा कि मूल्यांकन किया जा रहा है।

डॉ॰ शोभानाथलाल ने बलिया में हर 24 नवंबर को रामसिंहासन सहाय 'मधुर' का जन्मदिन मनाना शुरू किया। इस अवसर पर साहित्यकार पूरा दिन साहित्य परिवेश में बिताते थे। गंभीर चर्चा, मधुर और मनोरंजक काव्यपाठ के साथ किन्हीं बालसाहित्य रचनाकारों का सम्मान भी किया जाता था। मधुर जी के देहांत के बाद भी डॉ॰ शोभानाथ लाल और रामभरोसे जी ने कुछ सालों तक कार्यक्रम जारी रखे और डॉ॰ शोभानाथ लाल के वाराणसी चले जाने पर बलिया के कार्यक्रम नहीं चल सके। नागरी बालसाहित्य संस्थान अब नामशेष है।

'समन्वय' संस्था ने सहारनपुर में बालसाहित्य, संवर्धन, मूल्यांकन और सम्मान के कई कार्यक्रम किए। नीरजा स्मृति बालसाहित्य न्यास के तत्त्वावधान में बालकाव्य की पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। इन दोनों संस्थाओं का परिचालन कृष्ण शलभ ने अदृश्य रहकर किया।

गाज़ियाबाद में छंद समर्थक संस्था गीतिका ने डॉ॰ कमलेश भट्ट कमल, डॉ॰ कुँअर बेचैन, डॉ॰ पुष्पा रघु, श्रीमती नीलम राकेश, डॉ॰ मधु भारती, ओम् प्रकाश चतुर्वेदी 'पराग' आदि ने बालसाहित्य के विकास में प्रेरणा दी।

आगरा में डॉ॰ उषा यादव, डॉ॰ राजेंद्र मिलन, चंद्रकांत त्रिपाठी, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, सुशील सरित आदि ने विभिन्न संस्थाओं तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान ने अपने आयोजनों में बालसाहित्य प्रवर्धन में योगदान किया।

बालगोपाल भूमि मथुरा में डॉ॰ त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल, डॉ॰ दिनेश पाठक 'शशि', डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ, ओमप्रकाश सिंह, अरविंद वाजपेयी आदि ने बालसाहित्य लिखा। सूर के स्वरो में बालकों की वंदना की और स्मृति पुरस्कार भी प्रवर्तित किए।

शाहजहाँपुर में चंद्रमोहन श्रीवास्तव, नागेश पांडेय आदि ने बच्चों के साहित्य में अनेक कार्यक्रम रखे। पांडेय ने अपने ग्राम खुटार जिला शाहजहाँपुर में बालसाहित्यकारों को आमंत्रित करके बालकाव्य समारोह संपन्न कराए।

प्रतिभागी की हैसियत से बरेली में निरंकारदेव सेवक ने कुछ कार्यक्रमों में हिस्सा लिया होगा, वहीं उनके न रहने पर बालसाहित्य के अनेक कार्यक्रम उनकी समृति में भी संपन्न हो रहे हैं। कुशल संगठक के रूप में श्रीमती पूनम सेवक, निर्मला सिंह, इंद्र त्रिवेदी, श्रीमती अनुपमा अग्रवाल, श्री पोरवाल, प्रायः बाल समारोहों के लिए अवसरों की प्रतीक्षा करते रहे हैं।

उत्तरप्रदेश में बालसाहित्य के लिए जहाँ अनेक प्रयत्न किए गए, वहीं ए०आई०जे०एल०सी० कोलकाता की संस्था और मैसूर की संस्था मानसगंगात्री, एन०सी०ई०आर०टी० आदि बाहर की संस्थाओं ने उत्तरप्रदेश की अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर संयुक्त आयोजन संपन्न किए। इनमें उत्तर प्रदेश के बहुत से बालसाहित्यकारों को प्रतिभागी बनने के अवसर प्राप्त हुए।

बालसाहित्य के आयोजनों से बालसाहित्यकारों की सोच में व्यापकता आई और लेखन में उत्कृष्टता।

कु० डॉ० रमारतन ने भी चंडीगढ़ में और फूलौरानी जी ने अमृतसर में बालसाहित्य के अखिल भारतीय सम्मेलन किए, उनमें हिंदी के प्रतिनिधि बालसाहित्य के रूप में इस प्रदेश के जन भी गए। इस प्रकार प्रदेश से बाहर जाने का लाभ भी उन्हें मिला।

लेकिन उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग ने ऐसा कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया, वैसे उ०प्र० हिंदी संस्थान लखनऊ के निदेशक विनोदचक्र पांडेय (आई०ए०एस०) ने कई आयोजन किए और योजनाएँ क्रियान्वित कीं, जिनमें बालसाहित्य का सम्मान, मूल्यांकन, प्रकाशन, संरक्षण आदि अनेक कार्य किए, जिनमें बालसाहित्य भारती, सूर पुरस्कार आदि उल्लेखनीय हैं। संप्रति बालसाहित्य भारती 100000 रु० का है।

बालसाहित्य भारती, पुरस्कार की गली में अंतिम पड़ाव है, जबकि दूसरे पुरस्कारों में मानकीकरण है। साहित्यभूषण और नामित पुरस्कार किसी बालसाहित्य रचना पर नहीं दिए जाते यह विडंबना विचारणीय है। बालसाहित्य को भी साहित्य मानकर उसका अवमूल्यन नहीं करना चाहिए।

उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ से बालवाणी मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है, जिसमें सारे देश के स्तरीय बालसाहित्यकारों की रचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

### स्वतंत्रता पूर्व का बालसाहित्य :

शिशु (1916) और बालसखा (1917) वानर पत्रिकाओं का प्रवर्तन हुआ तो स्वतंत्रता से पूर्व बालसाहित्य में पद्य और गद्य दोनों स्वरूप प्रचलित थे किंतु इन दोनों में अधिकता पद्य साहित्य की थी। पद्य साहित्य अपनी तेजस्विता और आत्मस्फूर्ति से आगे की ओर बढ़ता गया। श्रीधर पाठक (1860-1928) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (बाल विभव, पद्य प्रसून), पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि के नींव निर्माण पर जिन लोगों ने अपने-अपने काव्य-भवन खड़े किए, उनमें सर्वश्री रमापति शुक्ल, सोहनलाल द्विवेदी (1906-1988), निरंकारदेव सेवक (1919-1994), डॉ० विद्याभूषण 'विभु', रामसिंहासन मधुर, ज्ञानवती सक्सेना, बाबू गुलाबराय, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', बलवीर सिंह रंग, रामदेव सिंह 'कलाधर', श्रीराम सिंह 'उदय' चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' (1925-2000), द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी (1916-1998), ठाकुर श्रीनाथ सिंह (1901-1961) आदि प्रमुख हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भी इनका प्रदेय उत्तरोत्तर उन्नत होता गया।

बालसाहित्य में गद्य विधा भी प्रमुख है निबंध की अपनी तारतम्यता है, जिसमें विचार-प्रवाह प्रवाल की तरह गुंफित रहत हैं। बालसाहित्य में स्वतंत्रता पूर्व का गद्य पाठ्यक्रम का ही एक भाग था। यह गद्य साहित्य का निकष माना जाता था। सर्वश्री प्रतापनारायण मिश्र, भारतेंदु हरिश्चंद्र, लल्लीप्रसाद पांडेय, रामकृष्णदास, बाबू गुलाबराय, वियोगी हरि, रामकृष्णदास, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, आनंदप्रकाश जैन आदि ने पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त गद्य साहित्य को उपदेशात्मक से मनोरंजक बनाने का प्रयास किया। बच्चों के विषय में अभिभावकों को प्रेरणा देने के लिए निबंध भी लिखे गए। जिनके लेखक थे, आचार्य कृष्ण विनायक फड़के, लोकेश्वरनाथ सक्सेना दादाजी, मानवती आर्या।

बच्चों के लिए लिखी कहानियाँ और जीवनियाँ, पौराणिक, महाभारतकालीन, लोकजीवन से प्रेरित थीं। रामकृष्ण की लीलाभूमि होने के कारण, इनके विषय में सर्वाधिक आख्यान हैं और इनको आधार बनाकर साहित्य लिखा गया। इनके अतिरिक्त संतों और महापुरुषों के जीवन-प्रसंगों पर जीवनियाँ और कहानियाँ बुनी गईं।

इसे विषय बनाकर, रामलीला, कृष्णलीला, धनुषयज्ञ आदि का भी लेखन गद्य-पद्य दोनों में किया गया। अंधेरनगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा जैसे व्यंजनात्मक नाटक भी लिखे गए, जिनका आनंद बूढ़ों के साथ बच्चे भी उठाते थे।

#### स्वतंत्रता पश्चात का बालसाहित्य :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात दैनिक साप्ताहिक पत्रों में बच्चों के स्तंभ निर्धारित दिनों में प्रकाशित होने लगे और पाठकों एवं लेखकों की संख्या में वृद्धि हुई। बालभारती, पराग, बालक, जैसी उत्तर प्रदेश पत्रिकाओं ने उत्तरप्रदेश को भी बाल विकास के अवसर दिए। बालकाव्य का विकास बहुत तेजी से हुआ। साक्षरता और प्रसार ने आर्थिक आत्मनिर्भरता दी। लाठी को घोड़ा मानकर चलने वाले ग्रामीण बच्चे और मध्यम आर्थिक श्रेणी के बच्चों को छोड़कर उन बच्चों की संख्या में भी वृद्धि हुई, जो साइकिल, कार और हवाई जहाज से खेला करते थे और प्राइमरी स्कूलों की बजाय मांटेसरी, किंडर गार्डेन और कान्वेंट में जाने लगे थे। इन बच्चों के परिवेश को भी बालकवियों ने अपनी रचनाओं में सम्मिलित किया और बच्चों की विकसित सोच को भी अभिव्यक्ति मिल सकी। सर्व श्री दामोदर अग्रवाल, सूर्यभानु गुप्त, शेरजंग गर्ग, डॉ॰ श्रीप्रसाद, बालस्वरूप राही, सरस्वती कुमार दीपक, बालकृष्ण गर्ग, उमाकांत मालवीय, चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक', द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, कन्हैयालाल 'मंत', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, प्रयाग शुक्ल, योगेंद्रकुमार 'लल्लन', चंद्रदत्त 'इंदु', विष्णु त्रिपाठी, डॉ॰ सरोजनी कुलश्रेष्ठ, सरोजनी अग्रवाल, रामकृष्ण खद्दर, विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद', सुमित्रा कुमारी सिन्हा, रघुवीरशरण 'मित्र', रामभरोसे गुप्त 'राकेश', धर्मपाल शास्त्री, राधेश्याम 'प्रगल्भ' आदि ने नई-नई रोचक और मनोरंजक रचनाएँ लिखीं। इनके बारे में यह कहा जा सकता है—उपजत अनत अनत अनत छवि हलहीं। ये रचनकार उ०प्र० में जनमे और प्रवास पर भी गए।

अगला दौर पुष्ट रचनाओं के साथ प्रयोगधर्मी रहा। सर्वश्री चक्रधर नलिन, डॉ॰ रोहिताश्व अस्थाना, सीताराम गुप्त, दिग्गज मुरादाबादी, बाबूलाल शर्मा 'प्रेम', शंकर सुलतानपुरी, बाबूराम शर्मा 'विभाकर', सूर्यकुमार पांडेय, दिविक रमेश, सुरेश विमल, सुंदरलाल अरुणेश, डॉ॰ अशोक रंजन सक्सेना, डॉ॰ मधु भारती, माहेश्वर तिवारी, जयप्रकाश भारती, प्रेमकिशोर पटाखा,



रमाकांत शर्मा 'उद्भ्रांत', हेमंतप्रसाद दीक्षित उद्भ्रांत, श्यामकुमार दास, धीरेंद्र कुमार यादव, डॉ० मुनिलाल उपाध्याय 'सरस', डॉ० जीवनलाल शुक्ल की रचनाएँ मैदानी गंगा प्रवाह की तरह धारों में विभक्त होते हुए भी निरंतर बनी रहीं।

बीसवीं सदी के समापन में धीमी गति से प्रवहमती रचनाएँ वृहद सिंधु में मिलने के लिए थकी-थकी-सी लग रहीं थीं लेकिन उनकी रम्यता और प्रभावपरकता, उनकी पहचान बन गई थी। ऐसे कवियों की स्वाभाविकता, सरलता और सहजता ने उनकी रचनाओं को सरसता प्रदान की। इन कवियों में शिवचरण सिंह चौहान, सुशील सरित, डॉ० उषा यादव, रामानुज त्रिपाठी, डॉ० शोभानाथ लाल, यश मालवीय, वसु मालवीय, डॉ० अश्वघोष, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, डॉ० प्रतीक मिश्र, डॉ० प्रसार निष्काम, भालचंद्र सेठिया, डॉ० शशि शुक्ला, कमलेश द्विवेदी, सफदर हासमी, मो० साजिद खाँ, मो० फहीम, देवेंद्र कुमार, रत्नप्रकाश 'शील', गोपीचंद्र श्रीनगर, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० इंदिरा गौड़, विजयकिशोर मानव, डॉ० कुँअर बेचैन, रामनारायण त्रिपाठी पर्यटक, डॉ० सुरेंद्र विक्रम, अवधबिहारी सक्सेना, डॉ० परशुराम शुक्ल, डॉ० शेषपाल सिंह 'शेष', डॉ० मिलन, राजकिशोर सक्सेना, चंद्रमोहन दिनेश, अनंतप्रसाद, रामभरोसे, डॉ० अजय जनमेजय आदि की रचनाएँ बच्चों को बहुत प्रिय हैं।

पद्य बालसाहित्य ने भी परिवर्तन की हवाओं में अपना समर्थन प्रस्तुत किया और छंद मुक्त रचनाओं का प्रवर्तन इसमें भी हुआ। मिला जुला रूप भी इसमें देखा गया। छंदान्तरण की रचनाएँ भी स्वीकार की गईं। लेकिन छंद की आवश्यकता बालसाहित्य की ऐसी अपरिहार्यता तथा अनिवार्यता है, जिसका संबंध स्मृति से है और वह साहित्य ही क्या जिसे परोसने में कठिनाई जाए।

शिशुगीत/शिशु कविता, बाल कविता और बालगीत के प्रचलन पर भी चिंतन किया गया। श्रीकृष्ण शलभ ने कविता से गीत को अलग माना है। बचपन एक समंदर (पृ० 24) में शलभ जी का कथन यहाँ उद्धृत है— 'हिंदी कविता, जिसमें गीत सहित छंद के सारे विभागत रूप समाहित हैं, से समृद्ध हुई है। जब गीत की सारी शैल्पिक जरूरतों को ध्यान में रखकर सृजन होगा तो वह निःसंदेह गीत होगा और उसे बालगीत कहा जाना ठीक होगा। हर किसी रचना को बालगीत नहीं कहा जा सकता। गाई जानेवाली प्रत्येक रचना बालगीत नहीं हो सकती।

मनोविज्ञान और पाश्चात्य प्रभावों का प्रवेश बालगीतों और बाल-कविताओं में हुआ, जिसने विषयों की परिधि में वृद्धि की और चिंतन तथा चेतना के नए दरवाजे खोले। हमने इन अतिथियों को अपने में मिलाया। हिंदी में अँग्रेजी शब्द आने दिए और इस प्रकार पाश्चात्य संस्कार भी मिलते गए। अब हमें इसका अनुभव हुआ कि हमने अपनी कमजोरियों के कारण अतिथि नहीं घुसपैठिए ठहरा लिए हैं, जो हमारी शांति में अशांति और व्यवधान पैदा कर रहे हैं।

अश्लीलता और नियमों के उल्लंघन तथा बाहरी मान्यताओं का प्रभाव हमारे रहन-सहन पर पड़ा है और हमें लगता है कि हमने ग़लती की कि अपने को स्थिर नहीं रख सके। छंदमुक्ति और कविता की स्वच्छंदता को हम रोक नहीं पा रहे हैं। पद्यात्मक बालसाहित्य में प्रहेलिकाओं और शिशु कविताओं का चुटकुला स्वरूप विद्यमान है। प्रहेलिकाएँ इच्छाओं के साथ-साथ जिज्ञासा वृत्ति को उभारती हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर इन रचनाओं के स्वरूप का गठन किया जाता है। अच्छी प्रहेलिकाएँ रचनेवालों में डॉ० नागेश पांडेय 'संजय', डॉ० अजय

जनमेजय, बाबूलाल शर्मा 'प्रेम', अजय शर्मा, श्यामसुंदर श्रीवास्तव 'कोमल', कृष्णकुमार मिश्र 'अचूक', राजा साहेब फतेहपुरी आदि उल्लेखनीय हैं। ये नए अमीर खुसरो हैं।

चुटकुला 'हँसो हँसाओ' का प्रचलित रूप है। चुट उसका आकार है और कुला (मनोवविनोद) उसका भावतत्त्व है। आजकल उसका प्रचलन शिशु कविता के रूप में है, जिसे शिशुगीत कहते हैं। कृष्ण शलभ का भी यही मत है। समय का संकट है जैसे महापुरुषों की घटनाओं, प्रकृति-चित्रण और प्रसंगों को जोड़कर महाकाव्य लिखने के प्रयास किए गए हैं। खंडकाव्य जगनिक के आल्हाखंड, तुलसी के लक्ष्मण परशुराम संवाद, बालि-रावण संवाद से प्रारंभ होकर पंचवटी (मैथिलीशरण गुप्त), हल्दीघाटी (श्यामनारायण पांडेय), चितौड़ (चंद्रपालसिंह यादव मयंक), लाक्षागृह और गिरिधर मीरा (राष्ट्रबंधु) तक बिखर गए हैं।

इक्कीसवीं सदी के बालरचनाकार उस कालखंड में गतिशील हैं, जबकि अखबारों, पत्रिकाओं में बाल रचनाओं पर संकट है। केवल आकाशवाणी केंद्र और कुछ पत्रिकाओं में बाल रचनाएँ छप पाती हैं। गीता चौहान, महेश त्रिपाठी, प्रियभाष, कृष्णा खंडेलवाल, निर्मलासिंह, अभिनंदन, आशीष शुक्ल जैसे उदीयमान पुरुषार्थी बालरचनाकार अपनी क्षमताओं से अपना विकास-पथ तैयार कर रहे हैं।

### गद्य में बालसाहित्य की प्रगति :

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् बाल गद्य का विकास बहुत तेजी से हुआ। शिक्षा प्रचार और साक्षरता प्रसार ने आधुनिकता को बहुत आकर्षित किया। आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ साथ भारत के मजबूत संबंध अन्य देशों से बनते गए और ज्ञान-विज्ञान के उपकरणों की उपलब्धि में वृद्धि होती गई।

बच्चों की फैंटेसी को भी पंख लग गए। क्रिकेट मैचों की तरह नियमों के उल्लंघन होने लगे। हैरी-पॉटर तो उसका एक छोटा रूप है, जिसकी विकरालता हमें दिखाई पड़ी कि बच्चे छतों से कूद रहे हैं और सैक्स की मर्यादाएँ तोड़ने में अपनी संतुष्टि देखते हैं। कानपुर, वाराणसी, आगरा, लखनऊ, मेरठ, गाज़ियाबाद, इलाहाबाद में जनसंख्या विस्फोट हुआ तो बंगाल, उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्र प्रदेशों से आगत लोगों ने विभिन्नता में एकता के परिदृश्य उपस्थित किए। गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर, गुरु नानकदेव जी, गुरु गोविंदसिंह जी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, बालगंगाधर तिलक, महादेव गोविंद रानाडे, अशफाक उल्ला खाँ, रहीम इंशा अल्ला खाँ, फ़कीर मोहन सेनापति, गोपबंधु दास आदि के संग हिंदी के महोदधि में मिलते गए और इनसे रत्नाकर की संज्ञा उसे मिली। ज्ञान-विज्ञान के आगार के रूप में भी हिंदी का बालसाहित्य संपन्न बनता गया।

संस्कृत के सन्निकट भाषाओं में पंजाबी, बंगाली के अतिरिक्त इसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों का व्यवहार बढ़ता गया। अंग्रेज़ी के आने से हिंग्लिश जैसे प्रदूषित शब्द भी विकारी बनते गए। लेकिन इस प्रदेश में भाषा वैज्ञानिकों और वैयाकरणिक आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ॰ बाबूराम सक्सेना आदि ने भाषा की स्वतंत्रता में अपने ढंगों से शब्दों को आत्मसात किया, जिसके कारण हिंदी का बालसाहित्य विकृत होने से अपने को बचाता रहा है। भाषा विज्ञान और व्याकरण दोनों को ही यहाँ फलने-फूलने के अवसर मिले हैं।

बच्चों को पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियों का ज्ञान देने के लिए नए-पुराने

लेखक सजग रहे हैं। पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, शिवकुमार गोयल, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, प्रेमचंद, धर्मपाल शास्त्री, व्यथित हृदय आदि ने अच्छी कहानियाँ लिखीं जो कि रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। गीता प्रेस गोरखपुर, गंगा पुस्तक माला, छात्र हितकारी प्रकाशन आदि ने रुचि लेकर कम मूल्य की उपयोगी पुस्तकें दीं। विषय की दृष्टि से इन कहानियों और जीवनियों में अधिक अंतर नहीं है।

कहानियों में क्रमशः विविधता आती गई और वन, पशु-प्रवृत्ति, लोकजीवन, सामाजिक सद्भाव और विज्ञान के आविष्कार और समाज में इसके प्रभाव को रेखांकित करती कहानियाँ लिखी गईं। प्रेमचंद ने जंगल की कहानियाँ और कुत्ते की कहानी आदि पुस्तकें लिखीं। इनमें वनजीवन और पशु-प्रवृत्तियों का वर्णन मानव से संबंधित करके किया गया। लोकजीवन की अनादि का तीन परंपराओं में बाल कहानियों का अद्भुत खजाना है। नैतिक शिक्षाओं और जीवनशैली की महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ मित्रलाभ और हितोपदेश में दी गई हैं। उनसे प्रेरणा लेकर हिंदी में भी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं, जिनको सुनाने और सुनने का प्रावधान भी त्योहारों और पर्वों पर किया गया है। अनेक त्योहारों पर बच्चों और परिवार के सदस्यों को बिठाकर परिवार की वृद्धाएँ इन कहानियों को सुनाती हैं। इतना ही नहीं व्रत करने के लिए भी कुछ कहानियों को सुनाना या सुनना पूजा का अंग माना जाता है। रविवार (सूर्य), सोमवार (चंद्रमा, शंकर, लक्ष्मी), मंगलवार (हनुमान), बुद्धवार (गणेश जी), गुरुवार (विष्णु), शुक्रवार (संतोषी माता), शनिवार (शनि कोप से मुक्ति) की कथाएँ आदि बच्चों को अपने घरों से प्राप्त होती हैं।

महापुरुषों और प्रेमकथाओं का सिलसिला भी हमें लोक परंपराओं से प्राप्त होता है। आल्हा-उदल और उनके साथियों की कहानियाँ श्रावण मास में पद्य-कथाओं के रूप में किसी भी सार्वजनिक स्थल पर प्रस्तुत की जाती हैं। इनसे जुड़ी हुई किंवदंतियाँ भी प्रचलित हो गई हैं और पात्र आज भी चर्चित हैं, ब्रह्मा, मलखान, माहिल, माया आदि। हीर-राँझा, लैला-मजनूँ, सोनी-महिवाल, फरियाद-सीरी आदि कहानियाँ में जीवित हैं। पहले चौपालों में कहानियाँ कहने का प्रचलन था। कोई वक्ता इनको रस लेकर, भावविभोर होकर अभिनय में अंग चालन के साथ कहता था, जिसके बाद में चलचित्रों और दृश्य-श्रव्य माध्यमों में स्थान बनाया। कैसेट, आकाशवाणी और दूरदर्शन में इनकी आवृत्तियाँ आज भी लोकप्रिय हैं। बच्चों की ये कहानियाँ अवस्था, क्षेत्रीयता और भाषा की सीमाएँ लाँघकर सारे देश में फैल गई हैं।

समाज सुधारकों के बारे में भी कहानियाँ प्रचलित हुईं और उत्तर प्रदेश में गांधी जी की डांडी यात्रा और ज्योतिबाफुले जैसे जीवन प्रसंग इस प्रदेश में बाहर से आए और यहाँ रच-बस गए। समाज-सेवकों के कर्तव्य को भी साहित्य में स्थान मिला।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से समाज पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है और बच्चों की कहानियों में आजकल मोबाइल, ईमेल, कंप्यूटर आदि के वर्णन और इनके प्रभाव के विवरण मिलते हैं। विज्ञान कहानियाँ लिखनेवाले बालसाहित्यकारों में संजय जायसवाल 'संजय' (फैक्स मशीन) जाकिर अली 'रजनीश', अखिलेश श्रीवास्तव 'नमन', स्व० डॉ० शोभनाथ लाल, पृथ्वीनाथ पांडेय, शुकदेव प्रसाद, सतीशचक्र टंडन, रमाशंकर आदि की अनेक पुस्तकें बहुत रोचक हैं। उन्होंने विज्ञान के सिद्धांतों, उपकरणों और इनके प्रयोगों पर आकर्षक कहानियाँ लिखी हैं। श्री रमाशंकर को वैज्ञानिक कहानी के लिए भारतेंदु पुरस्कार दिया गया है।

चरित्र तथा नैतिक उन्नयन के लिए भी बाल कहानियाँ लिखी जा रही हैं। सर्वश्री चक्रधर नलिन, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, शमशेर अहमद ख़ान, डॉ. उषा यादव, डॉ. नागेश पांडेय 'संजय', नीलम राकेश, डॉ. श्रीप्रसाद, भगवतीप्रसाद द्विवेदी, शंकर सुलतानपुरी, डॉ. सरोजनी पांडेय और उपरिलिखित विज्ञान कथाओं के लेखक सम्मिलित हैं। सामाजिक विषयों पर बालकहानियाँ लिखनेवालों में अरसद ख़ान, स्व. शकुंतला वर्मा, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, स्व. डॉ. प्रेमनारायण गौड़ के प्रदेय महत्त्वपूर्ण हैं। बच्चों के उपन्यासों के लेखन में भूपनारायण दीक्षित का खडखड़ देव महत्त्वपूर्ण है। जाकिर अली रजनीश, शमशेर अहमद ख़ान, डॉ. राष्ट्रबंधु (मूँगा, टी फार टेसू, जादूगर फास्टस), डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, स्व. डॉ. शकुंतला सिरोठिया के नाम उल्लेखनीय हैं।

बालनाटकों की दिशा में, डॉ. श्यामलाकांत वर्मा, डॉ. श्रीप्रसाद, डॉ. राष्ट्रबंधु (अब्बा की खाँसी, श्रेष्ठ रंगमंचीय बाल नाटक), शंकर सुलतानपुर, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, अखिलेश श्रीवास्तव 'चमन', आदि के प्रयास उल्लेखनीय हैं।

बालसाहित्य की समीक्षा के क्षेत्र में भी उत्तर प्रदेश अग्रणी है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, डॉ. उषा यादव, डॉ. राजकिशोर सिंह, डॉ. सरोजनी पांडेय, विनोदचंद्र पांडेय, सूर्यकुमार पांडेय, डॉ. कामना सिंह, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, श्रीकृष्ण शलभ, डॉ. नागेश पांडेय 'संजय', डॉ. सुरेंद्र विक्रम, डॉ. श्रीप्रसाद, डॉ. चक्रधर 'नलिन' आदि के प्रदेय को सम्मिलित किया जाए तो इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसे श्री निरंकारदेव सेवक ने बालगीत साहित्य के प्रणयन से प्रारंभ किया था।

□ 109/309 रामकृष्णनगर  
कानपुर (उ०प्र०)

## समकालीन कविता में विविध सोपान

डॉ० रमाकांत पांडेय

डॉ० बलवीर सिंह

हरिश्चंद्र पी०जी० कॉलेज, वाराणसी

कविता का कथ्य-संसार जीवन और जगत के संपूर्ण अनुभव, स्थितियों और वस्तुओं से निर्मित होता है। आज रचनाकार समकालीन कविता और उसके कथ्य को एक प्रेम में मढ़ने में असमर्थ है। इसकी विषयवस्तु में वैविध्य है। डॉ० क्रांतिकुमार का कथन है कि 'यदि जन्म से लेकर मृत्यु तक की वस्तुओं पर लिखी हुई कविताओं का एक संकलन तैयार करना हो तो नई कविता के पूर्ववर्ती काव्य की सीमा, संकीर्णता अपने आप स्पष्ट हो जाएगी।

समकालीन कवियों ने विविध विषयों पर आधारित कविताओं की रचना की। उन्होंने सामाजिक और मानवीय दृष्टिकोण को अपनाते हुए, प्रकृति से प्रेम और विस्तृत धरातल पर उसके सौंदर्य की सराहना की। गिरिजाकुमार माथुर प्रकृति सौंदर्य के प्रेमी रहे हैं। अतएव, उनके गीतों में प्रकृति जितनी सजी-सँवरी अथवा निखरी है, कदाचित् अन्य नए कवियों की कविता में नहीं। किसी कुशल चित्रकार की भाँति उन्होंने प्रकृति में जो रंग, रूप, रस और वातावरण भरे हैं, वे एक नई बेहतर दुनिया का सृजन करते हैं। वास्तव में, प्रकृति का यह वैविध्यपूर्ण रूप-रंग और नए कवियों रचना में दृष्टिगत नहीं होते। माथुर ने प्रकृति परिवेश में मानवीय सौंदर्य को भी उद्घाटित किया है। श्रृंगारिक अनुमति और देहासक्ति का अतिरेक उनकी कविताओं को जीवंतता प्रदान करते हैं। एक ओर उन्होंने प्रकृति में मानवीय आलिंगन, छुअन, उकसन या चुंबन की मिठास देखी है, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय व्यक्ति के यांत्रिक जीवन की उदासी और थकान के चित्र भी। उन्होंने प्राकृतिक आँखों से प्रकृति के प्रत्येक दृश्य को निहारा है—

सूनी आधी रात  
चाँद कटोरे की सिकुड़ी कोरे से  
मद चाँदनी पीता लंबा कुहरा,  
सिमट, लिपटकर।  
दूर, दूर के धौल भरे सुनसास पथों में  
चलने की आहट ओले-सी जमी पड़ी थी,  
भूरे पेड़ों का कंपन भी ठिठुर गया था।  
कभी-कभी बस,

पतझर का सूखा पत्ता गिरकर उड़ जाता,  
भरे स्वरोँ से खर-खर करता।<sup>1</sup>

तत्कालीन राजनीति का चित्रण, प्रेम और काम तथा जीवन-मृत्यु से संबंधित रचनाओं में जीवन की निस्सारता साफ़ दिखाई पड़ती है।

घनीरात बादल रिमझिम है दिशामूलक है निस्तब्ध बनांतर  
व्यापक अंधकार में सिकुड़ी सोई नर की बस्ती, भयंकर  
है निस्तब्ध गगन, रोती-सी सरिता-धार चली घहराती  
जीवन लीला को समात कर मरण सेज पर है कोई नर।  
बहुत संकुचित होती घर है दीपालोकित फिर भी धुँधला,  
बधूमूर्च्छित, पिता अर्द्धमृत दुखिया माता स्पंदनहीना।  
घनीरात बादल रिमझिम है, दिशामूलक कवि का मन गीला  
यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षणभंगुर।<sup>2</sup>

नरेश मेहता, विजयदेव नारायण साही, कुँवरनारायण और प्रयागनारायण त्रिपाठी की कविताएँ भी मृत्युबोध से आक्रांत दिखाई पड़ती है—

हर नया मार्ग गंतव्य हीन  
आगे-आगे प्रतिक्षण बढ़ता जाता है  
जिस पर बस चलते जाने का निस्कारण अभिप्राय मिला है  
मुझको  
अतिहीन यात्री को।<sup>3</sup>

### समकालीन कविता और विज्ञान बोध :

समकालीन कवियों की रचनाओं में परमाणु संरचना को संवेदना तथा संघर्ष के धरातल पर प्रस्तुत किया गया है विशेष रूप से मुक्तिबोध की रचनाओं में जो नितान्त मौलिक वैज्ञानिक चिंतन प्रतीत होता है। विज्ञान में पदार्थ की अवधारणा का मुख्य स्थान है, जो सृष्टिक्रम की व्याख्या को प्रस्तुत करता है। यह पदार्थ की अवधारणा का अणु और परमाणुओं का संघर्ष मात्र है। दूसरे शब्दों में पदार्थ की सूक्ष्मतम इकाई को ही परमाणु कहते हैं, जिसे सर आर्थर एरिंग्टन ने चेतन तत्त्व कहा है।<sup>4</sup> धर्मवीर भारती ने अपनी कविता में विज्ञानबोध को रचनात्मक संदर्भ प्रदान कर इस समस्या की ओर संकेत किया है। मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार माथुर ने विज्ञान के मूल शब्दों के अर्थ के माध्यम से अपने विज्ञानबोध को व्यक्त किया है। अज्ञेय ने भी अपनी कविता रहस्यवाद में अणु की अस्मिता को स्वीकार किया है—

एक असीम अणु  
इस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है  
अपने भीतर समा लेना चाहता  
उसकी रहस्यमयता का पर्दा खोलकर  
उससे मिल जाना चाहता है  
यही मेरा रहस्यवाद है।<sup>5</sup>

गिरिजाकुमार माथुर की कविता में फिशन प्रक्रिया में संदर्भित विचार द्रष्टव्य है—  
हो गया है फिशन अणु का  
परमब्रह्म अनादि मनु का  
ब्रह्म ने भी खूब बदला नाम  
लोकहित में पर न आया काम <sup>6</sup>

#### इतिहास और पौराणिकता :

समकालीन कविता में अनेक ऐसी काव्य कृतियाँ हैं, जो इतिहास और पुराण की कथाओं के माध्यम से नई दृष्टि देती हैं। इनमें भारती की 'अंधायुग', नरेश मेहता की 'संशय की एक रात', कुँवरनारायाण की 'आत्मजयी', विजय की 'एक पुरुष' और दुष्यंतकुमार की 'एक कंठ विषपायी', गिरिजाकुमार माथुर की 'जो बँध न सका' और डॉ० देवराज की 'इतिहास पुरुष' आदि उल्लेखनीय हैं। धर्मवीर भारती तथा नरेश मेहता ने समसामाजिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। महाभारत के प्रकरण को लेकर लिखी हुई काव्य-कृति 'अंधायुग' में इतिहास के प्रति एक बड़ा अविचार भी है। <sup>7</sup> फिर भी यह संकलन के रूप में एक पौराणिक दस्तावेज़ है, जो सही तथ्यों और तिथियों का आकलन करता है। प्रायः सभी समर्थ कवियों ने कुंती, अभिमन्यु, एकलव्य, शंबूक, जटायु, राम-सीता, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि पौराणिक संदर्भों का प्रयोग किया है। भारती की कविताओं में इतिहास और पुराण की कथाओं को नया संदर्भ मिला है। उन्होंने बड़ी सतर्कता के साथ पौराणिक कथन को चित्रित किया है। वास्तव में शासन की परंपरा ही अंधी है। आँखें खुली रखकर शायद शासन हो ही नहीं सकता। महाभारत के युद्ध के समय अंधे धृतराष्ट्र से सिंहासन सुशोभित था। अतः राजपक्षीय होने के कारण अंधेपन को ही सर्वथा विजयी होना था। अंधों की कथा के माध्यम से भारती ने आदर्श की स्थापना करनी चाही है। अतएव उनकी कविता में पौराणिक यथार्थ आज के संदर्भ को उद्घाटित करता है—

अंधों से शोभित था युग का सिंहासन  
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा  
दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन  
भय का अंधापन, ममता का अंधापन  
अधिकारों का अंधापन जीत गया।  
जो कुछ सुंदर था, शुभ था, कोमल था।  
वह हार गया ... द्वार पर युग बीत गया। <sup>8</sup>

#### समकालीन कविता में व्यंग्यपूर्ण कथन :

व्यंग्य अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है। वह अपनी वक्रता में एक साथ अनेक अर्थों को अपने में समेटे रहता है। समकालीन कविता में प्रायः सभी रचनाकारों ने व्यंग्य के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्त किया है—

वैभव की विशाल छत्रछाया में  
स्वर्ण सिंहासन पर  
रखी देख मंदिर में पत्थर की मूर्तियाँ  
क्षुब्ध हो गई गर्भवती

ईश्वर से माँगती है वरदान  
केवल पाषाण हों  
कोख की मेरी संतान <sup>9</sup>

भारतभूषण अग्रवाल ने जीवन के यथार्थ को तीक्ष्ण व्यंग्य के द्वारा उभारने की चेष्टा की है। कवि को महात्मा गांधी के अहिंसात्मक रवैये के प्रति आक्रोश है। अतः वह उनकी अहिंसात्मक भावना पर नुकीले व्यंग्य करता हुआ दिखाई देता है—

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा  
सोच रहा था मैं मन ही मन हिटलर बेटा  
बड़ा मूर्ख है जो लड़ता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के कारण  
क्षणभंगुर ही तो है यह सब वैभव धन  
अंत लगेगा हाथ न कुछ हो दिन का मेला  
लिखूँ एक खत हो जा गांधी जी का चेला  
वे तुझको बतालाएँगे आत्मा की सत्ता  
होगी प्रकट अहिंसा की तर्कपूर्ण महत्ता  
कुछ भी हो तो है नहीं धरा दुनिया के अंदर  
छत पर से पत्नी चिल्लाई दौड़ो 'बंदर'। <sup>10</sup>

#### समकालीन कविता में युद्ध और शांति :

समकालीन काव्यधारा में युद्ध और शांति ने अन्य युगों के रचनाकारों की भाँति प्रभावित किया है। युद्ध और शांति के माध्यम से अपनी रचनाओं को केंद्र में रखकर समकालीन रचनाकारों ने विषमता, विकृति और असंतुलन का परिहार-परिष्कार करना चाहा है—

तुम्हें लड़ना युद्ध  
अपने से नहीं  
अनास्था से नहीं  
संशयी व्यक्तित्व से भी नहीं  
केवल असत्य से। <sup>11</sup>

शांति-स्थापना के लिए समकालीन कवियों ने खुले शब्दों में युद्ध की प्रयोजनीयता को स्वीकार किया है—

इतिहास कोई पढ़ ले  
बिना युद्ध के कब निकला है  
कोई सही हल। <sup>12</sup>

व्यवस्था और न्याय नहीं पाएगा कोई तो  
सबसे बड़ी व्यवस्था की तलाश क्यों नहीं  
क्यों नहीं युद्ध क्यों नहीं विनाश  
क्यों नहीं एक अंत एक नरमुंड का?



### संदर्भ

1. डॉ० नगेंद्र और कैलाश वाजपेयी द्वारा संपादित आज के लोकप्रिय हिंदी कवि गिरिजाकुमार माथुर, पृ० 55
2. नई कविता, प्रयागनारायण त्रिपाठी, पृ० 83-84
3. वही, पृ० 84
4. The Physolophy of physical science-Aurthor Adingyon, p. 182
5. इत्यलम अज्ञेय, पृ० 13
6. धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर
7. नई कविता, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, पृ० 65
8. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ० 131
9. युग की गंगा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० 22
10. तार सप्तक, संपादक अज्ञेय, पृ० 97
11. संशय की एक रात, नरेश मेहता, पृ० 108
12. युग की गंगा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० 22

## अमृतलाल नागर के कथा-चरित्रों में विवाहेतर प्रेम-संबंध

कु० मंजू सिंह शोध छात्रा

डॉ० मनमोहन शुक्ल शोध निर्देशक

वीरबहादुरसिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

अमृतलाल नागर एक ऐसे कथाशिल्पी थे, जिन्हें सामाजिक संरचना के प्रायः सभी संबंधों को समाज मनोविज्ञान की दृष्टि से व्याख्यायित करने की महारत प्राप्त थी। इनके कथाचरित्र मानवमूल्यों की प्रतिमूर्ति से लगते हैं। शिथिल होती हुई प्राचीन मान्यताओं के स्थान पर वे नवीन किंतु मूल्यग्राही परंपराओं को समाज में देखना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में विवाह-पूर्व प्रेम को कथाचरित्रों के माध्यम से विवाह में परिणत कराकर विधिक मान्यता प्रदान की है।

विवाहित पति अथवा पत्नी के होते हुए भी व्यक्ति के अन्यत्र पाए जानेवाले प्रेम संबंध, विवाहेतर प्रेम-संबंध कहलाते हैं। नागर जी ने 'बूँद और समुद्र' के महिपाल व शीला स्विंग, नाच्यौ बहुत गोपाल के मसीता तथा गुल्लन तथा इसी उपन्यास के मोहना मेहतर व श्रीमती निर्गुण के माध्यम से विवाहेतर प्रेम-संबंधों का चित्रण किया है। 'बूँद और समुद्र' का महिपाल एक लेखक है, लेकिन उसकी पत्नी अशिक्षित, अंधविश्वासी एवं रूढ़िवादी है। महिपाल के बौद्धिक व्यक्तित्व को पत्नी की अपेक्षा अविवाहित एवं प्रगतिशील विचारों की महिला डॉ० शीला स्विंग के प्रेम में तृप्ति मिलती है। डॉ० शीला भी महिपाल को पूर्ण निष्ठा के साथ प्रेम करती है। महिपाल का प्रेम ही उसके जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है, जिस पर वह अपना एकाधिकार समझती है। वह अच्छी तरह जानती है कि महिपाल एक भरे पूरे परिवार का स्वामी है, किसी का पति भी है। परंतु इससे महिपाल के प्रति उसके प्रेम में कोई अंतर नहीं पड़ता। वह महिपाल के जीवन में किसी प्रकार की कोई अशांति पैदा नहीं करना चाहती तथा हर स्थिति में महिपाल से अपना प्रेम-संबंध बनाए रखना चाहती है। लेखक महिपाल भी उसे अपने मन की शांति और पत्नी तक स्वीकार करता है।<sup>1</sup> महिपाल और डॉ० शीला स्विंग का प्रेम सामाजिक दृष्टि से अनैतिक और असंवैधानिक लगने पर भी निष्कलंक और निष्पाप है। वे एक-दूसरे को मात्र काम दृष्टि का साधन नहीं, प्रत्येक परस्पर पूरक एवं सहायक मानते हैं। महिपाल का दृष्टिकोण है कि स्त्री-पुरुष का ये सेक्सिया नाता स्त्री-पुरुष के संपूर्ण जीवन का एक अंग मात्र है। दरअसल, होता यह है कि हममें से अपने लिए एक ऐसा अपोजिट सेक्स वाला साथी खोजता है, जिससे उसके बहुत से विचारों, कामनाओं और आदर्शों की पटरी बैठ

जाए। दुख, दर्द, हारी-बीमारी की मैटीरियल स्पिंसिबिलिटीज से लेकर सुंदर, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक, वह अपने जीवन साथी के सहारे उठ सके।<sup>2</sup> कहना न होगा कि महिपाल और डॉ. शीला स्विंग के प्रेम-संबंधों का आधार यही विचारधारा है। कदाचित् इसी कारण उनके प्रेम में कहीं भी छिछलापन नहीं है। वह बहुत संयमित एवं गंभीर है। इतना सबकुछ होने पर भी सामाजिक मर्यादाओं एवं आदर्शों की भावना में विवश होकर महिपाल को डॉ. शीला स्विंग से अपना संबंध-विच्छेद कर लेना पड़ता है। इस संबंध में दो राय नहीं है कि महिपाल और डॉ. शीला स्विंग के संबंध के पीछे कथाकार नागर जी का वैवाहिक प्रेम रुझान है।

विवाहोत्तर प्रेम-संबंधों का एक बहुत पवित्र एवं संजीता रूप 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास में मसीता मेहतर एवं गुल्लन दाई के माध्यम से चित्रित किया गया है। गुल्लन और मसीता के बीच तब से दोस्ती है, जब से गुल्लन का पति एवं मसीता की पत्नी जीवित थी। आज जबकि गुल्लन का पति और मसीता की पत्नी जीवित नहीं हैं, उनकी दोस्ती और प्रेम अधिक गहरा हो गया है। दुनिया जानती है कि गुल्लन और मसीता के रिश्ते कितने साफ हैं।<sup>3</sup> यह दूसरी बात है कि वे अपनी कोठरी का दरवाजा बंद करके अक्सर आपस में गुटरगू करते हैं।<sup>4</sup> कभी-कभी हँसी-मजाक की तरंग में आकर मसीता गुल्लन से चुंबन माँगा करता और गुल्लन तपाक से उत्तर दिया करती थी। साल दो बरस में भी तेरी तरह बिल्कुल पोपली हो जाऊँगी तब लेना बोसे।<sup>5</sup> मसीता और गुल्लन के प्रेम की गहराई तो इस बात में निहित है कि मसीता की मृत्यु के बाद गुल्लन अपने-आपको दूसरी बार विधवा अनुभव करती है, 'मसीता के जाने से मुझे ऐसा लगता है कि मैं दूसरी बार विधवा हो गई। जवानी हँसी-मजाक के सिवा हममें कुछ भी ऐसा-वैसा रिश्ता नहीं रहा, फिर भी नत्थू के बाप से जादा मुझे इसका जाना अखरा है।<sup>6</sup> कामातृप्ति की स्थिति में व्यक्ति जब किसी स्त्री या पुरुष से काम तृप्ति पा लेता है तो उसे अपनी तृप्तिदात्री अथवा दाता के प्रति स्वभावतः प्रेम हो जाता है। 'नाच्यौ बहुत गोपाल' उपन्यास की श्रीमती निर्गुन बूढ़े मसुरियादीन महाराज की नवविवाहिता वधू एक मेहतर नौजवान मोहना से कामतृप्ति पाकर उसके साथ भाग जाती है। एक समय के बाद जब उसकी अदम्य कामवासना को मोहना के रूप में संतुष्टि का चिरसाधन उपलब्ध हो जाता है तो उसे मोहना के प्रति प्रेम हो जाता है। निर्गुन अपने आत्मचिह्न के अंतर्गत स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करती है— 'निर्गुनिया की नारी काया को सशक्त पुरुष देह चाहिए। जाति वर्ग वर्ण नहीं। सुख, सुविधाएँ और सम्मान चाहे कम भी मिले, पर कायिक मानसिक तृप्ति का संतोष उसे मिलना ही चाहिए। सुख-सुविधाएँ तो उसे सामर्थ्यहीन आर्य पुत्र ने भी भरपूर दी थी किंतु कितना अस्पृश्य था वह, उसे मोहना परम स्पृश्य लगा था आज भी लगता है।<sup>7</sup> मोहन के प्रति निर्गुन का प्रेम निरंतर गहरा होता चला जाता है। कदाचित् इसीलिए मोहना के मारे जाने के बाद अकेली होकर भी अकेली नहीं होती वह शाम को शराब पीती है ... नशा करती है तब उसका मोहना भी उसके सीने के भीतर से निकलकर उसके पास बैठ जाया करता है। वे दोनों पीते हैं, खाते हैं और लिपटकर सो जाते हैं।<sup>8</sup> मोहना पूर्ण मिलन के लिए हट करता है। अतः निर्गुन नींद की गोलियाँ खाकर हमेशा के लिए मोहना से जा मिलती है।

'अग्निगर्भा' में विवाहिता श्रीमती पुसुल गांगुली स्वार्थवश रामेश्वर से प्रेम-संबंध बनाए

रखती है। स्वयं लेखक के शब्दों में—करीब-करीब पूरा कॉलेज जानता था कि रामेश्वर और श्रीमती पुसुल गांगुली के रिश्तों में मैलापन है। प्रेम के इसी कमरे की बगल में एक छोटा कमरा भी है, जिसमें एक गद्देदार पलंग बिछा रहता है। मिस्टर रामेश्वर शुक्ल के आराम करने के लिए तो वह डलवाया ही गया है लेकिन कुछ समय पहले पूसुल गांगुली भी अक्सर उस पर आराम करने आया करती थी।<sup>9</sup> इसी उपन्यास के गुलशनराय का बड़ा बेटा हिम्मतराय अपनी पत्नी से प्रेम व्यवहार छोड़कर छोटे भाई की पत्नी से अवैध संबंध स्थापित कर लेता है और अपनी पत्नी को बुरी तरह से यातना देता है। यथा— ‘स्मगलर बड़े भाई ने छोटे भाई की पत्नी से घर में खुला संबंध स्थापित कर रखा है। माँ बड़े की पक्षधर है क्योंकि वह कमाऊ और छोटा बेटा निकम्मा गजेड़ी है। नरसो रात शराब में धुत लड़के से शिकायत करके उसने बड़ी बहू को खूब पिटवाया।’<sup>10</sup>

‘बिखरे तिनके’ उपन्यास की सुनंदा धूरैलाल की पत्नी होते हुए भी डॉ॰ गोयल से संबंध बनाए रखती है तथा उनकी संतान को जन्म देती है। धूरैलाल अपनी पत्नी के इस अनैतिक कार्य से बहुत दुखी है। वह विवश होकर नसबंदी करा लेता है ताकि पत्नी के सतीत्व की सही ढंग से जानकारी हो सके—‘सुनंदा और डॉ॰ गोयल के अवैध रिश्ते से दुखी धूरैलाल से अपनी नसबंदी करवा के अपनी पत्नी को यह धमकी दी थी कि अब जो तुम्हारे बच्चे होंगे उनका बाप कानूनी तौर पर मैं नहीं तुम्हारा यार की कहलाएगा।’<sup>11</sup> इसके अतिरिक्त नागर जी के कथासाहित्य में अन्य स्थलों पर भी नर-नारी संबंध विवाहोपरांत दिखाई देते हैं।

नागर जी ने निर्गुनिया के बाद सीता पांडेय नामक ऐसे चरित्र को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है, जिससे पढ़ी-लिखी लड़कियों की संपूर्ण समस्याओं का परिचय होता है। सीता पांडेय निम्न मध्यवर्गीय परिवार की लड़की है। वह पढ़-लिखकर भी सोचती है कि उसका विवाह एक पढ़े-लिखे लड़के से हो जाए। इसलिए उसे अपनी सहेली मैत्रेयी का निर्णय उचित लगता है, जिसने स्वयं कान्यकुब्ज होते हुए भी मराठी से विवाह कर लिया और पूरी तरह संतुष्ट है। वह सोचती है—कैसी सौभाग्य शालिनी है मित्रो! हे राम तुमने अपने जन्मदिन को कृपापूर्वक मेरा जन्मदिन ही बनाया है। तु मुझे अभागिन न बनाना। मुझे कुसुम जैसा कुबेर पति नहीं चाहिए। मित्रो जैसा भाग्य काम्य होते हुए भी मेरा जैसा इष्ट नहीं। हाँ, जीवनसाथी इसके जैसा ही विद्वान और सरल व्यक्ति देना। झोपड़ी में भी महलों से अधिक सुख पा लूँगी तुम्हारी कृपा से।<sup>12</sup> लेकिन सीता पांडेय का दुर्भाग्य कि उसे पति के नाम पर रामेश्वर जैसा कलंक मिला।

इस उपन्यास के प्रारंभ में मैत्रेयी कुसुम और सीता तीनों सहपाठिनी हैं। इन तीनों चरित्रों का संबंध जातीय एवं सख्यभाव से है। मैत्रेयी, कान्यकुब्ज होते हुए भी गोडेकेले से विवाह कर लेती है और कुसुम एक उद्योगपति से विवाह करके सेठानी बन जाती है। सीता चूँकि इस प्रकार का निर्णय नहीं ले पाती है, इसलिए वह सोचती है कि ‘यह शादी-ब्याह कैरियर सबके बिल्कुल अलग होते हैं। कुसुम से तो खैर तुलना कर ही नहीं सकती, हाँ तेरे समान मैं भी विद्याशास्त्र पति चाहती हूँ पर मेरे चाहने से क्या सबकुछ हो सकता है।’<sup>13</sup> सीता पांडेय की यह सोच अंततः उसे विद्रोही बना देती है और वह जिजीविषा के लिए विद्रोह और संघर्ष पर उतरती है और ऐसी स्थिति में वह अपने साथ यह निर्णय लेती है— ‘सच कह रही हूँ मेरी जीवन-दृष्टि अब पूरी तरह बदल चुकी है। इस झूठी दुनिया से अब समझौता करके नहीं, वरन्

लड़कर जीना चाहती हूँ।' <sup>14</sup>

'पीढ़ियाँ' उपन्यास में डॉ० टंडन के द्वारा कौशल्या को दी गई शिक्षा और अनुशासन से हमारे सामाजिक मूल्यों का संकेत मिलता है— 'पिता जी कहा करते थे जो घर से न जुड़ा रहा, वह मुहल्ले वालों से भला क्या जुड़ेगा और जो घर और मुहल्ले से ही न जुड़ा, वह भला देश से क्या जुड़ेगा।' <sup>15</sup>

निष्कर्षतः नागर जी के कथासाहित्य के विवेचन-विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि काम और प्रेम-संबंधों का व्यापक चित्रण नर-नारी संबंधों को ध्यान में रखते हुए किया गया है। नर-नारी संबंध ही काम एवं प्रेम का बोधक है। नागर जी ने वर्तमान समाज के उच्च और मध्यम वर्ग में नर-नारी के नैतिक अथवा अनैतिक संबंधों का व्यापक चित्रण सामाजिक धरातल पर किया है। समाज हित की दृष्टि ने नागर जी वैवाहिक कुटुंब-व्यवस्था के पक्षपाती हैं, वे फ्री सेक्स तथा विवाहेतर काम प्रेम-संबंधों को नर-नारी के लिए उचित नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि नर-नारी ही इस सृष्टि के रचनाकार है। विवाह पूर्व यदि नर-नारी प्रेमी-प्रेमिका के रूप में रहने के बाद शादी कर लेते हैं तो सामाजिक दृष्टि से यह हमारे समाज की दृष्टि से हानिकार नहीं बल्कि लाभप्रद है। इस संबंध में कथाकार की दृष्टि मनोवैज्ञानिक है। उनके अनुसार— 'काम की वकालत मैंने पश्चिमी दृष्टिकोण से नहीं की मैं मूल भारतीय धारा से प्रभावित रहा हूँ ... काम मूल रूप में सर्वज्ञात है। इस सर्वज्ञात को अज्ञात बनाए रखने की असंभव चेष्टा करना निष्प्रयोजन है।' <sup>16</sup> वे कहते हैं कि 'हम मूल्यों से जुड़े हैं, संदर्भों से जुड़े हैं। दोनों का अलग-अलग महत्त्व है। कन्नगी परिणिता नारी है। उसका अधिकारी है कोवलन। माधवी रूप जीवा है, उसका मूल्य है। वह कितनी भी सुंदर क्यों न हो, कीमत देकर खरीदी जा सकती है। कीमत देकर बाजार से खरीदी गई वस्तु के लिए महत्त्वपूर्ण है पैसा। कन्नगी तो अमूल्य है। पैसे से माधवी खरीदी जा सकती है, कन्नगी नहीं।' <sup>17</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से कथाकार नागर जी के कथा-चरित्र विविधआयामी हैं। वे परंपरागत मूल्यों के पक्षपाती तो हैं किंतु आँख मूँदकर नहीं। वे परिवर्तित युग और समाज के स्वरूपों एवं संबंधों की दृष्टि से मूल्य परिवर्तित के आग्रही भी हैं। उनके चरित्र सामाजिक मूल्यों के अनुगामी एवं अनुशासित हैं। साथ ही प्रतिगामी चरित्रों या सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध अनैतिक आचरण वाले चरित्र अपना अस्तित्व अंततः समाप्तप्राय या उपेक्षित कर असफल सामाजिक की श्रेणी में आ जाते हैं। यही लेखक की सफलता के आधार हैं।

### संदर्भ

1. बूँद और समुद्र, अमृतलाल नागर, पृ० 207
2. वही, पृ० 95
3. नाच्यौ बहुत गोपाल, अमृतलाल नागर, पृ० 74
4. वही, पृ० 279
5. वही, पृ० 159
6. वही, पृ० 176
7. वही, पृ० 176

8. वही, पृ० 342
9. अग्निगर्भा, अमृतलाल नागर, पृ० 67
10. वही, पृ० 131
11. बिखरे तिनके, अमृतलाल नागर, पृ० 10
12. अग्निगर्भा, अमृतलाल नागर, पृ० 14
13. वही, पृ० 11
14. वही, पृ० 148
15. पीढ़ियों, अमृतलाल नागर, पृ० 159
16. डा० शंकर क्षेम द्वारा लिए गए साक्षात्कार से, शोध दिशा-4, पृ० 118
17. वही, पृ० 118

□ द्वारा डॉ० एम०एम० शुक्ल  
147 मायापुरी आवास योजना  
छतनाग रोड, झूँसी, इलाहाबाद ( उ०प्र० )

## सत्साहित्य संरक्षक के रूप में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

डॉ० निर्मला तिवारी

द्विवेदी युग में हिंदी का पाठ्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता विद्वानों ने अनुभव की थी। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि पाठ्यक्रम में अच्छी पुस्तकों का अभाव है। पं० कामताप्रसाद गुरु, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने इस दिशा में ग्रंथ रचना आरंभ की। इस बहुत बड़े कार्य में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आचार्य वाजपेयी जी ने हिंदी-भाषा का साहित्य लिखकर हिंदी के गौरव से विद्यार्थियों को परिचित कराया। उनका प्रयत्न था कि हिंदी को उसकी ऐतिहासिक विकास-यात्रा के क्रम में देखा जाए। साहित्य के 'भारतीय भाषा विज्ञान' और 'हिंदी निरुक्त' ग्रंथों में आचार्य जी ने हिंदी-भाषा के उन्मेष और स्वतंत्र रीति से उसके विकास पर विस्तार से चर्चा की है। एक सत साहित्य संरक्षक के रूप में उन्होंने हिंदी-भाषा के मूल सिद्धांतों का जिन्हें मनीषियों ने उद्भाषित किया था और जितना प्रतिवाद पूर्व में किसी ने नहीं किया, उन्होंने भाषा-विज्ञान को संरक्षित करने के लिए किया। भाषा-विज्ञान को लेकर महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी ने इस ग्रंथ की प्रशंसा में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, 'यद्यपि हिंदी में भाषा-विज्ञान पर बहुत से ग्रंथ निकल चुके हैं, परंतु इस मौलिक कृति की बात ही कुछ और है। भारतीय भाषाओं का विवेचन भारतीय शैली पर हुआ है। और उनका वर्गीकरण भी नवीन मौलिक ढंग से हुआ है। द्रविड़ आर्य प्रकरण पर अभी तक भाषा वैज्ञानिकों ने जो कुछ लिखा है, वाजपेयी जी ने उसका निराकरण करके नया ही मत प्रकट किया है, जिसका आधार बहुत सुदृढ़ है।<sup>1</sup> वाजपेयी जी ने भाषा की शुद्धता की आवश्यकता को अपने ग्रंथों में समझाया और प्रचलित त्रुटियों को सुधारने का आग्रह किया।

### 1. व्याकरणिक संरक्षण :

आचार्य वाजपेयी जी की कृतियों का परिशीलन करने पर यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि उनका व्याकरणिक चिंतन निरंतर विकासोन्मुख रहा। उनके सतत् गतिमान चिंतन के लिए प्रत्येक 'इति', 'अथ' का स्वरूप ही था। वे सदैव भाषा की प्रकृति एवं उनके विविध प्रयोगों के सूक्ष्म निरीक्षण में संलग्न रहे थे और उसके आलोक में अपने पूर्वग्रहीत व्याकरण-सम्मत निष्कर्षों, मान्यताओं एवं स्थापनाओं पर तटस्थ दृष्टि से परीक्षण और समीक्षण करते थे।

वाजपेयी जी एक जागरूक वैयाकरणिक थे। उन्होंने पूर्व व्याकरण ग्रंथों में स्वेच्छाचारिता

और स्वच्छंदता पर इसलिए अंकुश लगाया ताकि हिंदी का शब्दानुशासन एक जैसा चलता रहे और वह अपने मूल से संबंध-विच्छेद न करे। सत साहित्य के संरक्षक की यह आवश्यक भूमिका हो जाती है कि व्याकरण सतत् गतिशील बना रहे। उन्होंने खंडन-मंडन प्रस्तुत करने का जहाँ व्यावहारिक प्रयास किया, वहीं वे दृढ़तापूर्वक उचित बात को मनवाने के लिए भी कटिबद्ध थे। उनकी इस प्रवृत्ति की बहुत से लोगों ने आलोचना भी की है किंतु वाजपेयी जी ने साहित्य संरक्षा में जो लिखा वह अनुकरणीय है। उदाहरण के लिए उन्होंने ब्रजभाषा और हिंदी की प्रचलित प्रक्रिया में 'जाए', 'जायेगा' इत्यादि पर अपने तर्क देकर लिखा 'जाये', 'जायेगा' रूप भूल से चले, 'संकर' प्रयोग है। 'जावे', 'जावेगा' भी अपने प्रयोग नहीं, ब्रजभाषा के अनुसार हैं और वहाँ भी 'आवै', 'आवैगा' की छाया पर गढ़े हुए हैं।

'जाइ', 'जाइगा' प्रयोग हिंदी ने कभी स्वीकार ही नहीं किए। 'जाय', 'जायगा' और 'जाए', 'जाएगा' इन दो रूपों में से एक को ही लेना है, तब 'जाए', 'जाएगा' रूप ही स्थिर रहेंगे, क्योंकि 'जाय', 'जायगा' लेने पर— 'राम अब सोय', 'राम अब सोयगा' इस तरह के अटपटे रूप भी भाषा में घुसकर सब बिगाड़ देंगे। 'जाय' की तरह 'सोय' हिंदी में ग्रहीत नहीं है, पर 'जाए' की तरह 'सोए' ग्रहीत है। सो जाएगा, आएगा, जैसे क्रिया-रूप निर्णीत हुए।<sup>2</sup>

## 2. शास्त्रीय अनुशीलन समस्या और समाधान :

अलंकार और रस को लेकर शास्त्रीय विवेचन तो प्रतिभाशील कवि करने लगे थे, लेकिन पूर्ववर्ती कवियों के लेखन को लेकर लोग यथास्थिति से आगे नहीं बढ़ पाए थे। आचार्य वाजपेयी जी 'कवितावली'<sup>3</sup> का छंद 'विंध्य के वासी, उदासी तपोव्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे' के विषय में कहते हैं कि यदि इस प्रकार का हास-परिहास जनकपुर में होता तो प्रासंगिक हो सकता था, वनस्थली में यह उचित नहीं है। उन्होंने वाल्मीकि, कालिदास अथवा तुलसीदास की पंक्तियों का उपयुक्त रससिद्ध विवेचन किया है। आचार्य जी के पास एक सजग विवेकी दृष्टि है और वे महान से महान कवि की न्यूनताएँ दिखाने में संकोच नहीं करते। ऐसी ही साहित्यिक दृष्टि का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है, महाकवि पदमाकर का पद इस प्रकार है—

'सोहै अत्र ओढ़ै जे न छोड़े शीश संगर की,  
लंगर लंगूर उच्च ओज के अतंका में।  
कहै 'पदमाकर' त्यों हुंकरत फुंकरत,  
फैलत फलात फाल बाँधत फलका में।  
आगे रघुवीर के समीर के तनय के संग,  
तारी दै तड़ाक तड़ा तड़के तमंका में।  
शंका दै दशानन कौ हंका दे सुबंका वीर,  
डंका दै विजय को कपि कूदि गयो लंका में।'<sup>4</sup>

वाजपेयी जी के अनुसार यह वीर रस का उदाहरण नहीं हो सकता। युद्धवीर के स्थायी-भाव 'उत्साह' की यहाँ प्रधान रूप से अभिव्यक्ति है ही नहीं, अवश्य इस पद्य में रौद्र रस व्यंग्य है और वह कवि की हनुमान-विषयक रति 'भाव' का अंग बन गया है। इस कारण यह भाव ही पद्य में प्रधान है, जिसका उक्त रस पोषक है।



वाजपेयी जी रस, छंद, अलंकार के विषय में भी एक संरक्षक की दृष्टि से और उचित अनुचित का निर्णय करते हैं। सत साहित्य के संबंध में उन्होंने लिखा—

सुचि उत्तम साहित्य सोइ, जहाँ उदात्त विचार।  
जड़ मूरति आदित्य की, करै न तम छरि छार।<sup>5</sup>

### 3. वैविध्य के पक्षधर :

साहित्य निर्माण में आचार्य वाजपेयी जी ने जिन तथ्यों को संकलित किया है उनसे उनके वैविध्य का अनुमान किया जा सकता है। इनमें शास्त्र-चर्चा है, जिससे उनके साहित्य के प्रति जागरूकता का भाव परिलक्षित होता है कि वाजपेयी जी ने शास्त्रीय ग्रंथों का गहन अध्ययन किया है। यहीं वे साहित्य के विभिन्न पक्षों पर अपनी संक्षिप्त टिप्पणियाँ करते हैं और लगभग साहित्य की सभी रचना विधाओं को लेकर चलते हैं। भाषाविज्ञान और व्याकरण उनके प्रिय विषय हैं। इसी के साथ वे दर्शन, अर्थशास्त्र आदि के विषय में भी अपना मंतव्य व्यक्त करते रहते हैं। संस्कृत के पंडित होकर भी वे समसामयिक परिवर्तनों के प्रति सजग-दृष्टि रखते हैं। उनकी साहित्यिक दृष्टि को अपने समय और समाज की सीमाओं में रखकर नहीं देखा जाना चाहिए।

वाजपेयी जी 'शब्द को ब्रह्म' मानते हैं और 'शब्दात्मक ज्योति' विकीर्ण करते हैं। शब्दों की सही समझ, उसका सार्थक प्रयोग रचनाशीलता के विकास में आवश्यक मानते हुए वे लिखते हैं, 'सिंह' एक शब्द है। इस शब्द का अर्थ क्या है? शेर? नहीं। 'शेर' तो 'सिंह' शब्द का पर्याय या समानार्थक शब्द है— ये दोनों शब्द हैं, जिनका अर्थ एक ही है। कौनसा अर्थ? इन दोनों शब्दों का अर्थ या वाच्य वह जंगली पशु है, जिसे पशुओं का राजा कहते हैं, जो वन में रहता है, जिससे सब पशु डरते हैं और जिसमें सबसे अधिक पराक्रम और साहस होता है। तो यह वन्य पशु 'सिंह' शब्द का वाच्य अर्थ हुआ। जिस शब्द का जो मुख्य अर्थ होता है, वही वाच्य कहलाता है।<sup>6</sup>

शब्द के मर्म की जानकारी और उसका सृजनात्मक उपयोग, वह बिंदु है, जो आचार्य जी को साधारण वैयाकरणों से अलग करता है और यहीं उनकी सृजनशील दृष्टि की सराहना करनी पड़ती है। वाजपेयी जी की साहित्यिक दृष्टि में सिद्धांतों के साथ व्यावहारिक समीक्षा की मैत्री है और वे अपने तर्क को पुष्ट करते हुए प्रमाण भी देते हैं।

वाजपेयी जी ने 'अच्छी हिंदी का नमूना', 'हिंदी व्याकरण' के 'हिंदी शब्द मीमांसा की रचना करके 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान' की शाखा में जो महत्वपूर्ण कार्य किया, वह अनुकरणीय है। संस्कृत के विद्वान होते हुए भी वे संस्कृतिकरण के पक्षधर नहीं थे। वे हिंदी की प्रकृति एवं प्रवृत्ति को जानते हैं, और हिंदी के अपने शब्दों के संरक्षक हैं। वे हिंदी के शुद्ध, सार्थक, सशक्त, शालीनतायुक्त शब्दों का प्रयोग चाहते थे और हिंदी को प्रवाह प्राप्त तथा प्रवाहयुक्त बनाए रखना चाहते थे। हिंदी शब्द मीमांसा द्वारा वे वर्तनीगत, स्वरूपगत शुद्ध परिष्कार में विवेक को आधार बनाते हैं। उन्होंने हिंदी के वर्तमान प्रचलित अशुद्ध प्रयोगों पर हिंदी का अनुशासन बनाए रखकर शुद्धता की संरक्षा की है।

### 4. नवीन लेखकों के संरक्षक :

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जी पुरानी पीढ़ी के प्रसिद्ध साहित्यकार होकर भी नवीन

लेखकों के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उन्होंने नवीन लेखकों की भाषागत अशुद्धियों को विशेषरूप से अवगत कराते हुए संशोधन सुझाए और अपनी टिप्पणियाँ दी हैं कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) 'काव्य की स्वाभाविकता रहना बहुत जरूरी है, जिसके बिना वह वास्तविक काव्य नहीं कहा जा सकता। इसका दर्जा बहुत नीचे गिर जाता है। स्वाभाविकता कविता का सहज शृंगार है। जो बात संसार में जैसी हो ठीक वैसी-की-वैसी ही वर्णन करने का नाम स्वाभाविकता है। जिस वस्तु का रंग-रूप और स्वभाव-प्रभाव आदि जैसा हो, ठीक वैसा ही वर्णन करना चाहिए। उसमें कुछ उलटफेर न होने पावे। लोक के अतिरिक्त विविध शास्त्रों का ध्यान रखना होता है। जिस शास्त्र का विषय 'प्रसंग-वश' आया हो वह बिलकुल उस शास्त्र के अनुसार ही वर्णित होना चाहिए। यदि लोकशास्त्र के विरुद्ध या असंगत वर्णन काव्य में होगा वह कवि के अज्ञान को सूचित करेगा।' <sup>7</sup>

(ख) 'साहित्य शास्त्र की ओर बिलकुल औदासीन है। अच्छे साहित्य ग्रंथ बनाने की बड़ी जरूरत है। इसके बिना नवीन कवि किसके सहारे कैसे उत्तम काव्य बनावें? हमारी भाषा के आचार्य और महारथियों को अवश्य शीघ्र ही इस ओर अपना ध्यान आकर्षित कर कर्तव्य पालन करना चाहिए।' <sup>8</sup>

आचार्य वाजपेयी जी ने सत-साहित्य संरक्षक के रूप में मुख्यतः एक कुशल शिक्षक की भूमिका निभाई है। उन्होंने नवीन लेखकों को शुद्धभाषा तो लिखना सिखाया ही साथ-ही-साथ अपनी सरल शैली से उन्हें बहुत प्रभावित भी किया। उन्होंने प्रचलित मान्यताओं और स्थापनाओं को निरस्त्र करते हुए रस, छंद, अलंकार की पूर्व मान्यताओं को भी उपयुक्त या अनुपयुक्त बताकर स्वतंत्र चिंतन की दशा निर्धारित की। वाजपेयी जी ने शोधार्थियों तथा समीक्षकों को भी पूर्ण संरक्षण दिया।

### संदर्भ

1. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० 73
2. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, हिंदी की वर्तनी तथा शब्द विश्लेषण, पृ० 6
3. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिंदी शब्दशास्त्र, पृ० 143
4. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, साहित्य मीमांसा, पृ० 33-34
5. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, तरंगिणी, पृ० 102
6. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, साहित्य की उपक्रमणिका, पृ० 87
7. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, साहित्य की उपक्रमणिका, पृ० 31
8. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, साहित्य मीमांसा, पृ० 46

□ ग्राम रामनगर, पो० मंधना  
जिला कानपुर (उ०प्र०)

## भारतेंदु और व्यंग्य-विधा

डॉ० ऋचा सिंह

प्रवक्ता हिंदी

हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)

भारतीय इतिहास के वर्तमान कालिक स्वरूप को जानने, रेखांकित करने के लिए सन् 1757 और सन् 1857 दो महत्वपूर्ण निर्णायक तिथियाँ हैं। 23 जून 1757 को प्लासी के युद्ध के पश्चात ही भारतीय स्वाधीनता का समापन सुनिश्चित हो पाया। लगभग सौ वर्षों तक छल, मक्कारी और झूठ, शोषण व दमन के बाद ही ब्रिटिश हुकूमत की प्रतिनिधि ईस्ट इंडिया कंपनी अपना वर्चस्व कायम करने में सफल हो सकी थी। वर्ष 1857 में ईष्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध एक व्यापक सैनिक विद्रोह हुआ। यद्यपि विद्रोह का प्रभाव राष्ट्रव्यापी था, परंतु वह सफल नहीं हो सका। एक राष्ट्रीय चेतना की चिंगारी उसने अवश्य छोड़ी। 1857 के बाद कूका गुरु रामसिंह के कूका आंदोलन ने विदेशी वस्तुओं, सुविधाओं के बहिष्कार का रास्ता अपनाया। कूका आंदोलन की भीषण परिणति हुई। देशभक्तों की निर्मम हत्याएँ हुईं। शोषण और दमन के अमानवीय चक्र चले। बहावी आंदोलन 1868 से 1872 के बीच पूरे जोर-शोर से चला। सर ए०ओ० ह्यूम को लगा कि भारत में दूसरा विद्रोह भी हो सकता है। अतः लार्ड उफरिन से मशविरे के बाद जब असंतोष को दबाने, सुलझाने के उद्देश्य से इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना 1885 में की गई। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में पहली बार पुलिस दमन की कटु आलोचना तथा महारानी विक्टोरिया की नियत पर संदेह का इजहार हुआ। इसके बाद भी 1905 तक कांग्रेस की नीति में समझौता परस्ती और नरमी का रुख ही बना रहा। 1905 में लार्ड कर्जन ने बंग विभाजन की घोषणा की, जिससे न केवल बंगाल वरन समूचा भारत ही झंकृत हो उठा। राष्ट्र और कांग्रेस का नेतृत्व बालगंगाधर तिलक, अरविंद घोष, विपिनचंद्र पाल तथा लाला लाजपतराय के हाथ में आया। कांग्रेस अब उग्रता एवं स्वतंत्रता की साफ-साफ माँग पर उतरी। प्रार्थना-पत्रों, आवेदनों की नीति को छोड़कर सीधे ही 'स्वतंत्रता को जन्म सिद्ध अधिकार घोषित किया गया। 1919 में रौलट कानून पास किया गया, परंतु 1917 से ही कांग्रेस का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथ में आ गया था। 1919 में ही जलियावाला बाग का सामूहिक हत्याकांड हो गया। 1920 में गांधी ने असहयोग आंदोलन प्रारंभ कर दिया।

उपर्युक्त ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा इस विशेष उद्देश्य से की गई है कि हिंदी के पुरोधे भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का रचनात्मक व्यक्तित्व ऐसी ही परिस्थिति में उभरा और विकसित हुआ था। बंगाल और गुजरात से चली सुधारवादी आँधियों का समय भी यही था।

राजा राममोहन राय ने ब्रह्मसमाज, आचार्य केशव चंद्रसेन ने प्रार्थना-समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्यसमाज, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि के शैक्षिक प्रयास भी इसी कालखंड में उभरे थे। भारत में छापाखाना आया, नए परिवहन के साधन विकसित हुए। रेल, डाक व तार की व्यवस्था हुई। उत्तर भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी में भी सुधारवादी आंदोलनों में आर्यसमाज तथा कांग्रेस का जबरदस्त असर दिखाई देने लगा। पंडे, पुजारियों, सेठ, साहूकारों, किरानी, मजदूरों में और खासकर नौजवानों में बनारसी मस्ती, फक्कड़पन के ऊपर सनयी बयार के नए झोंकों ने काशी को आंदोलित और उद्विग्न किया। भारतेंदु इसके द्रष्टा और भोक्ता दोनों थे।

हिंदी में राष्ट्रीय साहित्य का सूत्रपात भारतेंदु की ही देन है। राष्ट्रीय साहित्य के प्रणयन में भारतेंदु और उनके मंडल के रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान एक स्वीकृत तथ्य है। देश की दुर्व्यवस्था की पहचान, उसके प्रमुख कारण, अँग्रेजी प्रभुत्व, अशिक्षा, रूढ़ि आदि को भारतेंदु ने पूरी गहराई से समझा था और 'विजयनी विजय वैजयंती' में उसे शिद्दत से विरचित किया था।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र काशी के रईस थे और काशी शैव, बौद्ध तथा जैन धर्म का प्रमुख केंद्र होने के कारण संपूर्ण भारत की समवेत संस्कृति का सम्मानित केंद्र था। पापहारिणी गंगा के घाटों से लेकर सारनाथ तक उनकी सहज पहुँच थी। वे राष्ट्र, समाज, संस्कृति के साथ ही मानव-मन के क्लृप्त को काटने के लिए तीखे व्यंग्य का रास्ता चुनने लगे। उन्हें सत्य की स्थापना के लिए सबसे पवित्र अस्त्र व्यंग्य की धार ही प्रतीत हुई होगी, जिससे वे समाज की विकृति को सुधार सकते थे। यही कारण है कि भारतेंदु ने अँग्रेज़, अँग्रेज़ी भाषा, अँग्रेज़ियत तथा स्वदेशी काहिली को अपने व्यंग्यों का आलंबन बनाया। उनके व्यंग्य मिथ्याचार, भ्रष्टाचार और विसंगति पर चोट करते हैं। विसंगति को हास्य और करुणा के माध्यम से उठाते हुए भी वे सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय बोध को ही केंद्र में रखते हैं। आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ 'काव्य प्रकाश' में 'कातांसमित तयोपदेशयुजे' से उपदेशात्मकता को काव्य का एक महत्वपूर्ण प्रयोजन माना है। भारतेंदु के सहज व्यंग्य चोट तो करते हैं साथ ही सही दिशा में चलने का संकेत भी देते हैं। उनके व्यंग्य मर्मस्पर्शी भी हैं और शुभाकांक्षा से समन्वित भी। व्यंग्य का अर्थ ही होता है—'शब्द का व्यंजनावृत्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ।' शब्द ही वृत्तानुगामी झंकारमय व्यंजना ही व्यंग्य होती है। संभवतः काशी के फक्कड़ संत कबीर के चौरा में चतुर्दिक शाम-सुबह गुजारने वाले भारतेंदु ही कबीर के बाद समाज की विसंगति और विकृतियों, विद्रूपों, जनता की कूपमंडूकता पर करारा कुठराघात करने वाले ऐसे कवि हैं, जो पराजित, दलित जनता को झकझोर कर जगाने का उपक्रम करते हैं। हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के प्रस्तुतकर्ता भारतेंदु को ही आधुनिक खड़ीबोली का प्रथम व्यंग्यकार माना जाता है।

व्यंग्य का उद्देश्य व्यक्ति और समाज का सुधार होता है, व्यंग्य का मूल प्रयोजन मनोरंजन से आगे चलकर शुभ दिशा की ओर प्रयाण है। जिससे समाज के लिए एक प्रच्छन्न नैतिक बोध की धारा सन्निहित होती है। व्यंग्य न हास्य है, न मनोरंजन, न वह ठहाका है, न अट्टहास। वह है, एक संक्षिप्त मधुर मुस्कान जो अन्याय, अविचार, आडंबर तथा असामंजस्य को संकेतित करती है तथा उससे उबरने को प्रेरित करती है। व्यंग्य में उपहास, परिहास, हास,

वाग्वैदग्ध्य, वक्रोक्ति तथा प्रहसन का तत्त्व होता है। इनके संयोग, संयोजन से व्यंग्य की सर्जना होती है, परंतु उपर्युक्त में से कोई एक अकेले व्यंग्य नहीं हो सकता। व्यंग्य में करुणा होती है, पर उपेक्षा नहीं। हास्य होता है, पर हलकापन नहीं। जिस तरह का हास्य आज दूरदर्शन पर प्रसारित हो रहा है, व्यंग्य में वैसा हलकापन फूहड़ता, द्वैअर्थता नहीं होती। व्यंग्य संवेदना और प्रेरणा से उभरता है। परिहास, वक्रोक्ति, पैरोडीपरक रचनाएँ भी व्यंग्य को सृजित करती हैं। पैरोडी में हास्ययुक्त व्यंग्य होता है। भारतेंदु बाबू ने 'इंदरसभा' नाटक की पैरोडी 'बंदरसभा' नाम से विरचित की थी। 'वैदिकी हिंसा, सिंहा न भवति', 'अंधेर नगरी चौपट राजा' भारतेंदु की व्यंग्य विधा की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। व्यंग्य उनके नाटकों के संवादों एवं गद्य प्रस्तुतियों में भी है, परंतु इन विधाओं में उनके व्यंग्य गंभीर अंदाज में रखे गए हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत ने 'प्रहसन' को एक विशेष नाट्य रूप माना है। आधुनिक हिंदी, हिंदुस्तान के निर्माण के स्वप्नदर्शी भारतेंदु ने नाट्य रूप 'प्रहसन' भी लिखा है पर व्यंग्य में वे नाटकीयता नहीं वरन् वक्रोक्ति का उपयोग करते हैं। प्रयोजनपरकता व्यंग्य को अलग से पहचान देती है। जैसे— चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।<sup>1</sup>

व्यंग्य के मूल में रचनाकार की प्रतिभा, उसकी भाषिक क्षमता और जीवनदृष्टि का महत्त्व होता है। व्यंग्य की रचनाओं में हम भारतेंदु बाबू की जीवनदृष्टि की खोज कर सकते हैं। यही वह प्रमुख साक्ष्य है, जिससे हम समझ सकते हैं कि भारतेंदु बाबू का रहन-सहन, खान-पान, मित्र-मंडली, रुचि-अभिरुचि कैसी थी। भाषा चूँकि केंद्रीय तत्त्व होती है, वह अनुभव का आधार और माध्यम होती है तथा अभिव्यक्ति की भाषा में ही होती है। अतः भाषा के अध्ययन से ही हम समझ सकते हैं कि रचनाकार का परिवेश क्या है, सोच क्या है और वह कैसा व्यवहार करता है। भारतेंदु जी ने जिस सहज, जीवंत भाषा का प्रयोग किया है, वह उनके अनुभव संसार को विराटता और उनकी बहुवस्तुस्पर्शनी प्रतिभा को व्यक्त करता है। भारतेंदु जी की भाँति ही आगे चलकर उर्दू में अकबर इलाहाबादी अंध अँग्रेज़ और अँग्रेज़ियत पर करारा आघात करते हैं। भारतेंदु मंडल के रचनाकारों में भी प्रवृत्ति व्यापक स्तर पर दिखाई देती है।

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र बंगाल के अग्निगर्भा कवि काजी नजरुल इस्लाम, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय और दक्षिणी के सुब्रह्मण्यम भारती की पद्धति के कवि थे। परंतु उन पर शासन सत्ता, काशी की दकियानूसी पुरोहिती और पूर्वांचल की ग़रीबी, बदहाली का मानसिक दबाव था। 'भारतेंदु' ने समझ लिया था कि विविध तिकड़मों से भारत का कच्चा माल, भारत का धन विदेश जा रहा है। देश के धन की खुली लूट की व्यवस्था जब तक बंद नहीं होगी, तब तक भारत का उद्धार नहीं होगा। स्वदेशी जनों की कायरता और काहिली के साथ ही उन्होंने भारत की दुर्दशा करनेवाली अँग्रेज़ी राज्य सत्ता के विरुद्ध 'स्यापा' किया उन पर प्रहारात्मक व्यंग्य रचा। भारतीय राष्ट्र की दुर्दशा के कारणों पर उन्होंने गहरी चोट की है इसलिए हम उन्हें सच्चा राष्ट्रभक्त कवि मानते हैं। एक तरफ़ वे भारत की प्राचीन संस्कृति के उद्धार का स्वप्न सिरजते हैं तथा दूसरी तरफ़ वे संस्कृत साहित्य का खड़ीबोली में उद्धार करते हुए नाटकों की रचना में प्रवृत्त होते हैं। वे नाटक लिखते हैं उसे खेलते हैं। स्वयं अभिनय करते हैं। सामाजिक रुचि का परिष्कार करते हैं तथा भारतीय मनीषा को एक बालिशत ऊपर उठाने का उपक्रम करते

हुए से प्रतीत होते हैं। भारतीय चेतना को आत्महीनता की ग्रंथि से उबारनेवाले भारतेंदु ने सात्विक क्रोध का संयम से वरण किया था। आक्रोश उनमें था और वे सामाजिक राजनीतिक विसंगतियों पर झुंझलाहट से स्तर तक आक्रमक भी थे, लेकिन इन सब के पीछे उनकी राष्ट्रीय चिंता ही प्रमुख कारण थी। उनके विरचित व्यंग्यों में करुण, रौद्र, वीभत्स और हास्यरसों का सम्यक् परिपाक हुआ है। उनके व्यंग्य करुण और रौद्र रसों के निकट के व्यंग्य हैं। उन्होंने चुभती हुई 'मुकरियाँ' लिखी। सटीक व्यंग्य के लिए वे दोहा, आल्हा और मुकरी का प्रयोग करते हैं, जो उनके जनोन्मुखी व्यक्तित्व का परिचायक हैं अँग्रेजों पर लिखी उनकी प्रसिद्ध मुकरी बहुत चर्चित हुई थी—

भीतर भीतर सब रस चूसै  
हँसि हँसि के तन मनधन मूसै  
जाहिर बातन में अति तेज  
क्योंकि सखि साजन नहिँ अँग्रेज।<sup>2</sup>

उन्होंने बेरोजगारी, नौकरी, शिक्षा, रिश्वत, पुलिस और शराब की जमकर खबर ली है और इन्हें व्यंग्य रचना का विषय बनाया है।

इसी प्रकार अँग्रेजी भाषा पर उनकी एक अन्य मुकरी रचना विशेष चर्चित रही है।

सब गुरुजन को बुरा बतावै  
अपनी खिचड़ी अलग पकावै  
भीतर तत्वन, झूठी तेजी  
क्यों सखि सज्जन, नहिँ अँग्रेज।<sup>3</sup>

'भारतेंदु मंडल' के रचनाकारों ने भी व्यंग्य की विविध विधाओं में लेखन किया। यह परंपरा पुष्ट होकर द्विवेदी युग में एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित हो गई। हम विविध विधाओं, शैलियों के आदि प्रकल्पक महामनीषी 'भारतेंदु' की अक्षय प्रतिभा और अक्षुण्ण कीर्ति के प्रति अपनी प्रणति निवेदित करते हैं और उनके कवि, स्वयंभू, महनीय मानसी शक्ति की अभ्यर्थना करते हैं।

### संदर्भ

1. भारतेंदु ग्रंथावली, भाग 2, पृ० 666
2. भारतेंदु ग्रंथावली, भाग 2, पृ० 201
3. भारतेंदु ग्रंथावली, भाग 2, पृ० 811

## सामाजिक चेतना के प्रहरी संत कबीर

डॉ० महेशचंद्र

रीडर, हिंदी विभाग, मेरठ कॉलेज  
(चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय), मेरठ

संत कबीर भक्तिकाल के एकेश्वरवादी, मानवतावादी तथा प्रखर समाज सुधारक कवि थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तो उन्हें 'समन्वयवादी' कवि मानते थे। वस्तुतः व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों की उपज होता है। कबीर जिस मध्यकाल में हुए, वह समय देश के लिए सामाजिक विखंडन एवं उच्छृंखलता का समय था। समाज में जाति-पाँति का भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक आडंबरों एवं पाखंडों का बोलबाला था। सामंतवादी समाज का विकृत रूप समाज को घुन की तरह खाए जा रहा था। इस परिवेश में कबीर ने मानव-प्रेम के जिस उदात्त भाव का संदेश दिया, वह निःसंदेह अविस्मरणीय है। यूँ तो उन्हें पूर्ण रूप से समन्वयवादी कहा जा सकता है, न ही पूर्णतया धर्म-निरपेक्ष। फिर भी, उनकी वाणी सामाजिक भेदभाव, धार्मिक पाखंड एवं आडंबर, छुआछूत के विरुद्ध रही है तथा मानव में किसी भी भेदभाव का निषेध करती है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि मध्यकालीन सामंती समाज में भेदभाव का एक प्रमुख कारण 'धर्म' ही था। सिद्धों, नाथों तथा योगियों का बाह्याडंबर, ब्राह्मणवादी व्यवस्था तथा मौलवियों-मुल्लाओं का दिखावा, हिंदू तथा इस्लाम दोनों मतावलंबियों में भेदभाव उत्पन्न करता था। कबीर ने इसके विरुद्ध अपनी रचनाओं में संदेश दिया। मूर्ति-पूजा के वे सख्त खिलाफ थे; इसलिए उन्होंने कहा है—

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।

ताते तो चाकी भली, पीसि खाय संसार।

कांकर पाथर जोरिक्के, मस्जिद लई चुनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दै, क्या बहिरा हुआ खुदाय।

उन्होंने नाथों, सिद्धों, योगियों के बाह्याडंबर तथा पाखंड का विरोध करते हुए कहा है—'मन ना रँगाए रँगाए जोगी कपड़ा।' वस्तुतः यहाँ कबीर बाहरी दिखावे और पाखंड के आधार पर श्रेष्ठता का प्रतिवाद करते हुए 'आत्मज्ञान' पर जोर देते हैं। छुआछूत तथा भेदभाव के खिलाफ उन्होंने हिंदू एवं मुस्लिम—दोनों धर्मावलंबियों पर कड़ा प्रहार किया है—

जौ तू बाँधन बंधनी जाया। तौ आन बाठ हवै क्यों नाहिं आया।

जौ तू तूरकनीं जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।

कबीर उन मुल्ला-मौलवियों पर करारा व्यंग्य करते हैं जो दिन में अल्लाह के नाम अज्ञान देते हैं और रात में स्वाद के लिए जीवों की हत्या करते हैं। इसी तरह उन्होंने ब्राह्मणों की ढोंग तथा भेदभाव की नीति पर भी अपना रोष जताया। उन्होंने धर्म द्वारा प्रतिपादित तीर्थाटन का विरोध करते हुए कहा—

मोको कहाँ ढूँढै बंदे मैं तो तेरे पास में।  
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।

कबीर ने मानवीय प्रेम के उदात्त भावों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। वस्तुतः सभी धर्मों का एक सामान्य तत्त्व मानव-प्रेम है, जिसके द्वारा मानव-मानव में किसी भी तरह के भेदभाव तथा अंतर को धर्म के विरुद्ध बताया गया है। कबीर इस सच्चे मानवीय प्रेम के प्रतिपादक हैं। उन्होंने जहाँ स्वर्ग-नरक की संकल्पना को बेबुनियाद बताया, वहीं आत्मज्ञान द्वारा माया से रहित होकर अगोचर ब्रह्म के साथ तल्लीन होने का संदेश दिया। यह जिंदगी तो एक हार की भाँति है, जो शाम होते ही उठ जाएगी। उन्होंने जोगियों द्वारा प्रतिपादित हठयोग की साधना पर विहंगम विचार करके योग-भक्ति-साधना पद्धति पर बल दिया है—‘संतो, सहज समाधि भली।’ यह एक सत्य है कि सामाजिक विघटन, उच्छृंखलता तथा असमानता के मूल में ‘धर्म’ का बड़ा हाथ होता है। यहाँ धर्म का आशय उस समय प्रचलित मान्यताओं तथा विश्वासों से ही लिया जाना चाहिए।

उस समय सामाजिक भेदभाव को दूर करने के लिए यह आवश्यक था कि धर्म के सही स्वरूप को बताया जाए। कबीर ने इस तथ्य को भली-भाँति सोच-समझकर अपनी रचना व वाणी आदि में अगोचर परम ब्रह्म की संकल्पना का प्रतिपादन किया। उन्होंने ब्रह्म और जीव को पृथक्-पृथक् बताया। मनुष्य अज्ञानता (माया) के चक्कर में ब्रह्म से एकाकार नहीं हो पाता है। आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद ही जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। आत्मज्ञान से आलोकित मनुष्य ही सच्चा मनुष्य है। कबीर का यह उदात्त मानव-प्रेम और मूल्यबोध सच्ची मानवतावाद की भावना को आगे बढ़ाते हैं तथा सामाजिक भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक पाखंड, बाह्याडंबर व किसी भी प्रकार के भेदभाव का प्रतिवाद करते हैं और मानव के बीच उस उच्च उदात्त भावना का संचार करते हैं, जिसमें किसी भी तरह के भेदभाव का कोई स्थान नहीं रह जाता है।

संत कबीर की रचनाओं के सामाजिक पक्ष का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक महान समाज-सुधारक थे, जिन्होंने समाज में व्याप्त छुआछूत, निर्धनता, जाति-पाँति के भेदभाव, धार्मिक कुरीतियों तथा पाखंड का पुरजोर विरोध किया। नारी की चर्चा उन्होंने माया के रूप में की है। वस्तुतः कामभावना पर अंकुश रखने के अर्थ में ही नारी का जिक्र है। जिस भ्रम, अज्ञानता, मोह के लिए कबीर ने माया का जिक्र किया है, उसके सामाजिक अभिप्रायः एवं अर्थ-संकेत हैं। यदि व्यक्ति ज्ञानी हो तो वह कभी भेदभाव तथा कुरीतियों को प्रश्रय नहीं देगा तथा मानवीय संवेदना सही अर्थ में कायम रहेगी।

□ 9 सिविल लाइंस  
( टेलीफोन एक्सचेंज के पास )  
मेरठ



## डॉ० रांगेय राघव के उपन्यास : एक परिचय

डॉ० वीरेंद्रकुमार शर्मा

कथात्मक विधा उपन्यास का उत्स यद्यपि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में देखा जा सकता है, किंतु हिंदी-साहित्य में उपन्यास आधुनिक युग की देन है, जिस पर भारतीय (बंगला) एवं विदेशी (आंग्ल) भाषा में लिखे गये उपन्यासों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। हिंदी-उपन्यासों का जो बीजवपन भारतेंदुयुग में हुआ, वह बहुविध रूप का परिचय देता हुआ प्रेगचंदोत्तर-काल में पूर्णतः बहुरंगी एवं बहुआयामी स्वरूप को धारण किए हुए ऐसे पूर्ण वृक्ष के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, जिसकी शाखाएँ आज भी उत्तरोत्तर उसके विकास की गाथा कहती हुई अग्रसर हैं। यही कारण है कि जिसने कल्पनालोक एवं मनोरंजन की भावभूमि को छोड़कर पूँजीवादी सभ्यता के विविध जीवनसत्यों को कथा के माध्यम से अभिव्यक्त करने के लिए जन्म लिया, वह प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखकों की लेखनी के पालने में झूलता हुआ अपने चतुर्दिक फैले जीवन और जगत के दृश्यों तथा अनेक सामयिक समस्याओं का अंकन कर जैनेंद्र की मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्ति के कारण मनोविज्ञान की भूमि पर अवतरित होकर एक नई दृष्टि एवं दिशाबोध का अभिज्ञान कराने के बाद अनेक मोड़ों को पार करता हुआ आज जो अपनी पहचान बना पाया है, उसके पीछे साहित्यकारों की लंबी परंपरा का योगदान है।

प्रत्येक युग में साहित्यकार अपनी एक विशिष्ट प्रतिभा के साथ उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त हुए और विशेष क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। प्रेमचंद्र के पूर्ववर्ती उपन्यास-लेखक जासूसी, ऐयारी एवं तिलस्मी उपन्यास लिखने में प्रवृत्त होकर आगे आए, जबकि उनके उपन्यासों में सामाजिक एवं धार्मिक जागरण का स्वर भी सुनाई देता है। प्रेमचंद और उनके अनुयायी लेखक विशेषतः सामाजिक समस्याओं का चित्रण करने के कारण सामाजिक उपन्यास, जैनेंद्र और उनके अनुयायी फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद को आधार मानकर मनुष्य की विलुप्त होती पहचान का संज्ञान कराने के उद्देश्य से मनोविश्लेषणवादी उपन्यास, यशपाल और उनके अनुयायी लेखक कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का आश्रय लेकर वर्गसंघर्ष का चित्रण करने वाले मार्क्सवादी (समाजवादी) उपन्यास लिखकर विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इसी प्रकार किसी ने ऐतिहासिक, किसी ने आंचलिक, किसी ने प्रयोगशील तथा किसी ने आधुनिकता-बोध के उपन्यास लिखने में अभिरुचि दिखायी, लेकिन अप्रतिम प्रतिभा के धनी डॉ० रांगेय राघव ने उपन्यास-लेखन के क्षेत्र में उतरकर हर युग में लिखे गए उपन्यासों का स्वरूप पहचानकर अनेक प्रकार के उपन्यास लिखे। उनके उपन्यास भारतेंदु जी से लेकर आज तक की जीवन-यात्रा पूरी करते हैं।

राजस्थान के जयपुर शहर के वैर गाँव में जन्मे इस साहित्यकार ने आगरा रहते हुए शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर साहित्यिक जीवन में पदार्पण करने के बाद हिंदीतर भाषी होते हुए भी रांगेय राघव के नाम से हिंदी साहित्य को पर्याप्त समृद्ध किया। उनकी प्रकाशित-अप्रकाशित, मौलिक-अनूदित पुस्तकों की कुल संख्या डेढ़ सौ के आस-पास है, जिनमें से अधिकांश कृतियाँ अपनी गुणवत्ता में हिंदी की शीर्षस्थ कृतियों में स्वीकार की गई हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने हिंदी-साहित्य की विविध विधाओं की संरचना की, किंतु औपन्यासिक चेतना ने तो हिंदी-उपन्यास-विधा को पर्याप्त समृद्धि प्रदान करते हुए हिंदी-साहित्य के क्षेत्र में ऐसी क्रांति मचा दी कि इस दाक्षिणात्य हिंदी-साहित्यकार को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वर्गीकरण की दृष्टि से उनके द्वारा लिखित बहुसंख्यक उपन्यासों को सामाजिक, समाजवादी, आंचलिक, ऐतिहासिक एवं जीवनचरितात्मक उपन्यासों की श्रेणी में रखा गया है।<sup>1</sup>

सामाजिक उपन्यासों की सर्जना का सूत्रपात यद्यपि प्रेमचंद युग में ही हो चुका था, किंतु प्रेमचंद्रोत्तर युग के इस उपन्यासकार ने सामाजिक उपन्यासों की संरचना से प्रेमचंद युग की परंपरा को कायम रखते हुए उपन्यास को नई दिशा प्रदान की। उनके प्रथम मौलिक उपन्यास 'घरौंदे' में कॉलेज की बहुविध समस्याओं का यथार्थ चित्रण है। यद्यपि शिक्षा-संबंधी समस्याओं के स्थान पर प्रणय-कथा के प्रसंगों की भरमार से इस उपन्यास में लेखक का दृष्टिकोण भले ही एकांगी प्रतीत होता है, किंतु यह इतना अवश्य संकेत देता है कि यदि शिक्षा के मंदिर से ये समस्याएँ दूर हो जाएँ, तो समाज का नैतिक पतन होने से रुक जाए। आज के समय में भी इसकी प्रासंगिकता महत्त्वपूर्ण है। अपने मूल उद्देश्य-प्रेम के महत्त्व-को अभिव्यक्त देने वाला 'उबाल' उपन्यास लेखक की प्रेमचंद की भाँति आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को प्रकट करता है। इसमें नारी-जीवन की विविध समस्याओं को उठाकर नारी-जागृति एवं नारी-स्वातंत्र्य को स्वर देते हुए लेखक आगे बढ़ा है। 'बौने और घायल फूल' मध्यवर्गीय समाज में नारी के वैधव्य जीवन का कारुणिक दृश्य प्रस्तुत करने के साथ-साथ दलित एवं पीड़ित जीवन में आने वाली पीड़ा एवं उसके निराकरण का उपाय सुझाते हुए प्रेमचंद के अछूतोद्धार-आंदोलन की याद दिलाता है। गांधी का अहिंसावादी जीवनदर्शन अनेक समस्याओं के निदान का मार्ग प्रशस्त करता है, इसे सिद्ध करते हुए लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर-काल में होनेवाले राजनीतिक-सामाजिक आंदोलनों और उनकी पृष्ठभूमि में देशी रियासतों आदि से संबंधित समस्याओं का विवेचन किया है।<sup>2</sup>

'बंदूक और बीन' युद्ध की विभीषिका का रूपांकन करनेवाला हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें देश, जाति, समाज एवं राज्य की व्यवस्था तथा विज्ञान एवं कला-संबंधी मान्यताओं पर नए ढंग से विचार करते हुए जहाँ पूँजीवादी सभ्यता के प्रतीक जापानियों की बर्बरता का अतियथार्थवादी चित्र उपस्थित किया गया है, वहीं भारतीय सैनिकों के देशप्रेम की ओर भी संकेत किया गया है। राजस्थान और उत्तर प्रदेश के संधिस्थल पर बसे गाँव के चित्रांकन के माध्यम से आधुनिकयुगीन भारत के ग्राम्य-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हुए 'राई और पर्वत' उपन्यास में जाति-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह आदि सामाजिक रूढ़ियों तथा जर्जरित एवं थोथी मान्यताओं के कारण पतन के गर्त में जाते समाज का सजीव एवं यथार्थ वर्णन हुआ है। यही नहीं, लोभ और व्यभिचार के वंशीभूत अपने सिद्धांतों को ताक पर रखकर

दलबदलू राजनीतिक नेताओं के अनैतिक कार्य तथा निम्न एवं मध्य वर्ग की आर्थिक विपन्नता, शोषण, समाज के अत्याचार आदि के जीवंत चित्र भी इसमें मिलते हैं। उपन्यास के शीर्षक की व्याख्या करते हुए डॉ० सुरेश सिन्हा तो कहते हैं कि यह उपन्यास राई के समान लघु है, पर इसका केन्वास पर्वत के समान विराट् है।<sup>3</sup>

‘पत्र-शैली’ में लिखित ‘छोटी-सी बात’ उच्च मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष-संबंधों, उनकी मान्यताओं एवं आचरणों पर प्रकाश डालते हुए उनके खोखले व्यक्तित्व का यथार्थवादी निरूपण करता है। यह सामाजिक समस्याओं का वर्णन करने के साथ साहित्यिक एवं राजनीतिक समस्याओं का भी अंकन करता है। इस उपन्यास में लेखक ने गांधीवाद एवं मार्क्सवाद दोनों पर प्रहार करते हुए फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद को अधिक प्रश्रय दिया है। इसीलिए वह नारी की सामाजिक स्थिति एवं नारी-जाग्रति एवं नारी-आंदोलन आदि पर विचार करते हुए भी फ्रायड की भाँति नारी की स्वतंत्रता का समर्थन नहीं करता। आगरा के निकटवर्ती ग्राम बरौठा के अंचल पर आधारित ‘पापी’ उपन्यास में भारतीय ग्राम्य-जीवन के बहुरंगी रूप का अंकन करते हुए उसकी विविध समस्याओं—जातिवाद, घूसखोरी, मुकदमा, दहेज, अंधविश्वास आदि—के अनैतिक, अमानवीय एवं दुर्बल पक्ष का वर्णन करने के साथ यदि इसमें जीवन के उदात्त पक्ष को भी चित्रित किया जाता, तो यह अपने-आपमें हिंदी-साहित्य की एक बेजोड़ कृति के रूप में उपन्यास-क्षेत्र में प्रतिष्ठित होती। ‘पापी’ की कमी को ‘दायरे’ उपन्यास में दूर करने का प्रयास संभवतः हुआ है। इसीलिए इसमें लेखक ने समाज की विकृतियों एवं विषमताओं का यथार्थ एवं सजीव अंकन कर स्वस्थ समाज के निर्माण को दिशा देते हुए भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप को सामने रखा है। यहाँ विभिन्न वर्ग, धर्म एवं जातिगत मान्यताओं से परे मानव को सर्वोपरि मानकर उसकी महत्ता का गुणगान करने में लेखक ने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। नारी-समस्या, विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के भारतीय संस्कृति पर बढ़ते प्रभाव की समस्या, छुआछूत की समस्या आदि भी इस उपन्यास के प्रमुख वर्ण्य-विषय हैं।

‘आग की प्यास’ उपन्यास में ग्रामीण-जीवन की विविध समस्याओं, राजनीतिक दलों के दौंव-पेचों, पुलिस एवं अन्य पदाधिकारियों के अनैतिक कार्यों का निरूपण करते हुए लेखक ने कम्युनिस्ट, काँग्रेस एवं विनोबा भावे के सिद्धांतों की आलोचना भी की है। मानव को मानव से दूर करने वाली पूँजीवादी प्रवृत्ति का जीता-जागता चित्र भी इसमें देखने को मिलता है। नायक की स्मृतियों एवं कल्पनाओं पर आधारित ‘कल्पना’ नामक उपन्यास का कथानक आत्मकथात्मक शैली में आगे बढ़ता हुआ अपने मुख्य वर्ण्य विषय—आधुनिक नारी की समस्या—को अभिव्यक्ति देता है। डॉ० लालसाहब सिंह ने भी स्वीकार किया है कि नारी-जागरण के युग का लेखक नारी-संबंधी समस्याओं की ओर विशेष सजग रहा है। उसने नारी को शक्ति की प्रतिमा और प्रेरणा का स्रोत मानकर उसकी सत्ता उत्सर्ग में मानी है।<sup>4</sup> नारी-समस्या के संदर्भ में ही वैवाहिक जीवन की समस्याओं—विशेषतः अनमेल विवाह के दुष्परिणाम—तथा पारिवारिक समस्याओं का अंकन किया गया है। विभिन्न युगों की राजनीतिक परिस्थितियों तथा आज के साहित्यकारों की सामाजिक स्थिति एवं प्राचीन साहित्यकारों से उनकी तुलना आदि इस उपन्यास के अन्य वर्ण्य-विषय हैं। ‘पतझर’ उपन्यास फ़िल्मी ढंग की नाटकीयता से परिपूर्ण कथानक को लेकर

रचा गया है, जिसमें मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से आधुनिक जीवन में व्याप्त मानसिक विकृतियों और मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों की विवृति की गई है।<sup>5</sup> जातिवाद की समस्या का समाधान अंतर्जातीय प्रेम-संबंधों में खोजते हुए भी लेखक ने वासनात्मक प्रेम की तो निंदा की है, किंतु प्रेम के शाश्वत स्वरूप को सर्वोपरि मानकर सामाजिक रूढ़ि एवं बंधन के परित्यागपूर्वक प्रेम-संबंधों को वैवाहिक परिणति के रूप में वह प्रेम के आदर्श एवं नैतिक स्वरूप को सामने रखते हुए भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष को मानने पर बल देता है और उसे यूरोपीय संस्कृति के वासनाजन्य प्रेम से अच्छा मानता है।

‘प्रोफेसर’ लेखक का चिंतन-प्रधान उपन्यास है, जिसमें आधुनिकता से बहुत दूर प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं आधुनिकता के सन्निकट पाश्चात्य सभ्यता का चित्र खींचते हुए पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित आधुनिकतावादी पदाधिकारियों की लोभ-लिप्सा, राजनीतिज्ञों की चाल, नौकर की स्वामिभक्ति, अनाथालयों में व्याप्त अनाचार, निम्न मध्यवर्गीय जीवन की व्यथा एवं भिखारियों की दयनीय स्थिति के कारुणिक दृश्य का अंकन कर भारत के बड़े-बड़े शहरों में पनपती भिक्षा-समस्या<sup>6</sup> का उल्लेख किया गया है। ‘पराया’ उपन्यास ‘छोटी सी बात’ उपन्यास की भाँति उच्च मध्यवर्गीय समाज के खोखलेपन को अभिव्यक्ति देता है। पूँजीवाद के कारण पनपती स्वार्थमयी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप मानवीय संबंधों में व्याघात, निर्धनता के दुष्परिणामों, पूँजीपतियों से धन लेकर उनके नाम से स्वरचित साहित्य को प्रकाशित कराने की साहित्यकारों की निंदनीय प्रवृत्ति, यात्रिकता के बढ़ते प्रभाव, शहरों में बढ़ती विलासिता के बीच नारी के आदर्शान्मुखी स्वरूप को सामने रखकर पुरुष की बर्बरता की निंदा करना आदि विविध विषय इस उपन्यास में वर्णित हैं।

प्रेमचंद्र की परंपरा की महत्वपूर्ण कड़ी ‘आखिरी आवाज़’ उपन्यास विस्तृत कथाफलक पर ग्रामजीवन का यथार्थ चित्र है। गाँव में होते अत्याचार, भ्रष्टाचार, गरीबों के साथ होती ज़्यादाती, पुलिस और सरकार को लेकर उन्होंने वास्तव में तत्कालीन जीवन, समाज, राजनीति इत्यादि को हू-ब-हू चित्रित किया है।<sup>8</sup> इसमें लेखक प्रेमचंद्र से भी अधिक जीवन के यथार्थ से जुड़ गया है, किंतु मानव के प्रति अधिक आस्थावान रहा है, जैसा कि उपन्यास की भूमिका में उसने स्वयं कहा है कि ग्रामजीवन मैंने देखा है। मेरे सामने प्रेमचंद्र के ग्राम नहीं रहे हैं। मैंने जीवन के यथार्थ को देखा है, इसलिए नहीं, कि मेरी किसी आदर्श में आस्था नहीं है, मेरी आस्था मानव में है, उसके शाश्वत कल्याण धर्म में है। राजनीतिपरक जीवन कितना कलुषित है, यह देखने और समझने की बात है।<sup>9</sup> इस उपन्यास की रचना तक आते-आते रांगेय राघव सामाजिक उपन्यास-लेखन में इतने परिपक्व हो चुके थे कि उन्होंने प्रेमचंद्र को भी पीछे छोड़ दिया। वैसी भी प्रेमचंद्र के चरित्रों में उतनी गतिशीलता नहीं मिलती, जितनी रांगेय राघव के चरित्रों में। वहाँ नायक प्रमुख होता है और सभी पात्र उसके व्यक्तित्व के अंग, जबकि इस उपन्यास में सभी पात्रों की समान स्थिति है, जिससे किसी एक पात्र को नायक की संज्ञा से अभिहित करने में कठिनाई होती है। जहाँ तक शिल्प की बात है, इस दृष्टि से भी यह अत्यंत सफल रचना है।<sup>10</sup>

डॉ० रांगेय राघव ने प्रेमचंद्र के सामाजिक उपन्यासों की परंपरा में विकास का पथ छूते

हुए प्रेमचंद्र से पूर्ववर्ती देवकीनंदन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी आदि जासूसी, ऐयारी एवं तिलिस्मी उपन्यास लिखने वालों की शैली को सुरक्षित रखा और 'बोलते खण्डहर' एवं 'अंधेरे की भूख' में भूत-प्रेतों से जुड़ी कहानियों को आधार बनाकर पाठकों के मनोरंजनार्थ रोचकता, चमत्कारवादिता एवं आकर्षण से परिपूर्ण कथानक को प्रस्तुत किया। इन दोनो उपन्यासों पर विदेशी प्रभाव को लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है।<sup>11</sup> दोनों ही उपन्यासों में प्राचीन लोककथात्मक पद्धति को अपनाया गया है, यदि भूतों की करामात का वर्णन न होता, तो इन्हें पंचतंत्र, कथासरित्सागर एवं तोता-मैना आदि ग्रंथों की श्रेणी में रखा जा सकता था। इन दोनों उपन्यासों में 'अंधेरे की भूख' उपन्यास की अपनी एक विशेषता यह है कि इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारतीय है और इसमें घटना-चमत्कार के साथ ही कुषाण वंश की सांस्कृतिक परंपराओं को संकेतात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है, जिनका संबंध भूत-प्रेतों से जुड़ा हुआ है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरांत किसी विशिष्ट अंचल अर्थात् जनपद या क्षेत्र अथवा जाति (जन्मगत या व्यवसायगत) के समग्र जीवन का विशद और वैविध्यपूर्ण चित्रण करने के उद्देश्य से आंचलिक दृष्टि अपनाकर उपन्यास-लेखन में प्रवृत्त हुए उपन्यासकारों ने आंचलिक उपन्यासों की रचना की। यद्यपि आंचलिकता का चित्रण प्रेमचंद्रपूर्व युग के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किया है, प्रथम मौलिक उपन्यास परीक्षागुरु में भी आंचलिक तत्त्व विद्यमान हैं, भले ही प्रेमचंद्र ने आंचलिक तत्त्वों की ओर ध्यान न दिया, फिर भी उनके उपन्यासों में आंचलिकता के अंकुर दिखाई देते हैं। वस्तुतः आंचलिक उपन्यासों के जन्मदाता फणीश्वरनाथ 'रेणु' माने जाते हैं। 'मैला आंचल' और 'परती परकथा' उनके दो ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामांचलों की छोटी-छोटी घटनाओं, कथाओं, आचार-विचार, रीति-रिवाज, राजनीतिक-नैतिक अवधारणाओं, पारस्परिक संबंधों आदि के विशिष्ट चित्र मिलते हैं, जो पूरे अंचल के संदर्भ में संश्लिष्ट और गत्यात्मक हो गए हैं।<sup>11</sup> इसके बाद तो उपन्यासकारों की एक लंबी सूची<sup>12</sup> मिलती है, जिन्होंने आंचलिक उपन्यासों की सर्जना की भूमि पर पग रखते हुए हिंदी-साहित्य की इस औपन्यासिक विधा को समृद्ध किया। डॉ० रांगेय राघव भी उन्हीं में से एक हैं, जिनके द्वारा लिखित प्रथम आंचलिक उपन्यास 'काका' ने रेणु के 'मैला आंचल' के बाद प्रारंभिक आंचलिक उपन्यासों में महत्ता प्राप्त की। इस चरित्र-प्रधान आंचलिक उपन्यास को लिखने की प्रेरणा एवं वर्ण्य-विषय का उल्लेख करते हुए उनकी पत्नी सुलोचना रांगेय राघव का कथन है कि मथुरा के वातावरण में पंडों का यात्रियों के प्रति शोषण एवं ब्राह्मणों के कर्मकांड ने मन में एक प्रकार की घृणा उत्पन्न कर दी थी और उसे उन्होंने 'काका' उपन्यास लिखकर अभिव्यक्त किया है।<sup>13</sup> इतिहास की भाँति सत्याधारित घटनाओं का संग्रह यह उपन्यास मथुरा के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन के विविध दृश्यों, जाति-वर्ग में बँटे लोगों की पारस्परिक स्पर्धा, मठों के बाह्याडंबरों के पीछे छिपी भोग-विलास की प्रवृत्ति, वृद्धों की अनेक विवाह करने में रुचि, पुलिस का पूँजीपतियों का पक्ष लेकर सामान्य निरीह जनता पर अत्याचार करना आदि का सूक्ष्म एवं संश्लिष्ट अंकन अंचल-विशेष के संदर्भ में करने के कारण हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है। प्रेम एवं रोमांस की चर्चा इस उपन्यास को रोचकता प्रदान करती है।

'कब तक पुकारूँ' नामक वृहद् उपन्यास में राजस्थान एवं ब्रज प्रदेश की सीमा पर

बसे वैर गाँव एवं उसके समीपवर्ती स्थान पर रहने वाली खानाबदोश जरायमपेशा करनटों की सभ्यता एवं संस्कृति, रीति-रिवाज, विश्वास, अंधविश्वास, नैतिकता एवं अनैतिकता का विशद वर्णन भी आंचलिकता को ध्यान में रखकर किया गया है। यद्यपि इसमें चरित्र-चित्रण में अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता के कारण पात्रों की प्रभावात्मकता में कमी, करनटों के जीवन-चरित्र में स्वाभाविकता के होने पर भी संतुलन की कमी, भाषा-शैली एवं आचार-व्यवहार में बनावटीपन तथा अनावश्यक विस्तार के कारण कथावस्तु के संगठन एवं संतुलन में अभाव पाया जाता है<sup>14</sup> किंतु करनटों के जीवन की प्रत्येक स्थिति का सूक्ष्मता से अंकन करने में लेखक को जैसी सफलता मिली है, उससे लगता है कि लेखक ने उनके साथ रहकर उनकी स्थिति का गंभीरतापूर्वक अवलोकन किया है। यही कारण है कि करनटों की स्त्रियों के कुलीनों की अतृप्त यौन-वासना की तृप्ति के लिए जाने या अन्य पुरुष से संबंध स्थापित करने की घटना, जिसे करनट जाति में बुरा नहीं माना जाता था, का उल्लेख भी उपन्यासकार कर पाने में सक्षम हो सका है। 'धरती मेरा घर', जिसे पात्रों की आदर्शोन्मुखता के कारण प्रेमचंद की परंपरा की महत्त्वपूर्ण कड़ी मानकर हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में गौरवपूर्ण<sup>15</sup> स्थान प्रदान किया गया है और जो अनेक समस्याओं का चित्र उकेरने के कारण समस्यामूलक सामाजिक उपन्यास<sup>16</sup> कहलाता है, ने आंचलिकता को दृष्टि से 'कब तक पुकारूँ' को भी पीछे छोड़ दिया है। इसमें भी वैर गाँव एवं परिवेश का सजीव चित्रांकन है, जो लोहपीटों की जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता हुआ 1935 ई० से 1960 ई० तक के पच्चीस वर्षीय काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जागरण की संपूर्ण गतिविधियों को दर्शाता है। दोनों ही उपन्यासों में खानाबदोशों के जीवन का वर्णन करते समय लेखक ने समाजशास्त्री एवं उपन्यासकार के समन्वित दायित्व का निर्वाह किया है।<sup>17</sup>

सामाजिक उपन्यासों की ही परंपरा में लिखे गए मार्क्सवादी सिद्धांतों पर आधारित समाजवादी उपन्यासों की सर्जना का क्रम प्रेमचंद्र-युग से प्रारंभ हो चुका था। प्रेमचंद के प्रगतिशील चिंतन का प्रभाव अपने समकालीन लेखकों पर ही नहीं पड़ा, बल्कि परवर्ती लेखक भी प्रभावित हुए और उन्होंने समाजवादी उपन्यास लिखे। यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेंद्र यादव, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' आदि उपन्यासकारों के साथ डॉ० रांगेय राघव का नाम भी इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चटर्जी के 'आनंदमठ' उपन्यास के समान अपने उपन्यास का 'विषाद-मठ' नाम रखकर उन्होंने बंगाल के एक गाँव को लेकर अकाल की विभीषिका से त्रस्त एवं कराहती मानवता और पूँजीपति वर्ग की स्वार्थपरक नृशंसता का यथार्थपरक चित्रण किया है। एक ओर पेट की आग से पीड़ित जन-समुदाय नैतिकता के सभी बंधन छोड़कर पूँजीपतियों के शोषण का शिकार होता जा रहा है, यहाँ तक कि स्त्रियों एवं लड़कियाँ अपने शरीर को बेच रही हैं, तो दूसरी ओर इस विषम परिस्थिति में पीड़ितों की दयनीय दशा को देखकर सहायता करने की अपेक्षा पूँजीपति वर्ग अपने गोदाम भरने में लगा है। इस विषमतापूर्ण जीवन का चित्र अंकित कर लेखक ने इस समाजवादी चिंतन को अभिव्यक्ति दी है कि वर्ग-संघर्ष के उस युग में मानव

अपनी पहचान लेकर पशुओं से भी दीनहीन जीवन जीने को विवश था।

भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के आगे की कड़ी <sup>18</sup>, सीधा-सादा रास्ता' नामक उपन्यास मार्क्सवादी सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में पूँजीपतियों एवं साम्राज्यवादियों द्वारा मजदूरों के शोषण एवं उन पर किए गए आत्याचार तथा मजदूरों का उनके विरुद्ध संघर्ष का वर्णन कर गांधीवाद का विश्लेषण एक नए संदर्भ में करता है, जिसमें कम्युनिस्टों वाली विचारधारा का अभाव है। 'हुजूर' में एक विलायती कुत्ते जैक की आत्मकथा के माध्यम से समाज के शोषण, नग्नता, दरिद्रता, परवशता तथा शासकों की कुनीतियों का यथार्थ चित्रण करते हुए ब्रिटिश हुकूमत पर व्यंग्य किया गया है, किंतु इसमें लेखक का ध्येय समाजवाद को विजय दिलाने की ओर रहा है और वह सफल भी रहा है। यही कारण है कि सभी साहित्यकार इसे एकमत से समाजवादी उपन्यास स्वीकार करते हैं। इसमें जातिवाद, छुआछूत एवं घूसखोरी का भी प्रासंगिक वर्णन समाजवाद के संदर्भ में इनके निराकरण के लिए किया गया है ताकि ऐसे समाज की स्थापना हो सके, जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव एवं धन के प्रति लोभ की भावना न रहे। मजदूरों एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति रखने वाले लेखक ने इन उपन्यासों में समाजवादी जीवन-दर्शन को अभिव्यक्ति तो दी है, किंतु उनका यह दर्शन मार्क्सवाद का अंधानुकरण न होकर उसे एक नए संदर्भ में व्याख्यायित करता है। मानव के महत्त्व को समझने वाले वे मानवतावाद के समर्थक थे और मार्क्सवाद को भी उसी संदर्भ में रखकर देखते थे। उनके विचार में मार्क्सवाद केवल वर्ग-संघर्ष की व्याख्या नहीं है, वह मानव-जीवन के समस्त अंगों का व्यापक अध्ययन है जो संपूर्ण मनुष्य को छूने की सामर्थ्य रखता है। प्रत्येक युग में जो भी विचारधारा रही है, उसने मनुष्य को, उसकी संस्कृति को समर्थ बनाया है और उसके चिंतन को उकसाया है। <sup>19</sup>

हिंदी-साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन राष्ट्रीय जागरण एवं स्वतंत्रता-आंदोलन के समानांतर हुआ। यद्यपि ऐतिहासिक कथा की प्रवृत्ति भारतेन्दु-युग में ही दृष्टिगोचर होने लगी थी, किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास इसी प्रवृत्ति के परिचायक हैं, किंतु आधुनिक युग में वृंदावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में विशेष ख्याति प्राप्त की। राहुल सांकृत्यायन, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल आदि साहित्यकारों के अतिरिक्त डॉ० रांगेय राघव ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। उनके द्वारा रचित आठ ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर 1200 ई० तक के समय की युगीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है। उनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'मुर्दों का टीला' है, जिसमें मो अन-जो-दड़ो कालीन (ईसा से 3500 वर्ष पहले) द्रविड़-आर्य संघर्ष की कहानी को आधार बनाकर गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली एवं साम्राज्यवादी व्यवस्था के खोखलेपन को प्रकट करते हुए पूँजीवाद के दोषों के चित्रांकन के साथ तद्युगीन अज्ञात सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों को भी उजागर किया गया है। डॉ० शिवदान सिंह चौहान ने इसे हिंदी में प्रागैतिहासिक सभ्यता पर साहित्यिक कल्पना का पहला उपन्यास माना है। <sup>20</sup> 'चीवर' नामक दूसरे उपन्यास में हर्षकालीन सामंती व्यवस्था का अंकन करते हुए तद्युगीन सामाजिक राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर बौद्ध धर्म के व्यापक

प्रभाव की चर्चा है। 'मुर्दों का टीला' की अपेक्षा इसके अधिकांश पात्र इतिहास के अधिक निकट हैं और इसमें इतिहास तत्त्व कल्पना की अपेक्षा अधिक सुरक्षित हैं।

'अँधेरे के जुगनू' महाजनपद-युग में भी प्राचीन समय का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे उपन्यासकार ने स्वयं भी महाभारत के सात सौ या आठ सौ वर्ष बाद एवं बुद्ध से चार-पाँच सौ साल पहले के समय का चित्रण माना है।<sup>21</sup> इसमें तत्कालीन धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अंकन करते हुए ब्राह्मण-क्षत्रिय संघर्ष का उल्लेख कर लेखक की अभिरुचि गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के ऐतिहासिक विकास-क्रम को दर्शाने में अधिक रही है। बुद्ध और महावीर काल की सामंती व्यवस्था पर आधारित उनके दो उपन्यास 'राह न रुकी' और 'पक्षी और आकाश' इतिहासाश्रित होकर लेखक के दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति देते हैं। जैन-वर्ग का व्यापक प्रभाव दर्शाते हुए समकालीन बौद्धधर्म का स्वरूप भी इन उपन्यासों में अभिव्यक्त किया गया है। युग-युग की समस्याओं के समाधान भी तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में किए गए हैं। 'राह न रुकी' की अपेक्षा 'पक्षी और आकाश' में कल्पना का समावेश अधिक है, किंतु ऐतिहासिकता की रक्षा दोनों ही उपन्यासों में हुई है। यद्यपि दोनों ही उपन्यासों में क्षत्रियों द्वारा ब्राह्मणों की शक्ति घटाने का वर्णन है, किंतु गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली का व्यावहारिक रूप विशेष रूप से दूसरे उपन्यास में देखने को मिलता है। 'जब आवेगी काल घटा' भारतीय इतिहास की तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में विद्यमान गोरख और कबीर के बीच के नाथ-संप्रदाय के स्वरूप एवं उसके योगदान को प्रस्तुत कर तत्कालीन परिस्थितियों का यथानुरूप वर्णन करते हुए उरा काल में योगियों की स्थिति और उनके प्रभाव का मूल्यांकन करता है। मध्यकालीन युग में खिलजी वंश के शासकों की गतिविधियों का सजीव वर्णन करने वाला यह उपन्यास राजनीतिक विश्रृंखलता, अराजकता, अनैतिकता से टूटते समाज की झाँकी दिखलाकर नाथ-संप्रदाय द्वारा उसे जोड़ने के प्रयास की कहानी कहता है। विविध पात्रों के साथ चर्पटनाथ के व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश डालने के कारण इस चरित्र-प्रधान ऐतिहासिक उपन्यास को कुछ विद्वान् जीवन-चरितात्मक उपन्यास की श्रेणी में रखने का समर्थन करते हैं, किंतु वस्तुतः इसमें जीवन चरितात्मक उपन्यासों में पाए जाने वाले सभी तत्त्व नहीं मिलते।

राहुल सांकृत्यायन के ग्रंथ 'बोल्गा से गंगा' से प्रेरित डॉ॰ रांगेय राघव ने मनुष्य की विकास-यात्रा को चित्रित करने के उद्देश्य से 'महायात्रा: अँधेरा रास्ता' और महायात्रा: रैन और चंदा' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्जना की, जिनमें से प्रथम प्रागैतिहासिक काल से लेकर 1500 ई॰ पू॰ तक तथा द्वितीय 1500 ई॰ पू॰ से लेकर 1200 ई॰ तक की मानवीय विकास-गाथा को समाविष्ट किए हुए हैं। आदिम युग से आज तक उत्तरोत्तर विकास के पथ पर बढ़ते हुए मानव की सभ्यता की प्रगति की कहानी के सूत्र इन दोनों उपन्यासों में मिलते हैं। भले ही इनकी काल-सीमा 1200 ई॰ तक की है। हर काल की परिस्थितियों का वर्णन युगानुरूप होने से इनकी ऐतिहासिकता बनी हुई है। यद्यपि इन दोनों ही उपन्यासों में अधिकांश तथ्य ऐतिहासिक संदर्भों से ग्रहण कर प्रस्तुत किये गये हैं, लेकिन कुछ तथ्यों के वर्णन में लेखक ने अपनी प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति का सहारा लिया है और ठोस प्रमाण एवं तर्क देते हुए इतिहासकारों के



अभिमतों का खंडन किया है जिससे दोनों की ऐतिहासिकता में कमी नहीं मालूम पड़ती। प्रथम उपन्यास में प्रागैतिहासिक काल की घटनाओं का वर्णन करते समय लेखक ने इतिहास एवं प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख न होने के कारण इसे अन्धकार-पूर्ण युग जानकर अनेक देशों के इतिहास और विद्वान् पुरुषों के अभिमत को आधार बनाया है और देवयुग के बाद की घटनाओं को वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, जैन एवं बौद्ध ग्रंथ, उपनिषद् आदि के आधार पर प्रस्तुत किया है। द्वितीय उपन्यास में 327 ई०पू० से पहले की घटनाओं को छांदोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, महाभारत एवं कठोपनिषद् के आधार पर एवं शेष समय की घटनाओं को इतिहास-ग्रंथों के आधार पर प्रस्तुत करने में लेखक ने विशेष सावधानी बरती है, किंतु बिना रक्तपात के अशोक का शासन सँभालने, तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल की आँखें निकालने, शंकराचार्य द्वारा मंडन मिश्र की पत्नी उम्बा को शास्त्रार्थ में पराजित करने, कालिदास का स्कंदगुप्त से संबंध स्थापित करने आदि में लेखक के इतिहास से भिन्न मत हैं। इतने पर भी ऐतिहासिक धरातल पर आधारित यह विशालकाय महायात्रा लेखक की साहित्यिक प्रतिभा से अत्यंत आकर्षक एवं रोचक हो गई है।

जीवनी और उपन्यास का समन्वित रूप जीवनचरितात्मक उपन्यास, जिसमें उपन्यास के तत्त्वों के साथ-साथ संबंधित व्यक्ति के जीवन की यथार्थपरक घटनाओं का भी संकलन होता है, हिंदी-साहित्य की नवीन विधा है। यद्यपि मिश्रित जीवनीपरक उपन्यासकारों में रामावतार पोद्दार, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, किंतु विशुद्ध जीवनीपरक उपन्यासों के प्रणयन का श्रेय डॉ० रांगेय राघव को ही जाता है। उन्होंने कृष्ण, सिद्धार्थ, कबीर, तुलसी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, विद्यापति, गोरखनाथ, बिहारी एवं महाराणा प्रताप के जीवन की घटनाओं एवं प्रसंगों को आधार बनाकर क्रमशः 'देवकी का बेटा', 'यशोधरा जीत गई', 'लोई का ताना', 'रत्ना की बात', 'भारती का सपूत', 'लखमा की आँखें', 'धूनी का धुआँ', 'मेरी भवबाधा हरौ' एवं 'आँधी की नीवें' नामक नौ जीवनचरितात्मक उपन्यासों में महापुरुषों, साहित्यकारों एवं देशभक्त का चरित्र-चित्रण औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत किया है। युगीन परिस्थितियों के मध्य इन युग-निर्माताओं का चरित्र अपने वास्तविक एवं यथार्थ रूप के साथ लेखक की दृष्टि से नवीनता का आवरण पहनकर आया है। अपने युग-विशेष के लिए इन सभी युगनायकों के योगदान का मौलिक मूल्यांकन कर रांगेय राघव ने तद्युगीन धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के चित्र उभारने में भी सफलता प्राप्त की है। समाज के लोगों की इनके प्रति अवधारणा को नई चिंतन-दृष्टि इन उपन्यासों से मिलती है, जिससे वे इन इतिहास-पुरुषों की समीक्षा नए ढंग से करने को विवश हो जाते हैं। यथार्थपरक वर्णन के कारण इन्हें ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में भले रख दिया जाए, किंतु ये उपन्यास की एक नई विधा के रूप में हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

इस प्रकार अप्रतिम प्रतिभावान् डॉ० रांगेय राघव ने विविध प्रकार के उपन्यासों के सर्जन द्वारा हिंदी की उपन्यास-विधा को अत्यधिक समृद्ध किया। युगीन चेतना के साथ प्रगतिवादी चिंतनधारा का प्रभाव उनके अधिकांश उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए वे

उपन्यासों में वर्णित युग की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का चित्रांकन करते हुए शोषण, अन्याय एवं अत्याचार से पीड़ित मानव का अभिज्ञान कराकर समाज को मानवता के पथ पर चलने का परामर्श देते हैं। नारी-जागृति एवं नारी-स्वातंत्र्य का समर्थन करने के पीछे भी उनका यही मंतव्य है। विविध विषयक उनकी औपन्यासिक कृतियाँ मानव-जीवन की विविधपक्षीय समस्याओं का निरूपण करते हुए उनके समाधान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की परंपरा का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने युग की माँग को पहचानकर युगीन उपन्यासकारों के पथ का भी वरण किया और हिंदी-उपन्यास-विधा को नयी दिशा भी दी। अन्य साहित्यिक विधाओं का संस्पर्श करने वाले वे उपन्यास-लेखन में ही अधिक प्रवृत्त हुए, जो उनकी औपन्यासिक चेतना एवं प्रतिभा का परिचायक है। यद्यपि यह दुर्भाग्य की बात है कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी उपन्यासकार रांगेय राघव को समुचित आदर एवं सम्मान नहीं मिल पाया, किंतु उनके समग्र साहित्य के साथ उपन्यास हिंदी-साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में साहित्य के पाठकों एवं समीक्षकों का ध्यान आकृष्ट करते रहेंगे। जीवन-चरितात्मक उपन्यास तो उन्हीं की नवीन सृष्टि है, जिसे हिंदी साहित्य के इतिहास में विस्मृत नहीं किया जा सकता। अंत में यह तथ्य भी विचारणीय है कि उनके उपन्यासों में कल्पना-तत्त्व हावी न होकर यथार्थपरक वर्णन को रोचकता प्रदान करता है। वर्णन में प्रयुक्त भाषा-शैली भी यथानुरूप है और शिल्प एवं कथा-संगठन भी यथोचित है। थोड़ी बहुत कमियाँ उनके उपन्यास-कौशल पर प्रश्नचिह्न बनकर खड़ी नहीं होतीं।

### संदर्भ

1. डॉ० लालसाहब सिंह, डॉ० रांगेय राघव और उनके उपन्यास, पृ० 33-34
2. डॉ० प्रतापनारायण टंडन, हिंदी-उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ० 452
3. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिंदी-उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० 421
4. डॉ० लालसाहब सिंह, डॉ० रांगेय राघव और उनके उपन्यास, पृ० 73
5. डॉ० प्रतापनारायण टंडन, हिंदी-उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ० 454
6. डॉ० सुलोचना रांगेय राघव, 'पुनः' रांगेय राघवः एक अंतरंग स्मृति, पृ० 54
7. नेमिचंद जैन, धर्मयुग 15 सितंबर 1963, पृ० 47
8. डॉ० सुलोचना रांगेय राघव, 'पुनः' रांगेय राघवः एक अंतरंग स्मृति, पृ० 67
9. आखिरी आवाज, भूमिका, पृ० 3
10. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिंदी-उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० 52०
11. डॉ० नगेन्द्र (संपादक), हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृ० 684
12. आंचलिक उपन्यासकार उदयशंकर भट्ट (लहरें और मनुष्य), भैरवप्रसाद गुप्त (सत्ती मैया का चौरा), राही मासूम रजा (आधा गाँव), शिवप्रसाद सिंह (अलग-अलग वैतरणी), रामदरश मिश्र (पानी के प्राचीर, जल टूटा हुआ, सूखता हुआ तालाब), हिमांशु श्रीवास्तव (रथ के पहिये), देवेन्द्र सत्यार्थी (ब्रह्मपुत्र), राजेन्द्र अवस्थी (जंगल के फूल, जाने कितनी आँखें), विवेकीराय (बबूल), उदयराज सिंह (अँधेरे के विरुद्ध) आदि।

13. डॉ० सुलोचना रांगेय राघव, 'पुन': रांगेय राघव : एक अंतरंग स्मृति, पृ० 23
14. डॉ० प्रतापनारायण टंडन, हिंदी-उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास, पृ० 451-452
15. डॉ० लालसाहब सिंह, डॉ० रांगेय राघव और उनके उपन्यास, पृ० 499
16. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिंदी-उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० 499
17. डॉ० इंद्रनाथ मदान, आज का हिंदी उपन्यास, पृ० 77
18. सीधा सादा रास्ता, दो शब्द
19. डॉ० रांगेय राघव, आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और शृंगार, भूमिका, पृ० 11
20. डॉ० शिवदान सिंह चौहान, हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० 17
21. अँधेरे के जुगनू, भूमिका, पृ० 6-7

□ वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी,  
आर०एस०एम० ( पी०जी० ) कॉलेज  
धामपुर ( बिजनौर ) उ०प्र०

## मैं द्रौपदी नहीं हूँ : नारी के अंतःकरण की वेदना

डॉ० प्रवीन यादव

एम०ए०, एम०फिल०, पी-एचडी०

गाँव बादशाहपुर (गुड़गाँव) हरियाणा

‘मैं द्रौपदी नहीं हूँ’ डॉ० ज्ञानी देवी जी का प्रथम कहानी-संग्रह है। इस कहानी-संग्रह में हमें ज्ञात होता है कि नारी की जीवनशैली में आज भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। उसे आज भी पूर्वकालों की तरह दासी ही समझा जाता है। वैदिककाल में नारी की स्थिति उत्तम थी, परंतु जैसे-जैसे दास वर्ग का जन्म हुआ है, स्त्रियों की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति में पतन आरंभ होता गया है। सेवा ही नारी का मुख्य कार्य बन गया, यद्यपि घर का सारा काम एवं व्यवस्था अभी भी स्त्री के हाथों में है, परंतु अपने मूल अधिकारों से वह अभी तक वंचित है।

सामंती समाज में स्त्री को तीन नाम दिए गए थे—पत्नी, रखैल, वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे संबंध को स्वीकार नहीं करता है यथा—

‘...जब औरत को वह संरक्षण यानी रोटी, कपड़ा और मकान देने के साथ अपना नाम देकर सामाजिक स्वीकृति देता है तो वह उसे पत्नी कहता है लेकिन जब संरक्षण देकर अपना नाम नहीं देता तो वह रखैल है।’<sup>1</sup>

शेक्सपियर जैसे महान विद्वान ने कहा है—‘नाम में क्या रखा है? लेकिन क्या आपने कभी किसी को अपनी बेटी या पोती का नाम द्रौपदी रखते हुए सुना है? सीता, रमा, लक्ष्मी, दुर्गा यहाँ तक की काली नाम की लड़की आपको मिलेगी, लेकिन द्रौपदी नहीं मिलेगी। शायद इसीलिए लेखिका ने अपने काव्य-संग्रह का नाम ‘मैं द्रौपदी नहीं हूँ’ रखा है। कहानी-संग्रह का शीर्षक ही इतना जिज्ञासावर्द्धक है कि पाठक अनायास ही इस कहानी-संग्रह को पढ़ने के लिए खिंचा चला आता है।

इस कहानी-संग्रह के माध्यम से लेखिका उन सभी रूढ़िवादी परंपराओं को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए प्रयासरत है, जिन्होंने नारी-जीवन के विकास को अवरुद्ध किया है।

‘मैं द्रौपदी नहीं हूँ’ कहानी एक पहाड़ी लड़की की पीड़ा और विवशता को व्यक्त करती है, जिसका विवाह हरियाणा प्रदेश के कुरुक्षेत्र जनपद के एक अधेड़ व्यक्ति के साथ कर दिया जाता है। श्रेष्ठा नाम की यह सुंदर लड़की अपनी पीड़ा को एक चित्रकार के समक्ष व्यक्त करते हुए कहती है कि मैंने अपनी नियति समझकर अधेड़ उम्र के पति को स्वीकार कर लिया था, परंतु दूसरी रात मेरे कमरे में मेरे पति की जगह कोई दूसरा व्यक्ति आता है। मैं उसका विरोध करती हूँ तो वह कहता है—

‘... वह तुम्हारा पति किस-किस को जान से मारेगा। कल तुम्हारे पास तीसरा आएगा, परसो चौथा व नरसो पाँचवाँ...। वह अकेले थोड़े ही तुम्हारा पति है? फिर, हमें बाहर निकालने वाला वह कौन है? हम पाँचों ने तुम्हें मिलकर ख़रीदा है। ... यह कुरुक्षेत्र की भूमि है, यहाँ द्रौपदी जैसी राजकुमारी के भी पाँच-पाँच पति थे, फिर तुम्हारी तो औकात क्या है?’<sup>2</sup>

इस तरह अगली प्रातः श्रेष्ठा वहाँ से भाग आती है। वह चित्रकार को आपबीती सुनाते हुए कहती है कि—

‘... बाबूजी, आप ही बताइए, क्या द्रौपदी बार-बार जन्म लेती रहेगी? नहीं ना? मैंने उन्हें छोड़कर क्या बुरा किया बाबूजी? मैं द्रौपदी नहीं बनना चाहती थी।’<sup>3</sup>

‘काश’ नामक कहानी में भ्रूण-हत्या की समस्या के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि नारी पर अत्याचार उसके जन्म लेने से पहले ही प्रारंभ कर दिए जाते हैं, किस तरह उसे इस दुनिया में आने से पहले ही मार दिया जाता है, क्योंकि वह एक कन्या शिशु है। वह नर्हीं बालिका अपने भय व पीड़ा को इन शब्दों में व्यक्त करते हुए कहती है कि—

‘... मेरा दिल धड़क रहा था, दहल रहा था, रूँह काँप रही थी। मेरे रोम-रोम से बचाओ-बचाओ की पुकार निकल रही थी। लेकिन सुननेवाला कोई नहीं था। अब तक माता-कुमाता नहीं सुनी थी, पर आज उसी के गर्भ में पड़ी हूँ। लाख सिर पटका, हाथ-पैर चलाए, लेकिन कोई सुनवाई नहीं। शायद! वह यह सोचकर कोई प्रतिक्रिया नहीं कर रही थी कि कुछ ही देर में उन्हें मुझसे मुक्ति मिल जाएगी।’<sup>4</sup>

यहाँ नर्हीं बालिका एक प्रश्न छोड़ जाती है— क्यों प्रताड़ित नारी ही हर बार?

नारी की विवशता यहीं पर खत्म नहीं होती। उसे क़दम-क़दम पर पीड़ा को भोगना है, क्योंकि वह नारी है। उसे अपने परिवार की झूठी आन-बान-शान को भी बनाए रखना है, क्योंकि वह नारी है।

‘रेत का घरौंदा’ कहानी में निशा नाम की लड़की एक भिन्न जाति के लड़के के साथ भाग प्रेम-विवाह कर लेती है। कुछ दिन बाद उसके घरवाले उसे पकड़कर वापिस घर ले आते हैं। वह अपने पिता व भाई से निवेदन करती है कि उसे छोड़ दिया जाए, वह आगे से कोई गलती नहीं करेगी। परंतु जब वे उसे माफ नहीं करते तो वह अपने पिता से कहती है—

‘... तो फिर लाओ सल्फास की गोली पिताजी! उसने स्थिरता से कहा था। उसके पिता ने उसे पानी का गिलास थमाया और सल्फास की गोली उसकी हथेली पर रख दी।’<sup>5</sup>

यहाँ लेखिका समाज के ठेकेदार पुरुषों से पुनः यह प्रश्न पूछती है कि वह इतना निर्दयी कैसे हो सकता है? क्या ग़लती की कोई माफी नहीं है? क्या वह कभी भी गलती नहीं करता? यदि हाँ तो क्या उसकी भी वही परिणति होगी?

‘पद चिहनों की मिट्टी’ कहानी में बाल-विवाह समस्या के द्वारा लेखिका यह प्रश्न उठाती है कि एक ऐसा विवाह जिसके मायने भी वर-वधू को पता नहीं, क्या उसके होने से किसी बालिका की ज़िंदगी नष्ट करना उचित है?

इस कहानी में एक नन्हीं बालिका का विवाह बचपन में हो जाता है, परंतु बचपन में ही उसके अनदेखे पति की मृत्यु हो गई। अब उस बालिका पर दुहाजू का लेवल लग गया, इसीलिए उसकी शादी भी एक अधेड़ उम्र के दुहाजू से कर दी जाती है। उसे यह तो पता है कि उसका पति दुहाजू है, परंतु यह जानकर कि वह दो बच्चियों का पिता है, वह ठगी-सी रह जाती है।

‘... वह पलंग पर लगभग तीन व पाँच वर्ष की बच्चियों को लिटाते हुए ये कहते हैं—लो, अपनी माँ के पास जाओ, फिर मुझसे कहते हैं—मैंने इन्हीं के लिए तुमसे शादी की है। इन्हें सँभालने के लिए कोई औरत तो घर में चाहिए ही थी, इसलिए पुनः विवाह करना पड़ा।’<sup>6</sup>

यहाँ लेखिका नारी का पक्ष लेकर यह प्रश्न पूछती है कि क्या नारी का महत्त्व इतना ही है कि वह बच्चों को पाले? क्या उसकी कोई अपनी अभिलाषा एवं महत्त्वाकांक्षा नहीं है? ऐसे ही अनुत्तरित प्रश्न नारी वेदना को और बढ़ा देते हैं।

‘कुंभीपाक’ कहानी जिसका अर्थ है नरक। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर वह कालिख पोतती है; जिसको सुनकर दिल दहल जाता है। इस कहानी में कालिया की पत्नी प्रसव-पीड़ा के कारण मृत्यु का ग्रास बन जाती है। घर का सारा बोझ कालिया की 10 वर्षीय बेटी निशा पर आ जाता है। वह कदम-कदम पर अपनी माँ की कमी महसूस करती है, उसका पिता धीरे-धीरे और भी आलसी हो जाता है। वह खेतों में निशा का हाथ बँटवाने के लिए एक नौकर रख देता है, लेकिन पाप अपनी चरमसीमा पर तब पहुँच जाता है, जब एक रात कालिया अपनी बेटी निशा को अपनी हवस का शिकार बना लेता है। निशा इसे स्वप्न समझकर भ्रमित थी, परंतु धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने से इसे बीमारी समझ अपने पिता से पूछती है कि यह क्या है पिताजी? तो वह कहता है कि—

‘...ख़बरदार! किसी के आगे जुबान भी खोली तो! मेरा नाम भी तेरी जुबान पर आया तो गर्दन काट दूँगा! वैसे भी गाँव वाले सब यही जानते हैं कि तू ... नौकर के साथ ... मुँह काला ... करती ... है।’<sup>7</sup>

अब निशा को पता चल गया था कि मेरे साथ में हुआ कुकर्म कोई सपना नहीं बल्कि कड़वा सच था। इसलिए वह अपनी इज्जत की रक्षा के लिए यह कदम उठाती है—

‘... उसने दराती उठाई और एक साथ कई बार धड़ाधड़ करते हुए उस राक्षस की गर्दन अलग कर दी... उसने फिर अपनी जान भी तेल छिड़कर दे दी।’<sup>8</sup>

लेखिका पुनः यह प्रश्न उठाती है कि आखिर कब तक नारी झूठी इज्जत को बचाने के लिए पुरुषों पर कुर्बान होती रहेगी? वह किस पर विश्वास करे? क्योंकि उसका रक्षक ही उसका भक्षक बन जाता है। ऐसी कौन-सी जगह है, जहाँ पर स्त्री सुरक्षित है?

‘साधना’ एक ऐसी लड़की की कहानी है, जो सुशील, सुंदर एवं चरित्रवान है। उसके रूप लावण्य से कॉलेज की सभी प्राध्यापिकाएँ मुग्ध एवं आकर्षित हैं। साधना बहुत ही होशियार है, परंतु अब उसके घरवाले उसकी शादी ऐसे युवक से करना चाहते हैं, जो कम पढ़ा-लिखा

है। किंतु साधना अभी पढ़ना चाहती है, इसलिए वह अपनी मैडम से कहती है कि वह उसकी मदद करें—

‘मैडम! मैंने पढ़ने के अतिरिक्त कोई गुनाह नहीं किया। मैं अपने-आपको सभी तरह की परीक्षाओं में डालकर गला रही हूँ। मुझे क्यों नहीं आगे पढ़ने दिया जाता? लड़के अगर मेरे बराबर पढ़ें-लिखें नहीं है... मैडम तो इसमें मेरा क्या दोष है?’<sup>9</sup>

अब हमारे समक्ष यह समस्या आती है कि योग्यता होने पर भी नारी को आगे क्यों नहीं बढ़ने दिया जाता? क्यों पग-पग पर उसकी अनावश्यक अग्नि-परीक्षा ली जाती है?

‘साधना’ ऐसी योग्य लड़की है कि उसको कोई भी लड़का अपनी पत्नी बनाकर गौरवान्वित महसूस करेगा। लेकिन वह अनपढ़ लड़का उसके चरित्र की पड़ताल बस के कंडक्टर से करता है तो वह अपनी मैडम से कहती है—

‘... आवारा, असभ्य, गँवार से गँवार लड़का भी लड़की को वस्तु क्यों समझता है मैडम? उन्हें यह हक किसने दिया कि किसी शरीफ लड़की को यूँ जलील करें? मैं सब कुछ बर्दाश्त कर सकती हूँ, अपने चरित्र की तफसीस नहीं।’<sup>10</sup>

‘तलाश’ कहानी एक 50 वर्षीय सुदर्शना नामक स्त्री की कहानी है, जिसका पति मर जाता है। वह अपनी जिम्मेदारी निभाकर अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह कर देती है। बड़ा पुत्र ग़लत संगत के कारण जेल में है, छोटे पुत्र को लकवा मार जाता है, इसलिए वह घर छोड़कर चला जाता है। सुदर्शना अपने पुत्र की तलाश में शहर और अपनी ससुराल के ही हमउम्र पुलिसवालों के यहाँ रूक जाती है। एक दिन पुलिसवाला सुदर्शना के सामने विवाह-प्रस्ताव रखता है, तो वह लज्जा अनुभव कर उसका घर छोड़ किसी आश्रम में चली जाती है।

वह पुलिसवाला गाँव के पंच, सरपंचों के साथ जाकर सहर्ष उससे विवाह कर लेता है। धीरे-धीरे पुलिस वाले की पौत्र-वधू का उसके घर पर नियंत्रण हो जाता है, वह पुलिसवाला एक दिन सुदर्शना से कहता है—

‘... इनके कामों में क्यों हरदम दखल करती हो? तुम चुप नहीं रह सकती क्या? चुपचाप जैसा देते है, खा लिया करो। पसंद नहीं है तो तुम्हारी मर्जी, यहाँ रह या कहीं और तेरी वजह से मैं अपना बुढ़ापा कैसे बिगाड़ लूँ?’<sup>11</sup>

लेखिका यहाँ पुनः यह प्रश्न करती है कि कब तक सुदर्शना जैसी असहाय स्त्री को अपनाकर स्वार्थ पूर्ति होने पर त्यागा जाता रहेगा? कब तक साधना जैसी लड़की की योग्यता को तिलांजली दी जाएगी? कब तक निशा जैसी लड़की अपने रक्षक द्वारा नोची जाती रहेगी कब तक बाल-विवाह के नाम पर नारी के जीवन को नरक बनाया जाएगा? कब तक प्रेम-विवाह के नाम पर स्त्री की बलि ली जाएगी? कब तक स्त्री द्रौपदी बनकर रहेगी? इस प्रकार लेखिका ने इन सभी समस्याओं का निदान एवं नारी की अंतर्वेदना को कहानी-संग्रह में सफलतापूर्वक चित्रित किया है। अतः डॉ० ज्ञानीदेवी ने अपने विचारों से निश्चित ही पाठक वर्ग को प्रभावित किया है, आशा है कि प्रत्येक सजग पाठक इन सभी समस्याओं को खंडित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देगा।

## संदर्भ

1. अरविंद जैन, औरत होने की सजा, पृ० 17
2. डॉ० ज्ञानी देवी, मैं द्रौपादी नहीं हूँ, पृ० 20
3. वही, पृ० 21
4. डॉ० ज्ञानी देवी, काश, पृ० 34
5. डॉ० ज्ञानी देवी, रेत का घरौंदा, पृ० 42
6. डॉ० ज्ञानी देवी, पदचिह्नों की मिट्टी, पृ० 107
7. डॉ० ज्ञानी देवी, कुंभीपाक, पृ० 136
8. वही, पृ० 136
9. डॉ० ज्ञानीदेवी, साधना, पृ० 166
10. वही, पृ० 167
11. डॉ० ज्ञानी देवी, तलाश, पृ० 121



## मोहन राकेश की कहानियों में मानवीय संबंध

डॉ० कुलदीपसिंह

ग्राम टीकली (गुड़गाँव) हरियाणा

हिंदी साहित्य में कहानी का विशिष्ट स्थान है। कहानी का अपना एक अलग अस्तित्व है। हिंदी-कहानी परंपरा में अनेक ऐसे लेखक हुए हैं। जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से व्यक्ति और समाज के जीवन में नई चेतना और स्फूर्ति का संचार किया है। कहानी कहने का प्रचलन जैसे तो हमारे यहाँ प्राचीनकाल से है। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ इत्यादि इसी परंपरा के द्योतक हैं। किंतु कहानी साहित्य की सुदृढ़ परंपरा का विकास हम प्रेमचंद युग से मान सकते हैं। इसी आधार पर हम कहानी को पूर्व प्रेमचंदोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में विभाजित करके कहानी के विकास का क्रमगतः अध्ययन कर सकते हैं।

मोहन राकेश की कहानियों में मानवीय संबंधों का सूक्ष्मता के साथ निरूपण हुआ है। स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय परिवेश और जनमानस में एक क्रांति आई है। आदर्श और मर्यादाओं की नींव पर नए मानव-मूल्यों एवं यथार्थ को स्थापित किया गया है।

तत्कालीन कहानीकारों ने एक ओर भारतीय जनमानस में व्याप्त अंतर्द्वंद्व का चित्रण किया है तथा दूसरी ओर मानवसमाज में हो रहे रिश्तों के विघटन का वर्णन किया है। इस युग के कथाकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर तथा राजेंद्र यादव की त्रिमूर्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने जनमानस से संबंधित घटनाओं तथा उनके द्वारा समाज से कटते व्यक्तियों का यथार्थ चित्रण किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद समाज में एक नई क्रांति आई। संयुक्त परिवार के स्थान पर एकल परिवार का विकास हुआ। मोहन राकेश का अधिकांश साहित्य स्त्री-पुरुषों के टूटते संबंधों पर आधारित है।

जीवन की सपाटता में असंगतियों, विषमताओं और अनेक विडंबनाओं ने अड्डा जमा लिया है। मनुष्य समाज से कटा है और अपने इस कटने-टूटने और बिखरने में वह नितांत अकेला घुटता गया है।

अकेलेपन, उदासी और पीड़ा के साथ-साथ उसमें अनेक अंतर्विरोध जन्मे हैं। ग्रामीण जीवन की अपेक्षा मनुष्य में नगरबोध जन्मा है। परिणामस्वरूप महानगरीय जीवन की भीड़ में मनुष्य खोया भले ही न हो, किंतु लुट-पिट अवश्य गया है। ऐसी स्थिति में मानवीय व्यवहार में परिवर्तन आवश्यक ही है। गाँव के उजड़ने और नगरों के बसने से व्यक्ति-व्यक्ति के संबंध बदल गए हैं। पिता के प्रति पुत्र का आक्रोश बढ़ा है। पति-पत्नी के संबंधों में तनाव बढ़ गया है। वे तनाव एवं असमंजस की स्थिति में जी रहे हैं।

पहले का वह दांपत्य जीवन जो विश्वास के पगों पर चलता था और समर्पण के मैदान

में खेलता था, आज वह संदेह और अविश्वास की बैसाखियों के सहारे चल रहा है। जहाँ कभी दिलों में प्यार का समुद्र हिलोरें मारता था, वहीं अब नफरतों की आँधियाँ चलती हैं।

नई कहानी के सशक्त हस्ताक्षर 'मोहन राकेश' ने व्यक्ति-व्यक्ति के संबंधों को विशदता के साथ अपनी कहानियों में उभारा है। किंतु उनका ध्यान मुख्य रूप से पति-पत्नी के संबंधों पर केंद्रित रहा है। यहाँ हम उनकी कहानियों में चित्रित विभिन्न मानवीय संबंधों का विवेचन-विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

### 1. पति-पत्नी का संबंध :

जुगल तथा तोषी के दांपत्य संबंधों की कहानी है 'खाली'। इस कहानी में अंतर्गत उन दोनों के जीवन में व्याप्त रिक्तता एवं ऊब का वर्णन किया गया है। उनके संबंधों में जो कटुता एवं बेगानापन है, उसका कारण उनकी स्वभाव में भिन्नता है। जुगल की बक-बक तोषी को पसंद नहीं है और जुगल को तोषी का रहन-सहन पसंद नहीं है। यही कारण है कि तोषी जुगल की बातों से अपना मन हटाए रखना चाहती है। वहीं जुगल को जिंदगी की हर चीज किसी-न-किसी वजह से ग़लत लगती है। यथा—

'... जुगल को उसके मायके से चिढ़ थी, अपने घर से चिढ़ थी कभी-कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने बल्कि अपने आपसे भी चिढ़ है।...<sup>1</sup> मोहन राकेश ने इस कहानी में खाली होती जा रही जिंदगी तथा दांपत्य संबंधों में आई नीरसता और अकेलेपन को अंकित किया है।<sup>2</sup>

'अपरिचित' मोहन राकेश की दांपत्य-संबंधों की जटिलता को निरूपित करनेवाली कहानी है। इसमें ग़लत चुनाव तथा रुचि की भिन्नता के कारण आई त्रासद स्थितियों का निश्छल अभिव्यंजन है। इस कहानी में अपरिचय में परिचय की तलाश साफ़ झलकती है। सहयात्रिणी स्त्री अपने भोलेपन से दांपत्य-संबंधों में आई कटुता रिक्तता का बोध कराती है। वह ग़लत निर्णय और रुचियों के बोझ को ढो रही है। वह मिसफिट है, किंतु उसमें फिर भी निर्भरता है। तभी तो वह गहने बेचकर भी पति की कामनापूर्ति होते देख सुख का अनुभव करती है। वास्तव में यह कहानी बेमेल रुचियों के कारण जीवन में आई रिक्तता, कटुता और बासीपन की कहानी है। 'क्वार्टर' कहानी में भी पति तथा पत्नी के दांपत्य जीवन में संदेह के आधार पर आई कटुता का वर्णन किया गया है।<sup>3</sup>

### 2. पिता-पुत्र का संबंध :

मोहन राकेश की कहानियों में मुख्यतः पति-पत्नी के दांपत्य-जीवन के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। परंतु कुछ कहानियों में पिता-पुत्र, पिता-पुत्री तथा भाई-बहिन इत्यादि के संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है। तथा मोहन राकेश की कहानियों के परिप्रेक्ष्य में हम सर्वप्रथम पिता-पुत्र के संबंधों की चर्चा करेंगे।

'जंगला' कहानी में पिता-पुत्र के संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। इस कहानी से हमें यह पता चलता है कि तदयुगीन पुरुष बदल चुका था। उस युग का बेटा अब आज्ञाकारी बेटा बनकर रहने का आदी नहीं था। पहले की तरह वह पिता के हर हुकुम को मानने के लिए बाध्य नहीं था। उसे जो बात अनुचित लगती है, वह उसका विरोध निःसंकोच भाव से करता

है। यह कहानी हमें एक ऐसे परिवार का रूप दिखाती है, जिसमें पिता रामसरन, माता फूलकौर तथा उनके साथ उनका बेटा बिशना रहता है। विचारों की भिन्नता पिता-पुत्र के संबंधों में दरार डाल देती है। लड़का घर छोड़कर चला जाता है। फूलकौर इसका सारा दोष रामसरन को देती है।<sup>4</sup>

इस तरह हम देखते हैं कि मोहन राकेश की कहानियों में पिता-पुत्र के संबंध मधुर नहीं हैं। परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार उनके संबंधों में दरार पड़ गई है।

### 3. पिता-पुत्री का संबंध :

मोहन राकेश की कुछ कहानियों में पिता-पुत्री के संबंधों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस संबंध में सहायक कहानियों के आधार पर हम पिता-पुत्री के संबंधों का स्वरूप स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

‘वासना की छाया में’ कहानी में एक बूढ़ा जट्ट सरदार है। उसके साथ उसकी पुत्री पुष्पा भी रहती है। जैसाकि हमारी संस्कृति एवं संस्कार में पिता-पुत्री का संबंध बहुत ही पवित्र माना जाता है। इस कहानी में सरदार अपनी शादी करने के लिए अपनी पुत्री को बदले में देने को तैयार है। वह अपनी पुत्री को गालियाँ भी देता रहता है। परंतु वह बुरा नहीं मानती। लेकिन बाबू को उस समय हैरत होती है। जब वह जाट अपनी शादी के लिए पुष्पा का विवाह किसी अपने जैसे बूढ़े से करने के लिए कहता है।

‘... मैंने जाट की ओर देखकर पूछा, तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पड़ोसी हो ना सरदार जी?’

‘नहीं जी हम कल अपने गाँव जा रहे’ जाट ने कहा। यहाँ अब किसके भरोसे बैठे रहे? वहीं चलकर देखभाल करेंगे और नहीं तो बदले में ही कोई लड़की देखेंगे...’<sup>5</sup>

### 4. माता तथा पुत्र का संबंध :

‘आर्द्रा’ कहानी माता तथा पुत्र के संबंधों का स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इस कहानी में बचन नाम की औरत है। जिसके दो बेटे हैं— बिन्नी तथा लाली। लाली वकील है। वह शहर में अपने बीवी-बच्चों के साथ रहता है। जबकि बिन्नी और बचन एक बस्ती में रहते हैं। उनकी दशा आर्थिक रूप से सुदृढ़ नहीं है। लेकिन दोनों माँ-बेटों में प्यार बहुत है। बिन्नी तीन-तीन दिन घर से बाहर रहता था। घर आने पर वह रोटी माँगता है। तो बचन कहती है कि—

‘रोटी आज नहीं बनी है।’ वह बोली

‘मुझे क्या पता था कि लाटसाहब आज भी घर आएँगे कि नहीं। रात की रोटी मैंने सवेरे खाई, सवेरे की अब खाई है। मैं क्यों रोज-रोज बासी रोटी खाती रहूँ? ...’<sup>6</sup>

### 5. भाई-बहन संबंध :

मोहन राकेश की कहानियों में हमें कहीं-कहीं भाई-बहन के संबंधों का भी पता चलता है। ‘रोजगार’ नामक कहानी भाई-बहन के संबंधों को उजागर करती है। इस कहानी में एक लड़की मिस दारूवाला तथा उसका भाई है। उसका भाई एक होटल में पेईंग गेस्ट बनकर रहता है। लेकिन उसका खर्चा उसकी बहन देकर जाती है। इसलिए ‘एडवर्ड्स होटल’ में बैठे

लोग उसके बारे में तरह-तरह की बातें करते हैं।<sup>7</sup>

#### 6. निष्कर्ष :

उक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मोहन राकेश की कहानियों में पारिवारिक संबंध मधुर नहीं है। सर्वत्र कटुता व्याप्त है। एक पिता अपने दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ है। पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे के मनोभावों को समझने में असमर्थ हैं। यही असमर्थता उनके दांपत्य-जीवन को जहरीला बना रही है। भाई-बहन के संबंधों में भी विश्वास दिखाई नहीं देता है। पिता-पुत्र के संबंधों में भी भावशून्यता और वैचारिक भिन्नता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मोहन राकेश की कहानियों में चित्रित परिवार के सदस्य अपनी स्वार्थपरता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्राप्ति हेतु किसी भी प्रकार का दबाव सहन करने को तैयार नहीं हैं। सभी संबंध आधुनिकता की आड़ में धूमिल पड़ रहे हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इनकी कहानियों के पात्र भारतवर्ष की गौरवमयी संस्कृति और पवित्र रिश्तों के पतन का स्वरूप हमारे समक्ष प्रकट करते हैं।

#### संदर्भ

1. 'खाली', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 30
2. 'फौलाद का आकाश', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 113-114
3. 'सुहागिने', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 159
4. 'जंगला', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 185
5. 'वासना की छाया में', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 223
6. 'आद्री', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 43
7. 'रोज़गार', मोहन राकेश, मोहन राकेश की संपूर्ण कहानियाँ, पृ० 297

## डॉ० परशुराम शुक्ल की बाल-कविता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० दयाराम राहुल

बालसाहित्य एक महत्त्वपूर्ण विधा है। विश्व में बालसाहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आर०एल० इस्टीबेंसन जैसे कवियों ने बालसाहित्य के आधार पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित की है। समूचे विश्व में धूम मचाने वाली पुस्तक 'हैरीपॉटर एंड फिलोस्फर्स स्टोन' बालसाहित्य की कृति है। सामाजिक और राष्ट्रीय संदर्भ में बालसाहित्य का अपना अलग स्थान है। बालसाहित्य के माध्यम से बच्चों में जागरूकता एवं सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना का भाव जाग्रत होता है। बालसाहित्य के माध्यम से ही बच्चों को सूचनात्मक साहित्य उपलब्ध होता है, जो बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत आवश्यक है।

हिंदी बालसाहित्यकारों में डॉ० परशुराम शुक्ल सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। डॉ० शुक्ल ने हिंदी बालसाहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखनी चलाई है। आपने बाल कविताएँ, बालकहानियाँ, बालोपयोगी एकांकी के साथ बड़ी संख्या में बालोपयोगी आलेख लिखे हैं। डॉ० शुक्ल मूलतः समाजशास्त्री एवं विज्ञान लेखक हैं। किंतु वह फैंटसी को विज्ञान के समान ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने एक ओर विश्व जलचर कोश, ज्ञान विज्ञान कोश, भारतीय वन्य जीव, भारतीय हिरन और गवय, उपयोगी आविष्कार जैसे विज्ञान ग्रंथों की रचना की है, तो दूसरी ओर विख्यात बाल पत्रिका 'नन्हें सम्राट' में बीस वर्षों से निरंतर प्रकाशित होने वाला उनका बाल धारावाहिक 'वृक्षकथा' एक फैंटसी है। डॉ० शुक्ल की बालकविताओं और शिशु गीतों में भी उपरोक्त दोनों तथ्य स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। उनका बाल मनोविज्ञान पर पूरा अधिकार है। उन्होंने इसका उपयोग शिशु गीत एवं बाल कविताओं में किया है। डॉ० शुक्ल ने अपने बाल गीतों में कुछ नए प्रयोग किए हैं तथा विज्ञान और वन्य जीव जैसे शुष्क विषयों को बालकविता का विषय बनाया है। अतः आपको हिंदी बालसाहित्य के इतिहास में सूचनात्मक बालसाहित्य का सूत्रधार कह सकते हैं।

डॉ० शुक्ल का सूचनात्मक साहित्य अद्भुत है। अपनी तरह का यह अनूठा सृजन है। यह साहित्य-जगत की अमूल्य निधि है। आपके द्वारा रचित सूचनात्मक साहित्य में 'रेलों का विचित्र संसार', 'बच्चे और सेक्स', 'भारतीय वन्य जीव', 'उपयोगी आविष्कार', 'भारतीय हिरन और गवय', 'मार्जार कोश', 'भारत का राष्ट्रीय पशु और राज्यों के राज्य पशु', 'भारत का राष्ट्रीय पक्षी एवं राज्यों के राज्य पक्षी', 'भारत का राष्ट्रीय पुष्प और राज्यों के राज्य पुष्प', 'भारत के

संकटग्रस्त और विलुप्त प्राय वन्यजीव', 'भारत के स्तनधारी वन्य जीव', 'भारत के प्राकृतिक प्रतीक', 'चेतन गाइड', 'कहानी मुर्गे की', 'कहानी मटलू की', 'विश्व जलचर कोश (10 खंडों में)', 'बच्चों का ज्ञान-विज्ञान कोश' आदि प्रमुख हैं।

डॉ० शुक्ल की अनेक उत्कृष्ट रचनाओं को पुरस्कृत किया गया है। चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली द्वारा आयोजित बालसाहित्य लेखन प्रतियोगिता 1998 में एक कहानी 'चंपा का बलिदान', 1990 में एक एकांकी 'तीन मूर्ख', 1994 में सुपर कंडक्विटी, कहानी रेलों की और बीसवीं सदी का विलक्षण आविष्कार : रोबोट पुरस्कृत हुए। उन्हें समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा मोघियों की लोककथाएँ के प्रकाशन हेतु 1990 में 18000 रुपए का अनुदान मिल चुका है।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा आयोजित 'अखिल भारतीय पर्यावरण सुरक्षा प्रतियोगिता : 1992' में आपको प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके साथ ही हिंदी अकादमी हैदराबाद, नागरी बालसाहित्य संस्थान बलिया, भारतीय बालकल्याण संस्थान कानपुर सहित अनेक संस्थाओं द्वारा आपको पुरस्कृत एवं सम्मानित किया जा चुका है।

डॉ० शुक्ल का बालसाहित्य उद्देश्यपूर्ण एवं विस्तृत है। आपकी 30 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनमें सर्वाधिक शिशुगीतों और बालकविताओं की हैं। आपकी प्रमुख पुस्तकों में 'कामना', 'सुनहरी परी और राजकुमार' (बालउपन्यास) 'नन्हा जासूस' (बालकहानी-संग्रह), 'परमचंद के कारनामों' (बाल धारावाहिक), 'मोघिया लोककथाएँ' (लोककथा-संग्रह), 'तितली', 'उठो सवेरे', 'छुक-छुक रेल', 'आओ गुनगुनाओ' पुरस्कृत बालगीत (भाग-एक, दो और तीन) सभी शिशुगीत और बालकविता संग्रह आदि प्रमुख हैं।

डॉ० शुक्ल ने तीन बाल धारावाहिक लिखे हैं—वृक्षकथा, मास्टर दीनदयाल तथा परमचंद के कारनामों। इनमें 'वृक्षकथा' एक फैंटसी है। 'मास्टर दीनदयाल' एक ऐसे आदर्श शिक्षक के जीवन पर आधारित है, जिसका उद्देश्य बच्चों को सही रास्ते पर लाना और उनका सर्वांगीण विकास करना है। उच्च स्तरीय नैतिकता पर आधारित इस धारावाहिक की अधिकांश कड़ियाँ स्वतंत्र बाल कहानियाँ के रूप में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। तीसरा धारावाहिक 'परमचंद के कारनामों' एक ऐसा धारावाहिक है, जिसमें सोलह-सत्रह वर्ष के साहसी बालक के जीवन की अद्भुत साहस की कथाएँ हैं। एक स्वर्गीय फौजी का बेटा परमचंद साहसी होने के साथ बड़ा बुद्धिमान है। वह समाज में फैली कुरीतियों और भ्रष्ट अधिकारियों से अपने ढंग से निपटता है। इस धारावाहिक की अधिकांश कड़ियाँ इंस्पेक्टर अर्जुन और परमचंद के नाम से 'नन्हें सम्राट' सहित अनेक बालपत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

डॉ० शुक्ल ने दो सौ से अधिक बाल कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें बालोपयोगी कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ एवं पौराणिक कहानियाँ, शिकार कथाएँ, विज्ञान कथाएँ तथा मोघिया जनजाति की लोककथाओं से प्रभावित शाश्वत-मूल्यों से युक्त नैतिकता प्रधान बाल कहानियाँ प्रमुख हैं। 'भारतीय वीरांगनाएँ', ऐतिहासिक कहानियाँ हैं, जो 'भारत की साहसी महिलाएँ' के अंतर्गत विभिन्न बालपत्रिकाओं में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हो चुकी हैं। डॉ० शुक्ल ने एक ओर अपनी कहानियों में सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा के लिए लोककथाओं और पौराणिक कथाओं को आधार बनाकर नैतिक-मूल्यों से युक्त बाल कहानियों का बड़ी

संख्या में सृजन किया तथा वहीं दूसरी ओर बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए विज्ञान कथाएँ भी लिखीं, जो बच्चों के संतुलित विकास के लिए आवश्यक हैं। आपकी दो कहानियाँ, 'चंपा का बलिदान' और 'शेर के बच्चे' चिल्ड्रेंस बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं।

डॉ० शुक्ल ने 600 से अधिक शिशुगीतों और बालकविताओं का सृजन किया है। इन पर आपकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपके सभी बालगीत बाल मनोविज्ञान पर आधारित हैं। इनमें कहीं बालक की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है, तो कहीं बच्चों का मनोरंजन।

नैतिकता व्यक्तित्व के विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है और व्यक्ति की सबसे बड़ी पहचान भी। बच्चे नैतिक शिक्षा और उपदेश प्रायः पसंद नहीं करते। वास्तव में थोपी हुई नैतिकता बच्चों में विद्रोह को जन्म देती है।

बच्चों को जिस काम के लिए रोको, वे वही काम करते हैं। उन्हें जिससे मिलने के लिए मना करो, वे उसी से मिलते हैं। भले ही छिपकर मिलें या माता-पिता से आँख बचाकर मिलें। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि बच्चों में नैतिक गुणों का विकास किस तरह हो? डॉ० शुक्ल ने मनोरंजन के माध्यम से बच्चों में नैतिक गुणों के विकास का अनोखा तरीका अपनाया है। अधिक भोजन करना और उसके दुष्परिणाम का दृश्य मनोरंजक होने के साथ प्रभावशाली बन पड़ा है—

मोटा लाला रोज़ सबेरे, दो टन खाना खाता है।  
इसीलिए बिस्तर से अपने, कभी नहीं उठ पाता है।

#### **बाल कविताओं की समीक्षात्मक विवेचना :**

यह बताया जा चुका है कि अभी तक डॉ० शुक्ल की आठ बालकाव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'एकता की शक्ति' डॉ० शुक्ल की पहली काव्य कृति है। इसकी सभी कविताएँ बालोपयोगी तथा शिक्षाप्रद हैं। जीवन एक संघर्ष है, निष्काम कर्म से हम अपना जीवन सार्थक बना सकते हैं—

अपने शौर्य पराक्रम से तुम,  
जीवन को आदर्श बनाओ।  
छोड़ पराया औ' अपना सब,  
कर्म करो निष्काम।  
बच्चो! जीवन इक संग्राम।

पर्यावरण प्रदूषण राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। यह आज भयावह स्थिति की ओर अग्रसर है। बड़े-बड़े कल कारखानों से निकलने वाला खतरनाक धुआँ, वाहनों से निकलने वाला पेट्रोल और डीज़ल का धुआँ, प्लास्टिक पॉलीथीन प्रदूषण के साथ जंगलों की अंधाधुंध कटाई आदि से हम यह नहीं समझ पा रहे हैं किस रास्ते पर जा रहे हैं? वनों के विनाश के कारण अनेक स्थानों पर अनावृष्टि की स्थिति उत्पन्न हो गई है। समसामयिक संदर्भों में डॉ० शुक्ल की पर्यावरण चेतना पर आधारित पुरस्कृत कविता में वृक्ष की मनोव्यथा और राष्ट्रीय

चेतना का ऐसा ही दृष्टांत प्रस्तुत किया गया है—

मेरे मिट जाने पर तुम, कैसे जल बरसाओगे?  
सूख गए यदि खेत तुम्हारे, बोलो फिर क्या खाओगे?  
भूख-प्यास, पीड़ित मानवता, छोड़ अगर तुम जाओगे।  
मरकर अपने पूज्य पिता को कैसे मुँह दिखलाओगे?

‘मोटूराम’ शीर्षक से प्रकाशित बालगीतों की पुस्तकों में जीवन के विविध व्यावहारिक पक्ष हैं। किसी भी राष्ट्र की महानता के लिए राष्ट्रप्रेम, सांप्रदायिक सद्भाव, समानता, समरसता आवश्यक है। जाति-पाँत का भेद न हो, निःस्वार्थ कर्म-भावना हो, प्रकृति से तादात्य स्थापित हो और परमार्थ हमारा धर्म हो तो निश्चित ही हमारा राष्ट्र महान होगा, वहाँ के निवासी महान होंगे और संपूर्ण समाज प्रगतिशील एवं चेतनाशील समाज बनेगा। डॉ० शुक्ल अपने राष्ट्रवासियों के लिए ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं—

निष्काम भाव से कर्म करें, भव बाधाओं से नहीं डरें।  
दुखियों के सब दुख दूर करें, भूले-भटकों के कष्ट हरे।  
निष्काम निष्कपट हो जीवन, निर्मल हो अपना तन, मन, धन।  
हो परमधर्म मानव सेवा, देवाधिदेव मानव देवा।

डॉ० शुक्ल राष्ट्रीय अस्मिता और प्रगतिशील समाज के लिए बच्चों को प्रेरित करते हुए कहते हैं कि बच्चों को प्रातः उठकर ईश्वर से ऐसा वरदान माँगना चाहिए और प्रार्थना करना चाहिए कि हम पढ़-लिखकर अच्छे इंसान बनें और राष्ट्र के विकास में अपने ज्ञान को लगाएँ। इससे हमारा राष्ट्र विश्व में सिरमौर बनेगा—

हे ईश्वर! दो यह वरदान,  
पढ़-लिखकर हम बने महान।  
करें हमेशा अच्छे काम  
जिससे बढ़े देश का नाम।

हास्य मानवीय जीवन में संजीवनी का कार्य करता है। यह हमें चैतन्य रखता है और चिंतामुक्त बनाता है। हास्य जीवन में उमंग का संचार करता है, निरोग रखता है, जो व्यक्ति हास्य से विमुख है, उसका जीवन ही नीरस है। अथवा यह कहें कि उसने अपना वास्तविक जीवन जिया ही नहीं। डॉ० शुक्ल की ‘मोटूराम’ कविता का यही उद्देश्य है। हम हँसें और खूब हँसें। अगर हम स्वस्थ रहेंगे, तो हमारी विचारधारा स्वस्थ होगी, हमारे कर्म स्वस्थ होंगे और हम स्वस्थ तथा ऊर्जावान बनेंगे, इसीलिए हास्य का हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है—

मेरी कक्षा में पढ़ता है भाई मोटूराम  
खाता है दिन-रात चैन से, करै न कोई काम।  
नहीं मानता बुरा कभी वह, सबको खूब हँसाता,  
और स्वयं भी हँसते-हँसते, लोट-पोट हो जाता।  
मोटा है पर मन का भोला अपना मोटूराम,  
इसीलिए तो हम सब, बच्चे करते उसे सलाम।



‘उठो सवेरे’ डॉ० शुक्ल की महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें सोलह बाल कविताएँ हैं। इनमें ‘तिरंगा’ राष्ट्रीय भावना के साथ भारत की आजादी से ओत-प्रोत है। यह कविता उन राष्ट्रभक्तों को समर्पित है, जिन्होंने हँसते-हँसते अपने प्राण आजादी के लिए न्यौछावर कर दिए और देश को आजाद कराया। हमारा तिरंगा लहराकर इन्हीं शहीदों के बलिदानों की याद दिलाता है—

आसमान में बड़ी शान से, लहर-लहर लहराए तिरंगा।  
हम बच्चों को स्वाभिमान की, अभिनव कथा सुनाए तिरंगा।  
चले गए जो इस धरती से, उनकी गाथा गाए तिरंगा।  
अपने प्राण रहें या जाएँ, पर जग में लहराए तिरंगा।

‘छुक-छुक रेल’ डॉ० शुक्ल की पाँचवी काव्य कृति है। इसमें सम्मिलित सभी सोलह रचनाएँ भारतीय अस्मिता, उसकी संस्कृति और रीति-रिवाज, परंपराएँ, धार्मिक आस्थाएँ, सामाजिक सद्भाव, मानवीयता आदि गुणों से प्रेरित हैं। हमारे रंग-रूप अलग हैं, भाषाएँ अनेक हैं, रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न हैं, त्योहारों में भिन्नता है, किंतु सभी प्रकार से भिन्नता होने पर भी हमारी आस्थाएँ एक हैं, हमारा राष्ट्र एक है, सुख-दुख, विपत्ति में हम साथ हैं। एक-दूसरे के लिए हम सदैव तत्पर हैं—

होली में सब मिलकर कैसे  
रंग गुलाल लगाते हैं।  
और ईद के अवसर पर  
गले सभी मिल जाते हैं।

मानवता सर्वोत्तम धर्म है। इस संसार में सभी मनुष्य समान हैं। मानवता हमें सिखाती है कि हम सभी एक-दूसरे के साथ भाईचारे से रहें और सत्य-अहिंसा का पालन करें—

सत्य अहिंसा को जीवन के,  
अपने लक्ष्य बनाऊँगा।  
मानवता को धर्म मानकर,  
आगे बढ़ता जाऊँगा।

‘आओ गुनगुनाओ’ डॉ० शुक्ल की छठवीं काव्यकृति है। इस बालगीत-संग्रह में भी 16 कविताएँ हैं। सदाचार मानव का अनमोल रत्न है। बच्चों को सदाचारी होना चाहिए। अच्छे आचरण से बालक भविष्य में एक अच्छा इंसान बन सकता है। सदाचारी अपने माता-पिता एवं राष्ट्र का नाम रोशन करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि सदाचारी कैसे बने?

माता-पिता को ईश्वर मानो,  
अपने को भी खुद पहचानो।  
नित्य नियम से पढ़ने जाओ,  
आकर होमवर्क निपटाओ।

‘पुरस्कृत बालगीत’ डॉ० शुक्ल की सातवीं काव्यकृति है। यह तीन भागों में है। पुरस्कृत बालगीत के तीनों भागों में बाल मनोरंजन के साथ नैतिक शिक्षा पर विशेष ध्यान रखा गया है। इसके बालगीतों में सहजता, सजगता और नैतिकता के साथ निष्काम कर्म का संदेश निहित है। निष्काम भाव से किया गया कार्य हमारे जीवन में विविध आयाम प्रदान करता है। अगर सीख

भी लेना चाहो तो श्रीराम और श्रीकृष्ण के कर्मक्षेत्र से लो। सच्चाई का रास्ता स्वयं मिल जाएगा—

मर्यादा में रहना सीखो,  
श्रीराम रघुराई से।  
भेद कर्म का करना सीखो बच्चो,  
अपने कृष्ण कन्हाई से।  
लो शिक्षा खिलते गुलाब से,  
काँटों में भी पलने की।  
गौतम, गांधी, महावीर से  
सत्य मार्ग पर चलने की।

भारत में शिक्षकों के आदर और सम्मान की परंपरा प्राचीनकाल से चली आ रही है। महात्मा कबीर ने तो मुक्ति का मार्ग बताने वाले शिक्षक को ईश्वर से भी अधिक महान माना है। शिक्षक के बिना कुछ भी प्राप्त करना संभव नहीं है—

शिक्षक ईश्वर से बढ़कर है, यह कबीर बतलाते हैं,  
क्योंकि शिक्षक ही भक्तों को ईश्वर तक पहुँचाते हैं।  
जीवन में कुछ पाना हो तो, शिक्षक का सम्मान करो,  
शीश झुकाकर श्रद्धा से तुम, बच्चो उन्हें प्रणाम करो।

अंग्रेजी में एक कहावत है—‘पेन इज माइटियर देन स्वोर्ड’। अर्थात् तलवार से कलम की शक्ति अधिक होती है। हम भारतीय कलम से परिचित नहीं हैं। यही कारण है कि हम आपस में झगड़ते हैं, विवाद करते हैं और न्यायालयों में समय बरबाद करते हैं। डॉ० शुक्ल बच्चों को छोटी आयु में ही कलम की शक्ति से परिचित कराते हुए कहते हैं—

आओ बच्चो आज तुम्हें हम,  
एक बात बतलाते हैं।  
शक्ति कलम में होती कितनी,  
यह रहस्य समझाते हैं।

बालमनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए डॉ० शुक्ल ने विज्ञान और वन्य जीवों से बच्चों का परिचय कराया है। उत्तल और अवतल दर्पण की जानकारी ‘हंसीधर’ में इस प्रकार दी गई है—

भैया ने जब हवा भरी तो, गेंद सरीखे फूले गाल,  
और हमारी नाटी मम्मी, बनी देखने में फुटबाल।

डॉ० शुक्ल ने भालू, गोह, तेंदुआ, कस्तूरी-मृग आदि वन्य जीवों पर अनेक कविताएँ लिखी हैं, जो जीवों के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने में सक्षम हैं। भालू की विशेषताएँ बताते हुए, डॉ० शुक्ल कहते हैं—

छत्ता तोड़ शहद पीकर भी,  
बालों के कारण बच जाता।  
और कभी चढ़ ताड़ वृक्ष पर,  
ताड़ी पीकर धूम मचाता।

डॉ० परशुराम शुक्ल की बाल-कविताओं में ऐसे अनेक दृष्टांत भरे पड़े हैं, जिनमें कबीर की तरह गोता लगाते जाओ और रत्न प्राप्त करते जाओ। जीवन में हौंसला रखो। जीवन में बाधाओं से नहीं डरो। संघर्ष के साथ जिया जीवन ही वास्तविक जीवन है। डॉ० शुक्ल के संपूर्ण बालसाहित्य की समीक्षा केउपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि उनकी बाल-रचनाओं में शिशुगीतों से लेकर बालगीतों तक नैतिकता, निष्काम कर्म, सांस्कृतिक एवं सामाजिक समरसता, बालमनोविज्ञान, वन्य जीव और पर्यावरण के साथ राष्ट्रीय चेतना के सभी स्वर हैं। विविध आयामों से प्रेरित है। डॉ० शुक्ल का बालसाहित्य। उन्होंने बालसाहित्य की सभी विधाओं पर समान अधिकार के साथ लेखनी चलाई है। बालगीतों में सूचनात्मक साहित्य और बालमनोविज्ञान के साथ हास्य रचनाएँ भी हैं। इनमें प्रेरणा है, नई दिशा है, मनोरंजन है, ज्ञान-विज्ञान भी है, संस्कृति की चेतना है, सामाजिक सद्भाव, भाईचारा और बंधुत्व भी है। डॉ० शुक्ल का समूचा बालसाहित्य सूचनात्मक साहित्य का मूल्यवान बाल दस्तावेज है, इसमें बालसाहित्य की सभी विधाओं के दर्शन होते हैं। उनका साहित्य हमारे लिए उपयोगी है और राष्ट्र के लिए प्रेरणास्पद है।

□ प्राध्यापक हिंदी

शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया ( म०प्र० )

## भारत-नेपाल का धार्मिक संबंध

डॉ० अनिलकुमार मेहरा

नेपाल प्राचीन समय से ही भारत में प्रचलित धर्मों के प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत रहा है। भारत में गुप्तों के अभ्युदय के साथ धार्मिक जीवन में पुनरुत्थान संस्कार और समन्वय की प्रवृत्तियाँ आ गई थी। राष्ट्रभावना की प्रेरणा से राष्ट्र के मूल और प्रमुख वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ। भारशिवाँ, वाकाटकों और गुप्त सम्राटों ने बड़े-बड़े अश्वमेघ यज्ञ किए। गुप्त सम्राट भागवत वैष्णव धर्म को मानते थे, किंतु एक ऐसे अहिंसावादी भावनाप्रधान धर्म का अनुसरण करते हुए भी उन्होंने प्राचीन वैदिक परंपराओं और प्रणालियों के अनुसार ही अश्वमेघ यज्ञ किए। तीसरी शताब्दी के शासक नागवंशी राजाओं के संबंध में डॉ० जायलवाल का मत है कि काशी के दशाश्वमेघ घाट का नामकरण उनके द्वारा दश अश्वमेघ यज्ञ के कारण हुआ था।<sup>1</sup>

### वैष्णव मत की लोकप्रियता :

लिच्छवि युग में नेपाल गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति के घनिष्ठ संपर्क में आया, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ वैष्णव और शैवमत विशेष रूप से लोकप्रिय हो गए। गुप्तकाल में किसी लेखबद्ध कार्य के पूर्व विष्णु की स्तुति आवश्यक सामग्री मानी जाती थी। स्कंदगुप्त का जूनागढ़ वाला लेख विष्णु की प्रार्थना के साथ ही आरंभ किया गया है।<sup>2</sup> महाराज बुद्धगुप्त के घरवाले स्तंभलेख के प्रारंभ में विष्णु की स्तुति बड़े मार्मिक शब्दावली में की गई है।<sup>3</sup> प्रथम शिवदेव और अंशु वर्मा के लेले अभिलेख में 'भगवत वासुदेव ब्राह्मणगौष्ठिकानाँ' वाक्यांश से वैष्णव ब्राह्मण की गोष्ठियों का अस्तित्व भी सिद्ध होता है।<sup>4</sup>

### शैवमत की लोकप्रियता :

शैवमत की नेपाल में लोकप्रियता वैष्णव संप्रदाय से भी अधिक थी। प्रथम मानदेव के शासनकाल में उसकी रानी सुंदरी ने एक शिवमंदिर बनवाया था। नरक्मी ने एक शिवलिंग की स्थापना कराई थी।<sup>5</sup> इसी प्रकार एक आभारी राजकुमारी ने शिव अनुपरमेश्वर के मंदिर का निर्माण कराकर गंधधूपवलिनिवेदनादि, के प्रवर्तनार्थ एवं भविष्य में मंदिर को मरम्मत के हेतु एक अक्षयनीति प्रदान की थी।<sup>6</sup> इनके अतिरिक्त अन्य अनेक अभिलेखों में शिव मंदिरों और शिवलिंगों के प्रतिष्ठापन की चर्चा है।<sup>7</sup>

### शैव और वैष्णव मतों के संबंध :

भारत के समान नेपाल में भी वैष्णव और शैव के संबंध अत्यंत मधुर थे। लिच्छवि नरेश शैव होते हुए भी व्यक्तिगत रूप से विष्णु के विविध रूपों में श्रद्धा रखते थे। वस्तुतः विष्णु

और शिव एक ही शक्ति के दो रूप हैं, ऐसी मान्यता नेपाल में भी स्वीकृत की जाती थी। शिव, विष्णु के इस रूप को भारतीय साहित्य में हरिहर कहा गया है।

### नेपाल में बौद्ध धर्म का प्रवेश :

बौद्ध धर्म के इतिहास में नेपाल का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का जन्म लुंबिनी में हुआ था, जो आधुनिक नेपाल राज्य की सीमा में आता है, लेकिन नेपाल की उपत्यका में बौद्ध धर्म का प्रवेश कब और कैसे हुआ, यह निश्चयतः ज्ञात नहीं है। 'वंशावलियों के अनुसार तो स्वयं भगवान बुद्ध ने किरात देश नरेश जितेदात्ती के शासन काल में नेपाल की यात्रा की थी।<sup>8</sup> 'मूलसर्वस्तिवाद विनय' के अनुसार तथागत का प्रिय शिष्य आनंद अपने माता-पिता से मिलने नेपाल गया था।

### बौद्ध धर्म की प्रगति के कारण :

नेपाल में प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि प्राक-अंशु वर्मा युग में नेपाल के धार्मिक जीवन में बौद्ध-धर्म का भी महत्व था। नेपालवासी बौद्धधर्म से लगभग तीन शताब्दी ई०पूर्व जब अशोक ने नेपाल की यात्रा करके वहाँ स्तूप आदि बनवाएँ। परिचित रोज डेविड्स के अनुसार तृतीय शती ई०पूर्व के साँची और सेनारी से प्राप्त दो अभिलेखों में 'कर-मपगोत' के किसी व्यक्ति का उल्लेख है, जो गोति का पुत्र था और 'समस्त हिमालय प्रदेश का गुरु था।<sup>9</sup> अशोक की पुत्री चारुमती और दामाद देवपाल ने भी विहारदि का निर्माण कराया था। उनके उपरांत नेपाली बौद्धधर्म का इतिहास अत्यंत अंधकारमय है। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में नेपाल में बौद्धधर्म विशेषतः महायान संप्रदाय की जड़े धीरे-धीरे जमने लगी थीं। अगर ऐसा न होता तो वृषदेव, सुमत शासन अर्थात् निष्ठावान बौद्ध शासन का पक्षपाती नहीं हो पाता। नेपाल में बौद्धधर्म की लोकप्रियता अधिक तेजी से बढ़ी। इसके कई कारण थे। प्रथम गुप्तकाल में कुछ सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों ने अपने मत के प्राचारार्थ नेपाल की यात्रा की। इनमें वसुबंधु सर्व प्रमुख थे।<sup>10</sup> लामा तारानाथ द्वारा उल्लिखित एक अनुश्रुति के अनुसार वसुबंधु की यात्रा के परिणामस्वरूप नेपाल में बौद्धों की संख्या निर्विरोध बढ़ती गई।<sup>11</sup>

### मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ :

परवर्ती लिच्छवि और लिच्छव्योत्तर युगों में शैव-धर्म के समान बौद्धधर्म भी तांत्रिक विचारधारा के द्वारा गंभीर रूप-से प्रभावित हुआ। इसके परिणामस्वरूप इन धर्मों का सरलस्य कुछ विकृत अवश्य हो गया। परंतु इससे एक लाभ भी हुआ और वह था शैव तथा बौद्ध धर्मों का परस्पर निकट आ जाना। इसका सर्वोत्तम प्रमाण यह है कि नेपाली बौद्धधर्म में मत्स्येंद्रनाथ, मोननाथ अथवा मच्छिंद्रनाथ को, जिन्हें नेपाल राज्य का संरक्षक देवता माना जाता है।<sup>12</sup> एक बौद्ध सिद्ध पद्मपाणि का अवतार अथवा चतुर्थ देवी बोधिसत्व अवलोकितेश्वर या लोकेश्वर से अभिन्न माना गया है, जबकि नाथ योगी परंपरा में उनके गुरु आदिनाथ को, जो हो सकता है स्वयं कोई सिद्ध रहे हो।<sup>13</sup> परंतु जिनका नाम आदिबुद्ध का स्मरण दिलानेवाला है।<sup>14</sup> शिव माना जाता है और स्वयं गोरखनाथ अथवा गोरखनाथ को शिव का अवतार। गोरखनाथ को एक पूर्व मध्यकालीन अभिलेख में शैव देव पंचायतन के अंतर्गत भी गिनाया गया है।<sup>15</sup> इन तथ्यों

से नेपाली, बौद्धधर्म और शैवमत की घनिष्ठता स्पष्ट हो जाती है। वंशावलियों में कहा गया है कि आर्याविलोकितेश्वर बोधिसत्व पद्मपाणि ने शिव को योग का उपदेश दिया था। जिसे घर लौटते समय शिव ने पार्वती को सुनाया। उनके बोलते समय पार्वती को नींद आ गई, इसलिए अलोकितेश्वर अथवा लौकेश्वर ने एक मछली का रूप धारण करके उसे सुना। तबसे वह मत्स्येंद्रनाथ के नाम से विख्यात हुए।<sup>16</sup> इन ग्रंथों में आगे कहा गया है कि मत्स्येंद्र नाथ और गोरखनाथ नेपाल में नरेंद्रदेव के पुत्र वरदेव के शासनकाल में पहुँचे थे। उपलब्ध कथा के अनुसार एक बार गोरखनाथ के मन में देवताओं के गुरु और विश्व के सृष्टा मत्स्येंद्रनाथ के दर्शन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। लेकिन उन्होंने पाया कि मत्स्येंद्रनाथ के निवास स्थान कापोतल पर्वत तक पहुँचना उनके लिए असंभव है। इसलिए उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ को नेपाल जाने के लिए विवश कर दिया और उन नवनागों को जिनके कारण वर्षा होती थी, एक पहाड़ी में बंदी बना लिया। स्वयं इस पहाड़ी के ऊपर बैठ गए। इसके परिणामस्वरूप द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष प्रारंभ हो गया, जिससे जनता को तभी मुक्ति मिल सकती थी, जब गोरखनाथ को पहाड़ी से उठाकर नागों को मुक्त किया जाता। लेकिन यह कार्य केवल मत्स्येंद्रनाथ कर सकते थे। इस विपत्ति से घबराकर वरदेव ने अपने वृद्ध पिता नरेंद्रदेव से, जो एक विहार में अपना शेष जीवन व्यतीत कर रहे थे, प्रजा के कष्ट दूर करने के लिए कुछ यत्न करने की प्रार्थना की। नरेंद्रदेव ने उसकी विनती स्वीकार करके एक आचार्य के साथ कापोतल पर्वत की यात्रा की और अनेक कष्ट सहकर मत्स्येंद्रनाथ को नेपाल जाने के लिए राजी कर लिया। उनके आते ही गोरखनाथ उनके अभिवादन के लिए उठे, जिससे नाग मुक्त हो गए और वर्षा होने लगी।<sup>17</sup> यह कथा अनेक रूपों में विभिन्न स्रोतों में उपलब्ध है।<sup>18</sup> इसमें सत्यांश कितना है कहना कठिन है, परंतु इतना अवश्य है कि सिद्ध परंपरा में भी गोरखनाथ को, जिन्हें कनकटा अथवा नाथयोगी संप्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है। प्रायः मत्स्येंद्रनाथ का शिष्य ही माना गया है।

संभवतः नेपाली 'वंशावलियों' का यह कथन सही नहीं है कि मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ नरेंद्रदेव के समकालीन थे। प्रथम, नेपाली वंशावलियों में नरेंद्रदेव के पुत्र का नाम वरदेव दिया गया है जबकि अभिलेखिक साक्ष्य के अनुसार नरेंद्रदेव का पुत्र और उत्तराधिकारी द्वितीय शिवदेव था। दूसरे अभिलेखिक साक्ष्य के अनुसार नरेंद्रदेव ने सातवीं शती ई० के मध्य शासन किया, जबकि मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ की तिथि एक अत्यंत विवादास्पद प्रश्न है। लेकिन इतना निश्चित है कि गोरखनाथ का प्राचीनतम उल्लेख, जिसकी तिथि निश्चित है। इन दोनों सिद्धों के विषय में अन्य सभी उल्लेख ऐसी अनुश्रुतियों के रूप में मिलते हैं, जिनके आधार पर उनकी तिथियाँ निर्धारित करना न संभव है और न समीचीन। इन कठिनाइयों के कारण इनका समय दशवीं शती ई० के पूर्व रचना किसी प्रकार की युक्तियुक्त नहीं माना जाएगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ का नेपाल के धार्मिक इतिहास पर जो भी प्रभाव पड़ा, 'वंशावलियों' के उपर्युक्त साक्ष्य उसके प्रमाण हैं, किंतु इसके बावजूद भी हम यह कह सकते हैं कि भारत नेपाल का धार्मिक संबंध प्राचीनकाल से अब तक कायम है।

## संदर्भ

1. कापर्स ईस्क्रिप्सनस, इंडिकेरम, जिल्द 3, पृ० 237
2. जूनागढ़ लेख, गुप्त लेख नं० 18
3. एरण स्तंभलेख, गुप्तलेख, नं० 22
4. ईस्ट एंड वेस्ट, भाग 2 खंड 4, पृ० 8
5. टू न्यू नेपाली ईस्क्रिप्सन, भाग 8 खंड 2, पृ० 10
6. अभिलेख सं० 16
7. अभिलेख सं० 17
8. बालचंद्र वर्मा, नेपाल की ऐतिहासिक रूपरेखा, पृ० 65
9. के० डब्ल्यू रोजडेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० 196
10. ए० हिस्ट्री आफ दि इंपीरियल गुप्ताज, पृ० 214
11. स्नेलग्रोव, डी०एल० बुद्धिस्ट हिमालय, पृ० 101
12. राइट, हिस्ट्री आफ नेपाल, पृ० 85
13. जी० डब्ल्यू ब्रिग्स, गोरखनाथ एंड दि कानफटा योगीराज, पृ० 23
14. स्नेलग्रोव डी०एल० बुद्धिस्ट हिमालय, पृ० 114
15. इपिग्राफिका इंडिका, भाग 1, पृ० 284
16. राइट, हिस्ट्री आफ नेपाल, पृ० 83
17. राइट, हिस्ट्री आफ नेपाल, पृ० 91
18. राइट, हिस्ट्री आफ नेपाल, पृ० 96-97
19. परशुराम चतुर्वेदी द्वारा गोपीनाथ कविराज अभिनंदन ग्रंथ, पृ० 385-394

□ गाँव व डा० पाकस्मा  
( रोहतक ) हरियाणा

## संत जैतराम की दार्शनिक चेतना

ऋतुराज साहारण

‘दर्शन’ का शाब्दिक अर्थ है— देखना। दर्शन शब्द ‘दृश्’ धातु में ‘ल्युट’ प्रत्यय लगने से बनता है, जिसका अर्थ है— ‘जिसके द्वारा देखा जाए’। दर्शन का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है— दृश्यते अनेन इति दर्शनम्’ अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार— ‘दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है, जो आत्मा रूपा इंद्रिय के समक्ष संपूर्ण रूप से प्रकट होता है।’ डॉ० देवराज के अनुसार— ‘दर्शन का प्रमुख कार्य जीवन की उच्चतम संभावनाओं का प्रामाणिक अन्वेषण तथा निरूपण करना है।’<sup>1</sup>

वस्तुतः भारतीय विचारकों ने दर्शन पर बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने दर्शन को समस्त धर्मों के आधार के रूप में स्वीकार किया है। दर्शन का मुख्य लक्ष्य या उद्देश्य आध्यात्मिक चेतना को परिपुष्ट करना है। दर्शन के द्वारा ही मानव आत्मविद्या को प्रस्तुत करता है, जिसके कारण मानव आत्मदर्शी बनता है। आत्मदर्शी मानव ही संसार-त्याग की बात कर सकता है तथा अविद्या माया का बोध भी दर्शन के द्वारा होता है। वस्तुतः दर्शन सभी धर्मों का सार होता है, क्योंकि इसी में धर्म विशेष का आधार छिपा होता है। भारतीय साहित्य में दर्शन का अपना महत्त्व है। दर्शन के बिना साहित्य अधूरा एवं अपरिपक्व होता है। साहित्य की पूर्णता ही दर्शन से होती है। दर्शन और जीवन का अविभाज्य संबंध है। दार्शनिकों का मत है कि वेदांत दर्शन एक सर्वोपरि दर्शन है। इस दर्शन का मूलाधार उपनिषद् है। आचार्य शंकर ने स्वीकार किया है कि वेदांत मूलतः अद्वैतवाद का ही दूसरा रूप है। शंकर के दर्शन के अनुसार भारतीय दर्शन के निम्नांकित तत्त्व माने गए हैं— ब्रह्म, जीव, जगत, माया और मोक्ष। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर संत जैतराम की दार्शनिक चेतना का विश्लेषण किया जाएगा।

संत जैतराम का लक्ष्य दर्शन को सुलझाना नहीं था, न ही उन्होंने दार्शनिक होने का दावा किया। यद्यपि कविता और दर्शन दोनों पृथक्-पृथक् क्षेत्र हैं किंतु फिर भी हम देखते हैं कि कवि भी दार्शनिक होता है, यह और बात है कि वह इस रूप में नहीं, जिस रूप में दर्शन का विद्वान। इस संबंध में महादेवी वर्मा का कहना है कि ‘काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क प्रणाली है और न ही सूक्ष्म बिंदु तक पहुँचने वाली विशेष विचार पद्धति। वह जीवन की चेतना व अनुभूति को समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है। अतः कवि का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।’<sup>2</sup>

वस्तुतः दार्शनिक चिंतन एक सूक्ष्म, निगूढ़ एवं जटिल प्रक्रिया है। संपूर्ण संत-साहित्य



दार्शनिक चेतना से ओत-प्रोत है। यह सत्य है कि संत मूलतः दार्शनिक नहीं थे और न ही उन्होंने किसी दार्शनिक सिद्धांत या पद्धति का प्रतिपादन किया है। वे वास्तव में साधक और चिंतक थे। ईश्वर को तर्क की कसौटी पर कसना उनका उद्देश्य नहीं था। उन्होंने तो साधना की अनुभूति के आधार पर ईश्वर को 'ब्रह्म', 'राम', 'गोपाल', 'खुदा', 'अल्लाह' आदि नामों से सुशोभित किया है। संत जैतराम की वाणी में सूक्ष्म चिंतन के धरातल पर सहज ही दार्शनिक सिद्धांतों के बिंदु खोजे जा सकते हैं। दार्शनिकता की दृष्टि में उनका स्वतंत्र चिंतन झलकता है।

हमारे आदिकालीन साहित्य में भी दर्शन को खोजा जा सकता है। नाथों, जैनों, सिद्धों के साहित्य पर भी दर्शन की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। प्राचीनकाल से ही हमारे साहित्य में विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों का प्रचलन रहा है। सबसे पहले शंकराचार्य ने 'अद्वैतवाद' की स्थापना की थी। इस सिद्धांत में ब्रह्म और आत्मा सत्य हैं, जगत् मिथ्या है। जगत् की मिथ्या का कारण माया है। इसी तरह आचार्य रामानुज ने 'विशिष्टाद्वैत' की स्थापना की। उन्होंने ब्रह्म की अद्वैत सत्ता को स्वीकारते हुए भी जीव और ब्रह्म अभिन्न माना है। मध्वाचार्य ने 'द्वैतवाद' की स्थापना की, जिसमें भगवान और भक्त के बीच पार्थक्य पहली शर्त है। निंबकाचार्य ने जीवन, जगत् तथा ईश्वर की पृथक् सत्ता स्वीकारते हुए द्वैताद्वैतवाद या भेदोभेदवाद की स्थापना की। इन सभी दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव आगे चलकर संत साहित्य पर पड़ा, जिनकी झलक कबीर से होती हुई ग़रीबदास तथा जैतराम तक झलक दिखाई देती है।

जैसे-जैसे विश्व एक आत्म-चैतन्य इकाई होने की दिशा में आगे बढ़ता जा रहा है, और कला, विज्ञान, साहित्य एवं सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में अपना एक निजी स्वरूप विकसित करने लगा है, ऐसे में दार्शनिकता का प्रश्न अधिक प्रबल और महत्त्वपूर्ण होने लगा है। क्या दार्शनिकता सदैव सार्वभौम नहीं रही है? निःसंदेह रही होगी। इसी प्रकार, चीन, यूरोप तथा अमेरिका में भी दार्शनिकों ने एक ही जीवन तथा सत्ता पर प्रकाश डाला है और साथ में सत्य के प्रति भी उदार दृष्टिकोण रखा है। इसलिए दार्शनिक सत्य का दर्शन पाने के लिए तर्क पर विश्वास करता है।

भारत में शंकर, रामानुज, वल्लभ, मध्व आदि वेदान्त के महानतम् आचार्यों के बाद पुनः श्री अरविंद ने एक मौलिक दार्शनिक पद्धति हमारे सामने रखी। आगे चलकर हरियाणा की पावन भूमि पर भी अनेक संत कवियों ने अपनी दार्शनिकता का परिचय दिया। इनमें ही संत जैतराम का भी प्रमुख स्थान है। इनका दर्शन गूढ़ और गंभीर है। इन्होंने ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मोक्ष पर अपने स्वतंत्र दार्शनिक विचार व्यक्त किये। जैतराम निर्गुण भक्ति परम्परा के संत हैं। जिन्होंने स्वयं ईश्वर-प्रेम को प्राप्त करने के लिए जीवन-पर्यंत प्रयास किया और दूसरों को इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने अपनी वाणी के माध्यम से अपने विचारों को नैसर्गिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनकी वाणी में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया की जीव आदि से संबंधित जो विचार प्राप्त होते हैं, वे उनकी अपनी मौलिक अनुभूतियाँ हैं।

'ब्रह्म' का शाब्दिक अर्थ बड़ा होता है। 'कठोपनिषद्' के अनुसार, 'ब्रह्म बड़ों से बड़ा है 'ब्रह्म' शब्द की व्युत्पत्ति 'वृह्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है— नित्य, मुक्त एवं सर्वव्यापक। शंकराचार्य के अनुसार, 'ब्रह्म ही परमतत्त्व है और यही इस नाना रूपात्मक जगत् का मूलाधार है। संत कवियों ने निर्गुण ब्रह्म के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग किया है। यथा— परब्रह्म, अलख निरंजन, खसमा, सत्पुरुष, साहब, अल्लाह, आदि।

जैतराम ने भी ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापी, सच्चिदानंद, अनादि कहा है। जैतराम ने जिस निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की है, वह अत्यंत प्रकाशमान है। वह अजर-अमर तथा समस्त दुःखों से परे है। संत जैतराम ने अपने 'ग्रंथ साहिब' में ब्रह्म तत्त्व का विस्तृत निरूपण किया है। इन्होंने ब्रह्म को परिभाषित करने के लिए अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है। इन्होंने ब्रह्म के लिए 'कोली', 'कस्तूरी', 'कुम्हार', 'कारीगर', 'बनजारा', 'बाजीगर' आदि अनेक प्रतीकों का सटीक प्रयोग करके ब्रह्म निरूपण को सरल एवं हृदयग्राही बनाया है। यथा—

कोली : कोली काया नगर मंझारा ताना बुनि है अजब हमारा।<sup>3</sup>

कस्तूरी : गरीब कस्तूरी कुरबान जा कस्तूरी है राम।<sup>4</sup>

कारीगर : ब्रह्मांड इकीसो बानक बान्या।

धानि तू कारीगर कुरबान।<sup>5</sup>

बनजारा : कैसा करता बनकर आया।

बनजारा तिस नाम धराया।

दूल्हा : अवगत पुरुष दूल्हा कंत।

जाकी नहीं आदि और अंत।<sup>7</sup>

संत जैतराम का 'ब्रह्म' रूप-रेख-वर्ण से रहित 'सब लालन पति लाल' है। यथा—

ऐसा पुरुष अनादि है अदली आदि अलेख।

सफल व्यापी रम रहा जाके रूप न देख।

रूप बरन नहीं धारता अब रन नजरि निहाल।

जैतराम अनुराग पद सब लालन पति लाल।<sup>8</sup>

संत एवं भक्त कवि तुलसीदास ने ब्रह्म को 'बिनु पद चले, सुनै बिनु काना' माना है अर्थात् ब्रह्म बिना पैरों के चलता है और बिना कानों से ही सुनता है। संत जैतराम ने भी ब्रह्म के स्वरूप को अपनी बाणी में इस प्रकार व्यक्त किया है। यथा—

राग द्वेष मोक्ष नहीं बंधा। बिन पैरों चलंदा।

बिन कर देवै दान दयालं। बिन मुख रसना गावै ख्यालं।

बिन ही मुख नित राग सुनावै। बिन ही रसना सवादन गावै।

लेखन बिना लेख सब लेखैं। नैनों बिना सकल को पेखैं।<sup>9</sup>

इस तरह संत जैतराम के अनुसार ब्रह्म का न कोई रूप है, न कोई रेख है, वह वर्णन से परे है, जिसे कोई ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति ही जान सकता है। ब्रह्म शब्द स्वरूप है जिसका कोई मोल-तोल नहीं है। जिस प्रकार फूलों में सुगंध परिव्याप्त है, चमन में बहार परिव्याप्त होती है, लेकिन उसे देखा नहीं जा सकता। इसी तरह जैतराम का ब्रह्म भी घट-घट में परिव्याप्त है। इसको वही मनुष्य समझ सकता है, जिसने परम तत्त्व को पा लिया हो अन्यथा साधारण जीव की समझ से परे है अर्थात् साधारण जीव इसको नहीं समझ सकता है।

परमात्मा तो घट-घट में समाया हुआ है, लेकिन अज्ञानतावश हम उसे पहचान नहीं पाते हैं—

नैन निरंतर जंतर को कोई मरहमी जानैं।

रूप न रेख बरन नहीं बाना भौरं गुफा में और पिछानैं।<sup>10</sup>

ब्रह्म सबद का तोल न मोल है उजन बिहुना नहीं अकारा।

तास की खोज पिछान ले भाई जी गंधि पोहप ज्यूं करत विचारा।<sup>11</sup>

संत जैतराम की दृष्टि में निर्गुण ब्रह्म शब्द रूप है, जो संसार के कण-कण में परिव्याप्त है। इस अगोचर एवं सूक्ष्म रूप को कोई बिरला ही समझ सकता है। ब्रह्म को समझना साधारण मनुष्य के अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात है। इसे तो ज्ञान प्राप्त व्यक्ति ही अनुभव कर सकता है। यही विशेषताएँ अन्य संत कवियों ने ब्रह्म की बताई हैं। कबीर के ब्रह्म भी घट-घट में व्याप्त हैं। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना की है। इनका ब्रह्म निराकार, अवर्णनीय, निरभै, अलख निरंजन एवं सर्वशक्ति संपन्न है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। कबीर का मत है कि प्रभु को बाहर नहीं खोजा जा सकता है। वह न मंदिर में है, न मस्जिद में है, बल्कि घट-घट में व्याप्त है। यही विचार जैतराम के हैं। शब्द स्वरूपी ब्रह्म की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि जैतराम कहते हैं-

सबद सरूपी रूप है घट-घट बोले जोई।  
कोई इक बिरले ज्ञान ही बहुत थाके जाई।  
बोलनहार अलेख है बानी कहै, अनूप।  
जैत कैसे लखे नहीं छाया नहीं धूप।<sup>12</sup>

ब्रह्म की माया अद्भुत है। वह निराकार और आकार से परे है। वह स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों से अलग है। ब्रह्मलोक बिना नींव का नगर है तथा बिना मार्ग के ही वह गमन करता है। ब्रह्म की इन सभी स्थितियों का वर्णन संत जी ने इस रूप में व्यक्त किया है-

निराकार आकार न कोई, है आकार स्नेही।  
सूक्ष्म स्थूल दहाँ से न्यारा निरगुण पुरुष विदेही।  
है दिलदाना सब मन माना अमर अनादी दूलं  
अरस कुरस बिच निरष निहारो सेत स्याम जहाँ फूलं।  
बिना नीम का नगर अनुपम बिना भूमि विस्तारा।  
बिना गैलै गवन करत है जाने जाननहारा।<sup>13</sup>

जब हम संत जैतराम की वाणी का सिंहावलोकन करते हैं तो उसमें आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता की पवित्र धारा सर्वत्र प्रवाहित होती दिखाई देती है।

संक्षेप में जैतराम का ब्रह्म अंतर्यामी, घट-घट वासी तथा चींटी से लेकर हाथी तक सभी में समान रूप से परिव्याप्त है। वह दूर से देखने में दूर तथा निकट से देखने में निकट दिखाई देता है। वह जल-थल में लीन हैं। वह अगम व अगोचर है। उसने लोकों का निर्माण किया है लेकिन स्वयं अलख है, उसके आदि और अंत का किसी को पता नहीं है। वह सृष्टि का रचयिता है। संपूर्ण संसार उसी के आदेशानुसार चल रहा है। उसने जड़ और चेतन सभी को उत्पन्न किया है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का पोषक है।

**जीव :**

यहाँ जीव से अभिप्राय जीवात्मा से है। दर्शन के अनुसार जीवात्मा का शुद्ध रूप माया के कारण भ्रमित हो जाता है। जीवात्मा मूलतः नित्य, मुक्त, अजर-अमर, चैतन्य और शुद्ध है।

‘श्वेताश्वेतर उपनिषद्’ के अनुसार-

नैवं स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।

यदयच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते।<sup>14</sup>

अर्थात् जीवात्मा न औरत है, न पुरुष है और न ही वह नपुंसक है। वह जिस शरीर में प्रवेश करता है, उस समय उससे मिलकर वैसा ही बन जाता है। दर्शन के अनुसार ब्रह्म असीम, परंतु जीव ससीम है। दार्शनिकों ने जीव को पाँच तत्त्वों से बना बताया है। इन तत्त्वों का जब समन्वय होता है तभी शरीर की संरचना होती है। लेकिन अंत में ये पाँच तत्त्व विलीन होकर शरीर को भी अपने अंदर समाहित कर लेते हैं। अर्थात् मिट्टी का बना हुआ शरीर मिट्टी में ही मिल जाता है।

कबीर ने जीव को परमात्मा का अंश माना है। उनके अनुसार लोभ, मोह, अहंकार के कारण आत्मा परमात्मा के साथ तादात्म्य नहीं कर पाती। यही आवरण जीव को ब्रह्म का आभास नहीं होने देता। यह मोह रूपी आवरण हटते ही जीव को ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। यही मान्यता संत जैतराम की भी है। उनका विचार है कि जीव तो जगत् और माया में फँसा रहने के कारण ब्रह्म से नहीं मिल पाता, किंतु जो जीवात्मा माया के बंधनों को तोड़कर परमात्मा से मिलने के लिए स्वयं को तैयार कर लेती है तो उसके विरह में तड़पती है।

‘वृहदारण्य कोषनिनिषद्’ में कहा भी गया है कि ‘आत्मा जब माया से आबद्ध हो जाती है, तभी वह जीव कहलाती है।’<sup>15</sup>

अन्य संत कवियों की भाँति ही संत जी ने भी जीव के लिए ‘हंस’, ‘मीन’ कहा है। यथा-

हंस : च्यार मुकतु तुमरे अस्थाना।

अनंत कीट तहाँ हंस अमाना।<sup>16</sup>

मीन : तुम बिन ऐसे बिछड़ा डोलूँ जैसे जल बिन मीना।<sup>17</sup>

इसी प्रकार संत जैतराम ने परमात्मा को गुरु तथा जीव को चेला माना है। यथा-

आत्म परमात्म से मेला।

परमात्म है गुरु आत्म है चेला।<sup>18</sup>

जैतराम का कथन है कि जो भी इस पृथ्वी पर जन्मा है, वह जीव है। संत जी का मत है कि जीव कुसंगति में पड़कर विषय-विकारों में बुरी तरह फँस जाता है, जिसके कारण उसका मन इस संसार में भटकता रहता है।

घरिं लड़ैगी सास सखी री और ननद का भाई।

इतने गागरि भरती नांही तब लग घरि नहीं जाई।

यहाँ जीवात्मा कहती है कि हे सहेली, घर लौटने पर दुनियादारी रूपी मेरी सास मुझसे लड़ेगी तथा पति भी बुरा-भला कहेगा। संत जी का कहना है कि जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति होती है। जिस प्रकार लहरें समुद्र में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म में पुनः लीन हो जाता है। मानव-शरीर अत्यंत दुर्लभ है जो चौरासी लाख योनियों में भटकने के उपरांत प्राप्त होता है। संसार में मोह-माया में लिप्त जीव को जैतराम ने मूढ़, गँवार और अज्ञानी कहा है-

नर नारायण देही पाई, बिन जाने नर मूढ़ गँवाई।

रे मन मूढ़ गँवार अज्ञानी, भौसागर भ्रम्या क्यूँ प्राणी।<sup>19</sup>

समैं सधी अब तेरी भाई, नर नारायण देही पाई।  
चौरासी में फिरकर आया, उत्तम जनम मनुष्य का पाया।<sup>20</sup>

संत जी ने जीव का ब्रह्म से संबंध स्थापित करने के लिए उनके साधनों की ओर संकेत किया है। परम की प्राप्ति के लिए जीव को अहम् का त्याग करना होगा। जैतराम का विचार है कि जीव ईश्वर का ही अंश है किन्तु माया के वशीभूत होने के कारण यह अपने को भूल चुका है। माया का प्रभाव जीव पर होता है ईश्वर पर नहीं होता। साधारणतः जीव कर्मानुसार ही सुख-दुःख का भागी होता है, किन्तु उसकी डोर ब्रह्म के हाथों में होती है। जैतराम ने जीव को चेतावनी दी है कि जीव को अहंकार नहीं करना चाहिए क्योंकि इस शरीर को अंत में मिट्टी में मिल जाना है। ब्रह्म प्राप्ति के लिए कवि ने नाम-स्मरण पर बल दिया है। नाम स्मरण एवं गुरु कृपा से ही जीव सांसारिक बंधनों से छुटकारा पा सकता है।

**जगत :**

जगत को क्षणभंगुर कहा गया है। दार्शनिकों ने भी इसको क्षणभंगुर ही माना है। इसे 'प्रपंच' भी कहा गया है। 'प्रश्नोपनिषद्' में जगत् की अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

स प्रामणसृजत प्राणाच्छदां खं वायुर्त्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं  
मनो अन्नमना दीर्यं तपो मंत्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।<sup>21</sup>

सबसे पहले उसने प्राण की रचना की, प्राण के उपरांत उसने श्रद्धा को पैदा किया, उसके बाद क्रमशः पाँच महाभूत वायु, जल, तेज, पृथ्वी प्रकट हुए, फिर मन और इंद्रिय आदि की उत्पत्ति हुई। उसके बाद अन्न, अन्न से वीर्य, तप तथा अनेक मंत्र, कर्म, भिन्न-भिन्न लोक और उनके नाम की रचना की।

लगभग सभी संत कवियों ने जगत् को झूठा और नश्वर कहा। कबीर ने संसार को क्षणभंगुर माना है। इस संसार की वजह से ही जीव परमात्मा तक नहीं पहुँच पाता है। कबीर का कथन है कि 'संसार स्वप्न के सदृश है।' इसी तरह संत जैतराम ने भी जगत को नाशवान एवं क्षणिक माना है। संत जी ने जगत के लिए 'भवसागर' शब्द का प्रयोग किया है—

यो है भौसागर का कुँवा।

यामै पड़ा सो निहचै मुवा।<sup>22</sup>

इसी प्रकार संत जैतराम ने संसार को 'नदी के प्रवाह' और 'बादल की छाँह' के तुल्य अस्थिर बताया है—

नदी प्रवाह तुल्य संसारा, जाकूँ देख न भूल।

हे ज्यूँ का त्यूँ रहता नाही, ज्यूँ दो दिन के फूल।

ज्यूँ बादल की छाँह न, थीर ऐसा यो संसारा।

जैतराम यहाँ कोई न ठहरे, चले जाई औतार।<sup>23</sup>

जगत् को बनाने वाला ब्रह्म है। समस्त सृष्टि की उत्पत्ति एक ही बीज से हुई है। जैतराम ने संपूर्ण विश्व को नाशवान माना है। उनका मत है कि यह संसार माया के वशीभूत होकर भ्रमित

हो रहा है। वस्तुतः तन, मन, धन सब झूठा है। केवल प्रभु का नाम स्मरण ही बेड़ा पार लगा सकता है। 'गुरु अंग' प्रकरण में गुरु श्री गरीबदास जी का सत्पुरुष, साहिब आदि पुरुष तथा सूक्ष्म ब्रह्म के समशील बताया गया है। गुरु ही सांसारिक संकटों से छुटकारा दिला सकता है।

सतगुरु धारै आप सरीरा, मैहों सकल व्याध सब पीरा।

सतगुरु आवै भरम मिटावै, भवसागर से आनी छुटावै।

बिन सतगुरु जग में अँधियारा, सतगुरु सै होवे उजियारा।<sup>24</sup>

संत जी ने मनुष्य को सांसारिक बंधनों में न पड़ने की सलाह दी है। संत जी का कहना है कि —हे मनुष्यो! तुम व्यर्थ ही सांसारिक मोहमाया के बंधन में पड़कर संसार में भ्रमित हो रहे हो। यहाँ कोई किसी का नहीं, क्योंकि सभी प्राणी अपने-अपने मार्ग को जाएँगे। सभी का रास्ता अलग-अलग है। किसी भी प्राणी को दूसरे प्राणी का रास्ता पता नहीं है कि कौन किस रास्ते से जाएगा। सभी का रास्ता या मार्ग अलग-अलग है। इस प्रकार इन्होंने सांसारिक बंधनों को काटने के लिए ईश्वर सुमिरन पर विशेष बल दिया है।<sup>25</sup>

'संसारे ये जायते ते प्रियते' अर्थात् जगत में जो पैदा होता है, वह मरता अवश्य है। जगत की क्षणभंगुरता की ओर संकेत करता हुआ कवि कहता है—

इस मृतमंडल भ्रम अपारा, एक पलक नहीं थीरं।

जो आये सो रहन न पाये, बड़े जोधा चलि गए पीरं।<sup>26</sup>

इस जग का तो यो ही ब्योहारा, जामण मरन संताप।

छिन बिनसै छिन खड़ा होई भुगतै: पुन: पापं।<sup>27</sup>

जैतराम ने संपूर्ण सृष्टि को लीला का परिणाम माना है। ब्रह्म की विधि लीलाओं का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

तम क्यों आओ या जग माँही, काहे कारन खेल रचाहीं।

बानी वचन कहे क्यूँ स्वामी, हमकूँ भेद कहो निजधामी।

आकार रूप धर रचो बसारा, ऐसा जुग-जुग खेल हमारा।

करम कुकरम कहाँ सै आई, या सब लीला हम प्रगटाई।<sup>28</sup>

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जैतराम ने कबीर की भाँति ही संसार को मिथ्या माना है। जिस तरह कबीर शंकराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित हैं, उसी प्रकार जैतराम भी कबीर से प्रभावित हैं। जैतराम ने किसी युक्तिवादी दार्शनिक की भाँति तर्क नहीं दिए, बल्कि अपने सीधे-सीधे उपदेशों से सांसारिक मोहमाया का त्याग करके परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने की बात कही।

#### माया :

जैतराम ने माया का विवेचन बड़ी गंभीरता एवं दार्शनिकतापूर्वक किया है। कबीरदास तथा अन्य संत कवियों ने आत्मा व परमात्मा के मिलन में माया को सबसे बड़ी बाधा माना है। यह माया संसार में विविध रूपों में विद्यमान है। जैतराम का भी यही मत है कि माया अनेक प्रकार से लोगों को अपने वश में किए रहती है। इस माया से बचने के लिए मनुष्य को गुरु

की सहायता की आवश्यकता है। आगे बढ़ने से पहले माया को परिभाषित करना ज़रूरी होगा।

माया का सर्वप्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में मिलता है। ऋग्वेद के अनुसार इंद्र अपनी क्षमता एवं शक्ति से अनेक मायावी रूप धारण कर लेता है— 'इंद्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते'<sup>29</sup> उपनिषद् में ब्रह्म को रचनात्मक शक्ति माना गया है। ब्रह्म इसी शक्ति के द्वारा वेदों, ऋतुओं, पदार्थों आदि की सृष्टि करता है। डॉ० रामजीलाल सहायक के अनुसार, सांख्य दर्शन में अज्ञान या अविवेक के द्वारा बुद्धि या मन से अपना पार्थक्य नहीं समझता और उन्हें अपना ही अंग समझने लगता है। आत्मा और अनात्मा के विषय में भेद के ज्ञान का अभाव अर्थात् अविवेक ही समस्त दुःखों का मूल कारण माना गया है। सांख्य की प्रकृति अविद्या, अविवेक माया के पर्याय हैं।<sup>30</sup>

डॉ० सतीशचंद्र का मत है कि सबसे पहले शास्त्रीय ढंग से माया का विवेचन शंकराचार्य ने किया था। मुस्लिम दर्शन में भी माया के स्थान पर शैतान का उल्लेख मिलता है।<sup>31</sup>

संत जैतराम ने माया के विविध रूपों का सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने 'माया और देवताओं का संवाद' तथा 'माया के तीन रूप' आदि प्रकरणों के अंतर्गत माया का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

संत जी ने 'माया' के लिए 'नागिन', 'नटनी', 'व्याभिचारिणी', 'आदि पुरुष की नारी', 'आदि कुँवारी', 'अबला दासी', 'अफल अखंडी' अविगत की जनहारी' आदि प्रतीकों का प्रयोग किया है। यथा—

जैतराम ने माया को ब्रह्म विष्णु के समान बताते हुए कहा है कि—

ब्रह्म विसनु वुनो मम बानी। मैं अष्टंगी हूँ पटरानी।

पाँच तत तिरंगुण सब मांही। काम की डोरी बँधी गल मांही।

तीन गुण मेरे तम मांही। पाँचों तम मांही स्माहीं।<sup>32</sup>

यही नहीं कवि ने माया को ब्रह्म की नारी के रूप में भी चित्रित किया है। यथा—

मैं हूँ नारी बिना शरीर। मोको कोई जाने बलबीरा।

मेरा भेद अभेद कहावै। भेद ऊपर बल कैसे पावै।<sup>33</sup>

नागिन के रूप में भी माया को दिखाया गया है। यथा—

माया नागिन उत्तरी खेलन फाग बसंत।<sup>34</sup>

इस तरह जैतराम ने माया को ब्रह्म की नारी के रूप में माना है जिससे सृष्टि का विकास होता है। माया अनिर्वचनीय है। इसके रहस्य को जानना अत्यंत दुर्लभ कार्य है। माया की व्यापकता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह सभी जगह विद्यमान है। वह वृक्ष, फल, फूल आदि सभी में व्याप्त है। वस्तुतः वह संपूर्ण संसार में फैली हुई है। इससे संसार का कोई भी व्यक्ति नहीं बच सकता। माया स्वयं अपना परिचय देते हुई कहती है—

निराकार आकार में मैं व्यापक सब ठौर।

जैसे तरवर गह बस्या पान फूल वन मोर।

मैं व्यापक सब जगत में जगत हमारे माँहि।

जैतराम माया कहै मोह बिन कहाँ रहाँहि।<sup>35</sup>

**मोक्ष :**

मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ माने गए हैं— धर्म, अर्थ, मोक्ष, काम। इन चारों में 'मोक्ष'

ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष से अभिप्राय है— जन्म-मरण से छुटकारा पाना। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि जीवनरूपी चक्र से मुक्ति पाना। मोक्ष को 'परमगति', निर्वाण, मुक्ति आदि भी कहा जाता है। 'कठोपनिषद्' के अनुसार, 'यदार सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्योह ग्रंथ मः। अथ मृत्योर् मृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम।'<sup>36</sup> अर्थात् जब अहंता, ममता रूप समस्त अज्ञान ग्रंथियों, संशय आदि नष्ट हो जाते हैं और अभेद भाव से साधक परिपूर्ण हो जाता है, तभी वह अमर होता है।

भारतीय दर्शन व धर्म में मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन या उपाय बताए गए हैं— योगमार्ग, ज्ञानमार्ग व भक्तिमार्ग। इन तीनों में भक्तिमार्ग सर्वोपरि है। संत जैतराम ने भी मोक्ष-प्राप्ति के लिए भक्ति को ही प्रमुखता दी है।

संत जी ने सिद्ध किया है कि मोक्ष की प्राप्ति गुरु कृपा एवं नामस्मरण से ही हो सकती है। इसके लिए जैतराम ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इस प्रसंग को समझाने के लिए प्रह्लाद, हाथी, द्रौपदी, लंका-प्रसंग आदि प्रसंगों को प्रस्तुत किया है। कवि ने चेतावनी-भरे स्वर में मानव को दुनिया के कष्टों से अवगत कराया है तथा मोक्ष प्राप्ति के लिए श्रीराम का नाम लेने की प्रेरणा दी है। यथा—

यहाँ नहीं रहना चलना भाई। घूमे कैसा भेष बनाई।

बादल कैसी छांह पिरानी। राम नाम सुमरो अभिमानी।<sup>37</sup>

जैतराम ने मोक्ष-प्राप्ति में गुरु की भूमिका को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। गुरु को 'व्याध-पीरा की औषध', 'भ्रम का भंजक', 'भवसागर तारक', 'ज्ञानलोक का प्रदाता' आदि विशेषणों से विभूषित करते हुए गुरु को ही मोक्ष-मार्ग का दाता बताया है। यथा—

सतगुर धारै आप सरीरा। मैटें सकल व्याध सब पीरा।

सतगुर आवै भस्म मिटावै। भवसागर सै आनि छुटावै।

सतगुर जग में अधियारा। सतगुर सैं होवे उजियारा।<sup>38</sup>

जैतराम के दार्शनिक विचारों में ज्ञान की उच्च वस्तु और निगूढ़ता विद्यमान है। ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया पर उन्होंने विस्तार से चर्चा की है। यह चर्चा उनके गंभीर दार्शनिक होने का प्रमाण देती है। उन्होंने सत्य को उजागर करने तथा कण-कण में उस ब्रह्म को खोजने की प्रेरणा दी है। उनके दार्शनिक विचार अत्यंत सहज और स्वाभाविक हैं क्योंकि ये उनकी अंतः प्रेरणा से फूटी मौलिक अनुभूतियाँ हैं। इनके दृष्टिकोण में रहस्यवादिता भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इनके दार्शनिक विचार रूपकों और प्रतीकों का संबल पाकर अत्यंत सशक्त बन पड़े हैं। इनका दार्शनिक चिंतन गंभीर और प्रभावी है। इन्होंने अपनी वाणी में दार्शनिक तत्त्वों का सहज, सरल भाषा में रूपायन किया है।

### संदर्भ

1. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 63
2. महादेवी वर्मा, दीपशिखा, पृ० 21
3. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 21
4. वही, पृ० 5
5. वही, पृ० 192



6. वही, पृ० 210
7. जैतराम ग्रंथ साहिब, पृ० 19
8. वही, पृ० 196
9. वही, पृ० 196
10. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 165
11. वही, पृ० 227
12. वही, पृ० 233
13. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 368
14. श्वेताश्वेतर उपनिषद्, 5/10
15. वृहदारण्य कोषनिषद्, 2/3/6
16. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 492
17. वही, पृ० 486
18. वही, पृ० 471
19. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 337
20. वही, पृ० 317
21. प्रश्नोपनिषद्, 2/1/1
22. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 367
23. वही, पृ० 317
24. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 24
25. वही, पृ० 51
26. वही, पृ० 369
27. वही, पृ० 117
28. वही, पृ० 199
29. ऋग्वेद, 6/47/18
30. कबीर दर्शन, पृ० 187
31. भारतीय दर्शन, पृ० 31
32. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 202
33. वही, पृ० 79
34. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 450
35. वही, पृ० 202
36. कठोपनिषद् 2/3/14
37. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 317
38. जैतराम, ग्रंथ साहिब, पृ० 253

□ ग्रा० एवं पो० फरमाना  
तह० महम 124520 ( रोहतक )  
हरियाणा

## काव्यशैली का अनिवार्य तत्त्व-शब्द-चयन

डॉ० निकेता

वरिष्ठ प्रवक्ता, हिंदी विभाग

सनातन धर्म महाविद्यालय, मुज़फ़्फ़रनगर (उ०प्र०)

भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा है। रचना का शैलीत्व रचनाकार के भाषा-चयन में ही है। रचनाकार के समक्ष विपुल शब्द-भंडार होता है, लेकिन वह प्रसंगानुकूल शब्द का चयन कर अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाता है। भाषा सामाजिक उत्पाद होती है, लेकिन कृतिकार समाज में उपलब्ध भाषा का इस ढंग से - 'चयन' करता है कि वह चयनित भाषा ही सौंदर्य की सृष्टि करती है। यह सौंदर्य-सृष्टि शब्द-साधना से ही संभव है। 'एक शब्द भी अपनी समस्त संभावनाओं और अपने समस्त प्रयोगों के साथ अगर समझ लिया जाए और ठीक-ठीक प्रयोग में ला दिया जाए तो वह स्वर्गलोक में मनचाही पूरी कर देता है, यह केवल अर्थवाद नहीं है। शब्द को पूरी तरह जानना इतना आसान नहीं है। शब्द-साधना का अर्थ है सृष्टि की प्रक्रिया का साक्षात्कार।' <sup>1</sup> महाभाष्यकार भी शब्द-साधक की प्रशंसा करते हैं। उनकी मान्यता है कि पदों (शब्दों) का समुचित प्रयोग करनेवाले व्यक्ति को इस लोक तथा परलोक में विजय मिलती है-

यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलों विशेषे  
शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।  
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र  
वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः। <sup>2</sup>

वर्ण्य-विषय के अनुकूल शब्दों एवं वाक्यों के प्रयोग को शैलीवैज्ञानिक शब्दावली में 'चयन' कहते हैं। <sup>3</sup> संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने भी 'चयन' के महत्त्व को स्वीकारा है। अनुकूल शब्दों (पदों) को रखने और हटाने में निपुण कवि ही सरस्वती को सिद्ध करता है-

आवापोद्धरणे तावद्वावद्दोलायते मनः।  
पदानां स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती। <sup>4</sup>

भामह ने भी कवि-कर्म को माली-कर्म के तुल्य बताते हुए काव्य में शब्द-चयन की अनिवार्यता को स्वीकारा है। कौनसा फूल सुगन्धित और ग्राह्य है, कौनसा भद्दा होने के कारण त्याज्य है और किस फूल का उचित स्थान कहाँ है, इसको भली-भाँति पहचानकर ही माली माला का निर्माण करता है। उसी प्रकार कवि को काव्य में सावधान बुद्धि से शब्दों का चयन कर प्रयोग करना चाहिए-

एतद् ग्राह्यं सुरभिकुसुमं ग्राम्यमेतन्निधेयम्

धन्ते शोभां विरचितमिदं स्थानमस्यैतदस्य।  
मालाकारो रचयति यथा साधु विज्ञाय मालां  
योज्यं काव्येष्ववहितधिया तद्देवाभिधानम्।<sup>5</sup>

आनन्दवर्धन ने भी अपनी निम्न पंक्तियों में सफल कवि बनने के लिए शब्द-चयन की ओर संकेत किया है—

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन्  
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः।<sup>6</sup>

अर्थात् अर्थ और उसकी अभिव्यक्ति में समर्थ किसी विशेष शब्द— इन दोनों को ही भली-भाँति प्रत्यभिज्ञा (पहचान) करने का यत्न महाकवि को करना चाहिए। शब्द-चयन के विषय में आचार्य कुंतक की प्रभावपूर्ण उक्ति इस प्रकार है—

शब्दो विवक्षितार्थकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।  
अर्थः सहृदयाह्लादकारि-स्वस्पन्द-सुन्दरः।<sup>7</sup>

अर्थात् अनेक पर्यायवाची शब्दों के रहते हुए भी जो शब्द विवक्षित अर्थ का वाचक है, वही (यथार्थ) शब्द कहलाता है (और) उस शब्द से प्राप्त होने वाला अर्थ सहृदय के लिए आह्लादक होता है, क्योंकि उसका स्पंदन सुंदर होता है।

‘कवि-सम्राट्’ अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’ ने भी सुंदर और उपयुक्त शब्द-योजना को ही कविता की विशेष विभूति माना है, जिसके लिए कवि को अधिक सावधान रहना पड़ता है, क्योंकि कविता को वास्तविक कविता वही बनाती है। एक उपयुक्त शब्द कविता को सजीव कर देता है और अनुपयुक्त शब्द मर्याक का कलंक बन जाता है।<sup>8</sup>

‘तारसप्तक’ के द्वितीय संस्करण में अज्ञेय का वक्तव्य है—काव्य सबसे पहले शब्द है और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है। सारे कवि धर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं। शब्द का ज्ञान, शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड़ ही कृतिकार को कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय हो जाते हैं।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी भावानुरूप शब्दों के महत्त्व को समझते हुए लिखते हैं कि ‘भावों के अनुसार शब्दों का प्रयोग पहली चीज है। ताजमहल बनाने-बनवाने में जो महाध्यवसाय रहा है और जो करोड़ों रुपए उस पर व्यय हुए हैं, सब व्यर्थ हो जाते, यदि कलाकार विषयानुरूप उपादान न चुनता! उस महाशोक की व्यंजना में एकदम श्तेव रंग का पत्थर कितना सहायक है, क्या कहा जाए। उस कला-केंद्र में पहुँचकर भी मन में केलि-कला का स्पर्श तक नहीं होता, मन में एक विचित्र प्रकार का निर्वेद जाग्रत होता है। सफेद रंग सादगी का प्रतीक है। यदि रंग-बिरंगे तड़क-भड़कदार कीमती पत्थरों से वह इमारत बनती, तो कैसा रहता? क्या उस भाव की व्यंजना होती, जिसमें डूबकर उस इमारत का निर्माण हुआ है।

इसके विपरीत, किसी विवाह-मण्डप की रचना यदि एकदम श्वेतिमा में डुबो दी जाए, रंग-बिरंगापन, हरियाली और गुलाबीपन कहीं न हो, तो कैसा लगेगा?

इसी तरह भाषा में भावानुरूप शब्दों का महत्त्व है। कोमल और मधुर वर्णन में शब्द भी कोमल-मधुर देने चाहिए, परुष वर्णन में परुष और साधारण में साधारण।<sup>9</sup>

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने शब्द-चयन को वाणी का तप कहा है। वे लिखते हैं- 'काव्य-स्रष्टा कवि अपनी मानसी सृष्टि को, अपने मानस-बिंब को और उस बिंबगर्भित भाव को उपयुक्त वाणी प्रदान करना चाहता है। अनेक पर्यायवाची शब्दों में से उसे अपने भाव को उपयुक्त अभिव्यक्ति के लिए परमोपयुक्त शब्द चुनना पड़ता है। वह शब्द-चयन ही वाणी का तप है।' <sup>10</sup>

'शब्दार्थ-विचार कोश' में आचार्य रामचंद्र वर्मा ने लिखा है- 'जिस प्रकार अच्छे चित्रकार के लिए यह जानना आवश्यक है कि कहाँ कौनसा रंग लगना चाहिए और कहाँ कैसी रेखा अंकित होनी चाहिए अथवा अच्छे संगीतज्ञ के लिए यह जानना आवश्यक है कि कहाँ तीव्र स्वर लगेगा और कहाँ कोमल, कहाँ गिटकिरी लेनी चाहिए और कहाँ फंदा देना चाहिए अथवा किसी स्वर की कौन-कौन सी श्रुतियाँ हैं और उनका उच्चारण किस प्रकार होता है, उसी प्रकार अच्छे साहित्यकार के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि किसी शब्द के कितने अर्थ होते हैं और उन अर्थों में कौन-कौन सी मुख्य विवक्षाएँ हैं और किस प्रसंग में किस विवक्षा से युक्त कौन-सा शब्द प्रयुक्त होना चाहिए।' <sup>11</sup>

'चयन' का शाब्दिक अर्थ है, 'चुनना' काव्यशैली के प्रसंग में 'चयन' से अभिप्राय है भावानुकूल ध्वनि, शब्द, पद वाक्य आदि का चयन। यथा-कमल और सरोज दोनों शब्द समानार्थी हैं, किंतु एक शुक्ल पक्षीय है (सरोवर में उत्पन्न होने वाला कमल) तो दूसरा कृष्णपक्षीय (पंक अर्थात् कीचड़ में उत्पन्न कमल)। भावानुकूल कवि दोनों में से एक शब्द का चयन कर लेता है। सुमित्रानंदन पंत ने निम्नलिखित पंक्तियों में भावानुकूल दोनों शब्दों को यथास्थान रखा है-

पशुता का पंकज बना दिया  
तुमने मानवता का सरोज।

मानसकार तुलसीदास जी ने लिखा है-

उदित गिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।  
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग। <sup>12</sup>

उपर्युक्त पंक्तियों में 'संत' शब्द के साथ 'सरोज' शब्द का चयन कर तुलसी ने संतों की पवित्रता को बनाए रखा है।

अर्थ ध्वनि से ध्वनित है। अतः ध्वनि का श्रोता पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि 'शब्द स्वयं में भी फूलों की भाँति कोमल और शूलों की भाँति चुभीले होते हैं, वे श्रोता या पाठक को हँसाते भी हैं, और रुलाते भी हैं' <sup>13</sup> इसीलिए कृतिकार भयंकर या कठोर दृश्य को प्रस्तुत करने हेतु कठोर ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग करता है तथा कोमल दृश्य का चित्रण करने के लिए कोमल ध्वनि का। महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण ध्वनियों की अपेक्षा कठोर होती हैं। 'निष्ठुर परिर्वतन' को सहस्र फन वाले वासुकि के समान बताते हुए कवि लिखता है-

शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर  
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर! <sup>14</sup>

इस उद्धरण का एक-एक वर्ण भयानक भावना की प्रतीति करा रहा है। यहाँ यदि इन वर्णों के स्थान पर दूसरे वर्णों का प्रयोग कवि करता है तो भावना का सौंदर्य नष्ट हो जाता।

पुष्प, फूल, सुमन, कुसुम, प्रसून पर्यायवाची शब्द हैं। कवि अपने भावों की अभीष्ट अभिव्यक्ति हेतु उनमें से उस शब्द का चयन करता है, जो उसके अभीष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में सफल है। 'बिहारी सतसई' का एक दोहा देखिए—

लाग्यो सुमनु हवै है सफलु आतप-रोसु निवारि  
बारी, बारी आपनी सींचि सुहृदता-बारि।<sup>15</sup>

यदि कवि उक्त दोहे में 'सुमन' शब्द के स्थान पर पुष्प या फूल शब्द को प्रयुक्त करता तो बात न बनती। यद्यपि छंद की दृष्टि से मात्राओं में कोई अंतर न आता। लेकिन कवि को तो प्रसंगानुकूल ऐसे शब्द की आवश्यकता थी, जो 'मन' तथा 'पुष्प' दोनों अर्थ को प्रकट कर सके। तभी तो कवि ने विभिन्न शब्दों में एक 'सुमन' शब्द का ही चयन यहाँ किया है।

'श्रद्धा' के शरीर की कांति एवं कोमलता का चित्रण करने के लिए कवि जयशंकर प्रसाद ने 'फूल' उपमान को ही चुना है—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग  
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग।<sup>16</sup>

अतः शब्दों के जिस अर्थ की प्रतीति कवि कराना चाहता है, उसमें वह पूर्ण रूपेण सफल रहा है।

भावों की अभिव्यक्ति हेतु श्रेष्ठ कवि अपनी शब्द-योजना में जागरूक रहता है। उसके लिए शब्द के प्रत्येक पर्यायवाची का अर्थ पृथक्-पृथक् होता है। बालक का पालन-पोषण करने वाली माँ, माता, अम्मा तो हो सकती है, लेकिन उसका शरीर निर्माण करनेवाली जननी ही कहलाएगी। प्रसव-पीड़ा जननी ही झेलती है। 'कामायनी' के ईर्ष्या सर्ग में जयशंकर प्रसाद ने लिखा है—

दुर्भर थी गर्भ- मधुर पीड़ा झेलती जिसे जननी सलील।<sup>17</sup>

सूरदास ने भी लिखा है—

सूर स्याम दस मास गर्भ धरि, जनननि नहिं तुम जाए?<sup>18</sup>

'साकेत' महाकाव्य के बारहवें सर्ग में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी कौशल्या के मुख से राम के संदर्भ में 'कोख' व 'जननी' शब्द प्रयुक्त किए हैं, तो वही लक्ष्मण के संदर्भ में 'गोद' व 'माँ' शब्दों का प्रयोग कर कवि-निपुणता को सिद्ध कर दिया है—

आया फिर तू राम, कोख में मानो मेरी,  
लक्ष्मण, मेरी गोद रहे शिशु शय्या तेरी।'  
जन्म-जन्म में यही कोख जननी, मैं पाऊँ।  
माँ, मैं लक्ष्मण इसी गोद में पलता आऊँ।<sup>19</sup>

उसके आशय की थाह मिलेगी किसको?

जनकर जननी ही जान न पाई जिसको।<sup>20</sup>

प्रातःकालीन सूर्य की लालिमा कोमलता से युक्त होती है लेकिन दोपहर का सूर्य भयंकर तपने-तपाने वाला होता है। अतः प्रातःकाल के सूर्य के लिए 'अरुण' और दोपहर के प्रचण्ड, ज्वलनशील सूर्य के लिए 'मार्तंड' शब्द ही उचित है। जयशंकर प्रसाद के

शब्द-अभिधान में भी उषाकाल का सूर्य 'अरुण' ही है, मार्तण्ड नहीं—

- (क) देखा तो सुंदर प्राची में, अरुणोदय का रस-रंग हुआ।<sup>21</sup>  
(ख) और उस मुख पर वह मुस्क्यान, रक्त किसलय पर ले विश्राम।  
अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम।<sup>22</sup>  
(ग) प्राची के अरुण मुकुर में सुंदर प्रतिबिंब तुम्हारा,  
उस अलस उषा में देखूँ अपनी आँखों का तारा।<sup>23</sup>

कवि सूरदास ने भी लिखा है—

'मुख बिकसत सोभा इक आवति, मन राजीव-प्रकास  
'सूर' अरुण आगमन देखि कै, प्रफुलित भए हुलास।<sup>24</sup>

'साकेत' महाकाव्य के द्वादश सर्ग में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है— 'जीवन का जय-केतु अरुण हो पूर्व दिशा में।'<sup>25</sup>

असहनीय तेज वाले सूर्य के लिए भवभूति ने उत्तररामचरित में 'मार्तण्ड' शब्द का ही प्रयोग किया है—

त्वष्ट्यन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः।  
पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः।<sup>26</sup>

श्रीमम्मटाचार्य के ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में 'मार्तण्ड' शब्द का प्रयोग मिलता है—

अयं मार्तण्डः किं स खलु तुरगैः सप्तभिरितः<sup>27</sup>

भगवान शिव के नाना नाम हैं, लेकिन कवि यदि शिवजी के कल्याणकारी रूप का चित्रण करता है तो वह 'शिव' या 'शंकर' शब्द का प्रयोग करेगा, यदि वह शिवाजी के विनाशकारी रूप का चित्रण करता है तो हर, कामरिपु, कामारि, त्रिपुरारि, पुरारि रुद्र शब्दों का प्रयोग करेगा। संहारकर्ता के लिए तुलसी ने शिव के नामों में से 'रुद्र' नाम का चयन किया है, क्योंकि भयंकर रूप धारण करने पर ही संहार किया जा सकता है। शिव या शंकर तो कल्याणकारी हैं। 'वेदों में रुद्र के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे—रुद्र, शिव, भव, शर्व, शंकर, पशुपति, प्रथम भिषक् आदि। विभिन्न गुणों के आधार पर ये विभिन्न नाम दिए गए हैं। संहार करने के आधार पर या रुलाने के आधार पर रुद्र (रुलाने वाला) नाम है। रुद्र ऋततत्त्व है। यह विश्वव्यापी नियमन शक्ति है। संसार की समस्त गतिविधियाँ इनके नियंत्रण में हैं। ये नियम इतने कड़े हैं कि कोई इनका उल्लंघन नहीं कर सकता है। इसीलिए उपनिषदों में कहा गया है कि उसके भय से सूर्य, चंद्र आदि नियम से चलते हैं। वायु बहती है। मृत्यु उसके सेवक के तुल्य है। कोई अपना नियम नहीं तोड़ सकता है।

भीषाऽस्माद् वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः  
भीषाऽस्माद्गिन्शचेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पंचमः

(तैत्ति० उ० 8.1)

ऋत तत्त्व कठोर दंड देते हैं, रुलाते हैं, अतः रुद्र हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में रुद्र का वर्णन है। यतुर्वेद के रुद्राध्याय (16 वें अध्याय) में रुद्र के विराट् रूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। बृहदारण्यक

उपनिषद् में कहा गया है कि रुद्र 11 हैं-10 इंद्रियाँ (5 ज्ञानेन्द्रियाँ और 5 कर्मेन्द्रियाँ) और मन। ये जब शरीर छोड़कर बाहर निकलते हैं तो मृतक के संबंधियों को रुलाते हैं, अतः इन्हें रुद्र कहा जाता है-

तद् यद् रोदयन्ति, तस्माद् रुद्रा इति। बृहदा० उप० 3.9.4<sup>28</sup>

(क) रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।<sup>29</sup>

(ख) उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब देव-शक्तियाँ क्रोध-भरी,  
रुद्र-नयन खुल गया अचानक-व्याकुल काँप रही नगरी,  
अतिचारी था स्वयं प्रजापति, देव अभी शिव बने रहें!  
नहीं, इसी से चढ़ी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी।<sup>30</sup>

(ग) रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना।<sup>31</sup>

अशुभ वेष (भयंकर रूप) तो 'पुरारि' का ही हो सकता है। शिव तो सुख देनेवाले ही होंगे-

जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृत सिव सुखद  
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।<sup>32</sup>

'पिनाक' (धनुष) का स्वामी ही पिनाकी कहलाएगा-

दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज  
कमठ सेष संकुचित, सँकित पिनाकी।<sup>33</sup>

परस्पर विरोधी गुणों से युक्त शिव का वर्णन कालिदास ने निम्न श्लोक में किया है-

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचर।

स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति यथार्थ्यविदः पिनाकिनः।<sup>34</sup>

पर्याय शब्दों में से किसी एक का चयन करते समय ध्यान रहे कि शब्द विशेष का अर्थ प्रकरण के विरुद्ध न हो। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी 'रस-मीमांसा' में लिखा है-'गिरिधर, मुरारि, त्रिपुरारि, दीनबुंधु, चक्रपाणि, मुरलीधर, सव्यसाची इत्यादि... शब्दों को चुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे प्रकरण विरुद्ध या अवसर के प्रतिकूल न हों। जैसे कोई मनुष्य किसी दुर्धर्ष अत्याचारी के हाथ से छुटकारा पाना चाहता हो तो उसके लिए 'हे गोपिकारमण! हे वृंदावनबिहारी! आदि कहकर कृष्ण को पुकारने की अपेक्षा 'हे मुरारि! हे कंसनिकंदन! आदि संबोधनों से पुकारना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि श्रीकृष्ण के द्वारा कंस आदि दुष्टों का मारा जाना देखकर उसे उनसे रक्षा की आशा होती है, न कि वृंदावन में गोपियों के साथ विहार करना देखकर। इसी तरह किसी आपत्ति से उद्धार पाने के लिए 'कृष्ण' को 'मुरलीधर' कहकर पुकारने की अपेक्षा 'गिरिधर' कहना अधिक अर्थसंगत है।'<sup>35</sup> अधर पर मुरली धारण करनेवाले श्रीकृष्ण 'मुरलीधर' कहलाये और मन को मोहित करने के कारण 'मनमोहन'-

सुनि-सुनि दीनगिरा मुरलीधर, चितयौ मृदु मुसुकाइ।  
गुन गंभीर गुपाल मुरलि प्रिय, लीन्ही तबहिं उठाइ।।  
धरि कै अधर बेनु मोहन, कियौ मधुर धुनि गान।  
मोह सकल जीवन जल-थल के, सुनि वारे तन प्रान।<sup>36</sup>

‘सूरदास’ स्वामी मनमोहन, मूरति की बलिहारी।<sup>37</sup>

जिसे देखकर जी लुभा जाय, जो मन को मोहित करनेवाला हो, वह तो मोहन ही हो सकता है, उसे एक पल के लिए भी नहीं भुलाया जा सकता—

‘सूरदास’ पल मोहिं न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत।<sup>38</sup>

मोहन-मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोड़।

बसतु सुचित अन्तर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होड़।<sup>39</sup>

पूछैं क्यों रूखी परति, सगिबगि गई सनेह।

मनमोहन-छबि पर कटी, कहै कँट्यौनी देह।<sup>40</sup>

कीनैं हूँ कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।

भो मन मोहन-रूपु मिली पानी में कौ लौनु।<sup>41</sup>

लखि मोहनु जौ मनु रहै, तौ मन राखों मानु।<sup>42</sup>

निम्नांकित दोहे में ‘स्याम’ शब्द जिस अर्थ को देने में समर्थ है, मोहन, मुरारि, मुरलीधर, त्रिपुरारि, कंसनिकंदन आदि शब्द नहीं—

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोड़

जा तन की झाँई परैं स्यामु हरित-दुति होड़।<sup>43</sup>

यहाँ ‘स्याम’ शब्द ही कृष्ण, स्याम वर्ण तथा कल्मष, दुःख आदि की उचित अभिव्यंजना कर रहा है।

भक्त जब अपने उद्धार के लिए तथा दुष्टों के संहार के लिए भगवान को पुकारेगा तो वह दीनबंधु, मुरारि, कंसनिकंदन, असुर निकंदन, चक्रपाणि की ही पुकार करेगा—

(क) कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिवी, मुरारि।

बीधे मोसों आइ कै गीधे गीधहिं तारि।<sup>44</sup>

(ख) अब कैं नाथ, मोहि उधारि।

मगर हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि।<sup>45</sup>

(ग) सूरदास प्रभु कंस-निकंदन, भक्त हेत अवतार धर्यौ।<sup>46</sup>

(घ) सूरदास प्रभु असुर-निकंदन, दुष्टनि के उर गंज।<sup>47</sup>

जब इंद्र के सेवक जलधर के बरसने का वर्णन होगा तो कृष्ण गिरिधर ही बनेंगे—

(क) लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल।

गिरिधारी राखे सबै गो, गोपी, गोपाल।<sup>48</sup>

(ख) प्रलय-करन बरषन लगे जुरि जलधर इकसाथ।

सुरपति-गरबु हर्यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ।<sup>49</sup>

(ग) सूरदास गिरिधर करुनामय, इंद्रु थापि पठाए।<sup>50</sup>

(घ) घुमरि-घुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत आँधियारे।

बूड़त ब्रजहिं ‘सूर’ को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे।<sup>51</sup>

(ङ) सखि कोउ नई बात सुनि आई



यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सो, मदन मिलिक करि पाई।

‘सूरदास’ गिरिधर बिनु गोकुल, ये करिहैं ठकुराई।<sup>52</sup>

निम्नांकित दोहे में कवि या भक्त अपने मन को कृष्ण से संबंधित क्रिया करने के लिए कहता है। इसी संदर्भ में कृष्ण के नामों का कितना सटीक चयन कवि ने किया है देखिए-

मनमोहन सौं मौहु करि, तूँ घनस्यामु निहारि।

कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि।<sup>53</sup>

मोह करने के लिए मनमोहन, शोभा देखने हेतु घनस्यामु, बिहार करने के लिए कुंजबिहारी, शरणागत की रक्षा करने के कारण गिरधारी को ही उर में धारण किया जा सकता है।

निम्नांकित दोहे में ‘हलधर के वीर’ एक साथ जिस-जिस अर्थ की प्रस्तुति कर रहा है, उन अर्थों की प्रतीति कृष्ण, गोपाल, मुरारि, मोहन आदि शब्द नहीं कर सकते हैं। हलधर वीर-बलराम के भाई अर्थात् कृष्ण, हलधर (शेषनाग) के वीर- (शेषनाग के अवतार) के भाई, हलधर (बैल) के वीर-बैल के भाई।

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।

को घटि, ए बृषभानुजा, वे हलधर के बीर।<sup>54</sup>

गोकुलपति ही सूरदास की इंद्रियों रूपी गाय को अपने गोधन में मिला सकते हैं। चक्रपाणि, त्रिपुरारि, मुरारि नहीं। सूरदास कहते हैं-

माधौ जू, यह मेरी इक गाई।

हित करि मिलै लेहुँ गोकुलपति, अपने गोधन माहँ।<sup>55</sup>

उपर्युक्त शब्दों के विवेचन से यह पंक्ति एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्ग लोके कामधुग्भवित’ अक्षरशः सत्य सिद्ध हो जाती है। अतः कहा जा सकता है कि संदर्भ के अनुरूप श्रोता के चित्त में उचित रागकल्पनात्मक बिंब उद्बुद्ध करने की क्षमता चयन से ही सम्भव है।<sup>56</sup> यह चयन का ही प्रभाव है। विवक्षित अर्थ हेतु विशिष्ट और उपयुक्त शब्द के चयन में ही कवि की प्रतिभा निहित होती है। साहित्यगत सौंदर्य के लिए म्रष्टा साहित्यकार को अपनी रचना में भाषा-वैशिष्ट्य हेतु शब्द-चयन में निपुणता लानी पड़ती है। तभी लोक, व्यवहार तथा मानवीय भावों को प्रभावशाली बनाया जा सकता है। तभी रचना में सौंदर्य अर्थात् नूतनता आती है।

### संदर्भ

1. देश, धर्म और साहित्य, विद्यानिवास मिश्र, पृ० 54
2. महाभाष्य
3. शैली विज्ञान और भारतीय काव्यशास्त्र, पृ० 117
4. काव्य मीमांसा, राजशेखर, पंचमोऽध्याय, हिंदी काव्यमीमांसा, डा० गंगासागर राय, पृ० 51
5. काव्यालंकार, भामह, 1/59
6. ध्वन्यालोक, आनंदवर्धन, 1/8
7. वक्रोक्तिजीवितम्, आचार्य कुंतक, 1/9
8. वैदेही वनवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, वक्तव्य, पृ० 7

9. अच्छी हिंदी आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पृ० 8-9
10. तुलसी काव्य-तिन, डा० अंबाप्रसाद 'सुमन' पृ० 156
11. शब्दार्थ-विचारकोश, आचार्य रामचंद्र वर्मा, पृ० 75
12. श्रीरामचरितमानस, तुलसीदास, टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार
13. भाषा विज्ञान : सिद्धांत और प्रयोग, डॉ० अंबाप्रसाद 'सुमन', पृ० 380
14. रश्मिबंध, सुमित्रानंदन पंत, पृ० 52
15. बिहारी रत्नाकर, श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, दोहा 19, पृ० 33
16. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धासर्ग, पृ० 14
17. वही, ईर्ष्या सर्ग, पृ० 50
18. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद -344 , पृ० 231
19. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ० 329
20. वही, अष्टम सर्ग, पृ० 154
21. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, कामसर्ग पृ० 25
22. वही, श्रद्धा सर्ग, पृ० 15
23. आँसू, जयशंकर प्रसाद
24. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद 406
25. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, द्वादश सर्ग, पृ० 300
26. उत्तररामचरितम्, भवभूति, 6/3
27. काव्यप्रकाश, मम्मटाचार्य, 10/148
28. वैदिक देवों का आध्यात्मिक और वैज्ञानिक स्वरूप, पद्मश्री डा० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० 78
29. श्री रामचरितमानस, तुलसी उत्तरकांड-92/6 टीकाकार हनुमानप्रसाद पोद्दार।
30. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, स्वप्न सर्ग, पृ० 74
31. श्री रामचरितमानस, तुलसी, बालकांड 86/4
32. वही, उत्तरकांड सोरठा 88 क
33. कवितावली, तुलसी, लंकाकांड, पद 44
34. कुमार संभवम्, कालिदास, पंचम सर्ग, श्लोक 77
35. रसमीमांसा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० 47
36. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद 304
37. वही, पद 675
38. वही, पद 698
39. बिहारी रत्नाकर, श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', दोहा 161, पृ० 93
40. वही, दोहा 688 पृ० 308
41. वही, दोहा 18 पृ० 32
42. वही, दोहा 548, पृ० 250
43. वही, दोहा 1 पृ० 21
44. वही, दोहा 31, पृ० 39
45. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद 35

46. वही, पद 161, पृ० 113
47. वही, पद 163 पृ० 115
48. बिहारी रत्नाकर, श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, दोहा 521, पृ० 239
49. वही दोहा 541 पृ० 247
50. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद 270, पृ० 183
51. वही, पद 489, पृ० 326
52. वही, पद 509, पृ० 338
53. बिहारी रत्नाकर, श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', दोहा 641, पृ० 287
54. वही, दोहा 6177, पृ० 302
55. संक्षिप्त सूरसागर, डा० सिद्धनाथ पांडेय, पद 16 पृ० 13
56. शैलीविज्ञान, डा० नगेंद्र, पृ० 63

## हिन्दी बाल-साहित्य : स्वातंत्र्योत्तर शोध और समीक्षा

डॉ० सुरेंद्र विक्रम

ऐसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग  
लखनऊ क्रिश्चियन (पी०जी०) कालेज, लखनऊ (उ०प्र०)

बाल-साहित्य पर विधिवत समीक्षा का कार्य स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ही प्रारंभ हुआ। श्रीमती ज्योत्सना द्विवेदी ने सन् 1952 में 'हिंदी किशोर साहित्य' नामक ग्रंथ लिखा था। एम० एड० उपाधि के लिए प्रस्तुत इस प्रबंध में कुछ बुनियादी तत्त्वों की कमी के बावजूद किशोर साहित्य का जो भविष्य रेखांकित किया गया था, वह आज समग्र रूप में फलीभूत हो रहा है।

छठें दशक के आरंभ में निरंकारदेव सेवक ने बाल-साहित्य, विशेष रूप से बालगीत के अलग-अलग पक्षों को लेकर कुछ आलेख लिखे, जिनका प्रकाशन उत्तर प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'शिक्षा' (संपादक : महेश्वरदयाल शर्मा) में हुआ। इसके पूर्व सेवकजी का आलेख 'बाल-साहित्य रचना' वीणा पत्रिका के नवम्बर 1954 अंक में छप चुका था। सेवकजी के अतिरिक्त देवेन्द्र सत्यार्थी ने 'राष्ट्रवाणी', जनवरी 1958, 'शिशुगीतों की आदिम सुकुमरता' शीर्षक से, श्री प्रसाद ने 'आज' : 19 नवम्बर 1961 में 'बाल-साहित्य रचना और दिशा' शीर्षक से, विमला श्रीवास्तव ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान : 14 नवंबर 1963 में 'बाल-साहित्य : एक प्रश्न' शीर्षक से, आनंदप्रकाश जैन ने धर्मयुग, 14 जून 1964 में 'बच्चों का साहित्य कैसा हो?' शीर्षक से, हरिकृष्ण देवसरे ने साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 21 नवंबर 1965 में 'क्या बाल-साहित्य बचकाना साहित्य ही है?' शीर्षक से, विष्णु प्रभाकर ने कादंबिनी जून 1966, भारतीय भाषाओं में बाल-साहित्य शीर्षक से, सत्यकाम विद्यालंकार ने नवनीत नवंबर 1968 में 'बच्चों का कथा जगत' शीर्षक से आलेख लिखकर बाल-साहित्य पर विस्तार से चिंतन-मनन की शुरुआत की। जहाँ हरिकृष्ण देवसरे बाल-साहित्य के नए प्रतिमान (माध्यम : सितंबर 1964) लेकर सामने आए, वहीं जयप्रकाश भारती ने 'बाल-साहित्य : कुछ विचार सूत्र' (नवभारत 15 नवंबर 1965) प्रस्तुत किए।

इसके अतिरिक्त हरिकृष्ण देवसरे ने बाल-साहित्य को लेकर अपने आलेखों में कुछ प्रश्न उठाया 'आज का बाल-साहित्य और उसकी समस्याएँ', धर्मयुग 18 नवंबर 1962; 'क्या लोक कथाएँ बाल-साहित्य हैं?' मधुमती नवंबर 1966; 'क्या बच्चों को परीकथाएँ पढ़ने को दी जाए? धर्मयुग 14 नवंबर 1962 क्या बच्चों को उपन्यास पढ़ने दिया जाए? धर्मयुग 4 जून 1967 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'बाल-साहित्य : चमकदार अस्तबल, कमजोर घोड़े' शीर्षक से दिनमान 16 नवंबर 1969 में एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया। मन्मथनाथ गुप्त ने 'बाल-साहित्य की समस्याएँ योजना 5 मई 1963' शीर्षक से अपने आलेख में सुझाव दिया

कि जितने ही उच्च स्तर के लेखक बाल-साहित्य के निर्माता की ओर अग्रसर होंगे, राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से उतना ही अधिक लाभ होगा।

इन आलेखों से इतना तो लाभ हुआ कि स्वस्थ बाल-साहित्य लेखन की ओर लोगों का ध्यान गया। साथ ही बाल-साहित्य चर्चा में आ गया। सन् 1966 में निरंकारदेव सेवक की महत्वपूर्ण कृति 'बालगीत साहित्य' शीर्षक से किताब महल, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई, जिसमें बालगीतों की विभिन्न प्रवृत्तियों तथा उनके ऐतिहासिक कालक्रम पर अनेक दृष्टियों से विस्तारपूर्वक विचार किया गया। हिंदी के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के बालगीतों का भी सोदाहरण परिचय इसमें सम्मिलित किया गया। इस कृति में पहली बार बालगीतकारों को प्रमुखता से स्थान दिया गया।

सेवक जी की उक्त कृति अपने संशोधित परिवर्द्धित संस्करण तथा नई सजधज के साथ 'बालगीत साहित्य : इतिहास एवं समीक्षा' शीर्षक से उ०प्र० हिंदी संस्थान, लखनऊ से सन् 1983 में प्रकाशित हुई, इसमें तत्कालीन बाल-साहित्य का अद्यतन इतिहास प्रस्तुत किया गया है। बाल-साहित्य पर अनुसंधान करने वालों के लिए 'बालदर्शन', 'हिंदी किशोर साहित्य' तथा 'बालगीत साहित्य इतिहास एवं समीक्षा' कृतियाँ आज भी मील का पत्थर बनी हुई हैं।

सातवें दशक के आरंभ में हिंदी बाल-साहित्य में शोध की शुरुआत हुई। उस समय बाल-साहित्य को लेकर लोगों के मन में कुहासा था। बाल-साहित्य समीक्षा जैसा कुछ भी नहीं लिखा गया था। छिटपुट प्रकाशित आलेखों के सहारे हिंदी के बाल-साहित्य पर शोध करने का बीड़ा उठाया-हरिकृष्ण देवसरे ने हिंदी साहित्य और बाल-साहित्य की दुरभि संधि तथा गिने-चुने समीक्षा ग्रंथों को आधार बनाकर लिखा गया शोध-प्रबंध 'हिंदी बाल-साहित्य, एक अध्ययन' सन् 1968 में जबलपुर विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। सन् 1969 में आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली से यह प्रबंध प्रकाशित होकर चर्चा में आ गया।

इस शोध-प्रबंध में बाल-साहित्य का स्वरूप विवेचन, बाल-साहित्य और बाल मनोविज्ञान, बाल-साहित्य का उद्भव और विकास, हिंदी बाल-साहित्य का विकास क्रम तथा युग विभाजन, सैद्धांतिक विवेचन, तुलनात्मक विवेचन, कला विधान तथा बाल-साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। परिशिष्ट में बाल-साहित्य और अनुवाद, पहेलियाँ और बच्चे, कहानी सुनाने की कला, बच्चों के लिए पुस्तकालय तथा चुटकुलों की कहानी की चर्चा है।

डॉ० देवसरे का उपर्युक्त शोध-प्रबंध जहाँ बाल-साहित्य के सम्यक् और समग्र अध्ययन की दिशा में प्रकाश डालता है, वहीं बाल-साहित्य में नई संभावनाओं की खोज भी करता है। आज बाल-साहित्य जिस मुकाम पर पहुँचा है। उसमें इस शोध-प्रबंध ने अहम् भूमिका निभाई है।

डॉ० हरिकृष्ण देवसरे के बाद डॉ० मस्तराम कपूर 'उर्मिल' को 'हिंदी बाल-साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन' शोध-प्रबंध पर सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस शोध-प्रबंध में बाल-साहित्य क्या है, बाल-साहित्य क्यों लिखा जाना चाहिए तथा बाल-साहित्य कैसा होना चाहिए के साथ-साथ हिंदी बाल-साहित्य को इतिहास के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया गया है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी आदि विविध साहित्य रूपों का शास्त्रीय एवं व्यावहारिक अध्ययन इसकी विशेषता है। अवस्था के

अनुसार बाल-साहित्य का विवेचन तथा बच्चों की रुचियों, क्षमताओं एवं आवश्यकताओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं हिंदी बाल-साहित्य की उपलब्धियाँ इसकी स्थापनाएँ हैं।

इसी क्रम में डॉ० ज्योतिस्वरूप का शोध-प्रबंध 'हिंदी में बाल-साहित्य' बाल-साहित्य का समुचित मूल्यांकन करने की दिशा में बढ़ाया हुआ अगला कदम है। इस पर आगरा विश्वविद्यालय से सन् 1971 में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस ग्रंथ का प्रकाशन 30 वर्षों बाद सन् 2002 में हुआ, इससे शोध-प्रबंधों के प्रकाशन की उदासीनता स्पष्ट झलकती है।

समाज में बालक की स्थिति, उसके लिए शिक्षा का महत्त्व और बाल-साहित्य की उपयोगिता तीनों का आपस में गहरा संबंध है। शोध-प्रबंध की प्रमुख स्थापना है कि बाल-साहित्य चाहे पुस्तक रूप में हो चाहे स्वतंत्र। उसमें अनंत प्रेरणाओं और देशकाल की मान्यताओं होना आवश्यक है। बाल-साहित्य की प्रत्येक रचना बाल मनोविज्ञान के सामान्य सिद्धांतों के अनुकूल होनी चाहिए। आज के बाल-साहित्य में जो खामियाँ हैं, उन्हें दूर करने में लेखक प्रकाशक, अभिभावक एवं प्रशासन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सागर विश्वविद्यालय से सन् 1971 में ही पी-एच० डी० की उपाधि से विभूषित डॉ० श्री कृष्णचंद्र तिवारी 'राष्ट्रबंधु' का शोध-प्रबंध 'हिंदी में बाल-साहित्य का मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक अनुशीलन' बाल-साहित्य में मनोविज्ञान की भूमिका को दर्शाता है। बाल-साहित्य का बालमनोविज्ञान से सीधा संबंध है। बाल मनोविज्ञान का अध्ययन किए बिना स्वस्थ एवं सुरुचिपूर्ण बाल-साहित्य लेखन संभव नहीं है।

इस शोध-प्रबंध में हिंदी बाल-साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता, बालक के स्वाभाविक विकास में बाल मनोविज्ञान का स्थान, हिंदी में बाल-साहित्य का प्रामाणिक इतिवृत्त, हिंदी में बालगीत साहित्य का वर्गीकरण, बाल नाटकों का वर्गीकरण तथा बाल-साहित्य की अन्य उपलब्धियों में चुटकुले, ज्ञान-विज्ञान साहित्य आदि का उल्लेख है। अंत में मनोवैज्ञानिक, शैक्षिक एवं साहित्यिक दृष्टि से बाल-साहित्य का किया गया मूल्यांकन संभावनाओं के नए द्वार खोलता है।

डॉ० श्रीप्रसाद को 'हिंदी बाल-साहित्य' शोध-प्रबंध पर सन् 1972 में उपाधि प्राप्त हुई। इस शोध-प्रबंध का प्रकाशन सन् 1985 में 'हिंदी में बाल-साहित्य की रूपरेखा' शीर्षक से लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ। यह प्रबंध प्रारंभ से लेकर सन् 1970 तक के बाल-साहित्य पर आधारित है। आरंभ में विषम निरूपण के बाद बाल-साहित्य के अध्ययन का उद्देश्य स्पष्ट किया गया है। शिशु साहित्य, बाल-साहित्य और किशोर-साहित्य का परिचय स्पष्ट करते हुए बाल-साहित्य की परिभाषा, बाल-साहित्य के तत्त्व और बाल-साहित्य के क्षेत्र पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। संस्कृत और पालि, मध्यकालीन हिंदी तथा लोकसाहित्य में बाल-साहित्य की परंपरा पर प्रकाश डालते हुए, लेखक ने आधुनिक हिंदी बाल-साहित्य की पृष्ठभूमि पर गहराई से प्रकाश डाला है।

अंत में, भारतेंदु युग में बाल-साहित्य की भूमिका स्पष्ट करते हुए द्विवेदी युग, स्वतंत्र पूर्व बाल-साहित्य तथा स्वातंत्र्योत्तर बाल-साहित्य का विवेचन-विश्लेषण जहाँ उसके महत्त्व पर प्रकाश डालता है। वहीं उसमें नए आयाम का भी संकेत देता है।

डॉ० कुसुम डोभाल का शोध-प्रबंध 'हिंदी बाल काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्त्व'

सन् 1980 में गढ़वाल विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था। इसका प्रकाशन, लाइब्रेरी बुक सेंटर, दिल्ली से सन् 1990 में हुआ। इसमें साहित्य और बाल-साहित्य की आधारभूमि, प्रतीक-स्वरूप और विश्लेषण बाल मनोविज्ञान बाल-काव्य के संदर्भ में हिंदी बाल-काव्य गति, प्रगति और प्रतीक योजना, हिंदी बाल-काव्य में कल्पना तत्त्व तथा बाल-साहित्य का महत्त्व विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

विषय और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से यह अनूठा प्रयास है। इसके पूर्व प्रस्तुत और प्रकाशित बाल-साहित्य विषयक शोध-प्रबंधों में केवल बाल-साहित्य का इतिहास और उसका विधागत विवेचन-विश्लेषण ही प्रस्तुत किया गया था। डॉ० डोभाल ने हिंदी बाल-काव्य में प्रतीक एवं कल्पना तत्त्व को गंभीरता से विश्लेषित किया है। हिंदी बाल-काव्य में प्रतीकों का प्रयोग प्रारंभ से ही होता आया है और कल्पना काव्य का एक अनिवार्य तत्त्व है। इस प्रकार प्रतीक और कल्पना हिंदी बाल-काव्य की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

शोध-प्रबंध की प्रमुख स्थापना है कि बालकाव्य में प्रतीकों का प्रयोग बालकों में अमूर्त भाव के प्रति मूर्त अनुभूति को विकसित करने के लिए किया जाता है जो कि भविष्य में उन्हें प्रतीकों को समझने की आधारभूमि तैयार करता है। बालकाव्य में कल्पना का सर्जनात्मक तत्त्व बच्चों की मूल प्रवृत्तियों तथा रचनात्मक प्रतिभा को विशेष रूप से प्रभावित करता है। कल्पना की निरर्थकता और अर्थ विसंगति की विचित्रता भी बालमन का आकर्षण है इससे बालकों को स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त होता है।

आठवें दशक के अंत तक प्रकाशित और उपाधि प्राप्त शोध-प्रबंधों से एक ओर बाल-साहित्य की अवधारणा स्पष्ट हुई तो दूसरी ओर डॉ० कृष्ण देवसरे, डॉ० श्रीप्रसाद, दुर्गाप्रसाद शुक्ल, विष्णुकांत पांडेय, श्रीमती शकुंतला सिरोठिया, निरंकारदेव सेवक, विष्णुप्रभाकर, डॉ० मस्तराम कपूर आदि के समय-समय पर लिखे गए और प्रकाशित आलेखों में बाल-साहित्य का महत्त्व रेखांकित किया गया। नेमिचंद जैन और रेखा जैन, शांता गांधी, सुषमा सेठ तथा मोहिनी राव के बाल रंगमंच विषय आलेखों से बालचेतना को विकसित करने का प्रयास किया गया। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने 'अच्छे बाल-साहित्य की चिंता' दिनमान 17 नवंबर 1979 आलेख लिखकर बाल-साहित्यकारों को सुरुचिपूर्ण बाल-साहित्य लिखने के लिए प्रोत्साहित किया।

सन् 1979 अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। इस वर्ष बच्चों को केन्द्र में रखकर जहाँ अनेक आयोजन किए गए, वहीं बाल-साहित्य की अनेक रंग-बिरंगी पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। बड़ों के लिए प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं ने बाल-साहित्य विशेषांक निकाले जिनमें बाल-साहित्य और बच्चों पर चिंता व्यक्त की गई। बच्चों के लिए बाल-साहित्य की उपयोगिता पर भी जमकर भाषणबाजी हुई, फूँद के मानिन्द ताम प्रकाशक उग आए सभी ओर अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष धूमधाम से मनाया गया। उस समय ऐसा लग रहा था मानो बच्चों के सारे दिलदर दूर हो जाएँगे। 'बच्चे की मुस्कान : राष्ट्र की शान' नारा सही अर्थों में सार्थक हो जाएगा।

आज तीन दशक बाद जब हम अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष की उपलब्धियों का आकलन करते हैं तो पाते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर दूर-दूर तक सन्नाटा ही सन्नाटा है। सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं ने बहती गंगा में जरूर जमकर हाथ धोया और अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष की आड़ में अपना उल्लू सीधा किया। प्रकाशकों ने भी ढेर सारा कूड़ा-कचरा छापकर बाल-साहित्य के

नाम पर खपा दिया। तात्पर्य यह है कि बच्चों के नाम पर बहुत कुछ किया गया, परंतु चिंता की बात यह है कि बच्चों को क्या मिला? क्या राष्ट्र की शान में बच्चे की मुस्कान अपनी जगह कायम है? कहीं ऐसा तो नहीं कि कमाने खाने वाले अपना काम करके चलते बने, सरकारी आँकड़ों का भी पेट भर दिया गया और बच्चा आज भी सड़क पर खड़ा हुआ बिसूर रहा है कि उसका अस्तित्व क्या है?

विदेशी विद्वान ग्लेन कनिंघम ने एक जगह लिखा है—कोई बच्चा मूलतः बुरा नहीं होता बुरा होता है वातावरण और बड़ों का उदाहरण। ये चीजें बदल दीजिए, बच्चे के भीतर अच्छाई चमक उठेगी।

सवाल यह उठता है कि अच्छाई आएगी कहाँ से? कोई ऐसा सौँचा उपलब्ध नहीं है, जिसमें ढालकर अच्छाई बनाई जा सके। इस अच्छाई को पैदा करने में बाल-साहित्य ही सशक्त भूमि का निभा सकता है, वही नई पीढ़ी को उपयुक्त दिशा और दृष्टि प्रदान कर सकता है।

आठवें दशक हिंदी बाल-साहित्य के इतिहास में अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष के कारण अवश्य याद किया जाएगा। इस वर्ष समीक्षा के क्षेत्र में पहल करते हुए डॉ॰ हरिकृष्ण देवसरे ने 'बाल-साहित्य रचना और समीक्षा' शीर्षक से एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का संपादन किया। शकुन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित इस ग्रंथ में संपादक ने बाल-साहित्य के अलग-अलग पक्षों पर महत्त्वपूर्ण आलेख लिखवाएँ हैं। छह भागों में विभाजित इस कृति के माध्यम से बाल-साहित्य : स्वरूप और विचार, बाल मनोविज्ञान और बाल-साहित्य, हिंदी बाल-साहित्य : सिंहावलोकन, हिंदी बाल-साहित्य विधापरक अध्ययन, बाल-साहित्य विविध प्रश्न तथा शोध और अध्ययन शीर्षकों से हिंदी बाल-साहित्य की लगभग एक शताब्दी की यात्रा की अच्छी पड़ताल की गई है। पुनरावृत्ति से बचने के लिए संपादक ने अच्छी-अच्छी राह खोजी है। यह कृति निश्चय ही हिंदी बाल-साहित्य का ऐतिहासिक दस्तावेज है, इस बात में संदेह नहीं है कि संपादक ने परिश्रम करके महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्रित की है। प्रकाशक ने भी इसे खूब मन से प्रकाशित किया है। काश इस तरह के और ग्रंथ प्रकाशित होते तो लोगों की बाल-साहित्य के प्रति दृष्टि में निश्चय ही बदलाव आता।

नवें दशक के आरंभ में सन् 1981 में डॉ॰ सी॰ एल॰ मिश्र को भोपाल विश्वविद्यालय से 'हिंदी बालकथा साहित्य में शब्द-योजना' विषय पर तथा सन् 1982 में डॉ॰ एस॰के॰ गुप्ता को आगरा विश्वविद्यालय से 'हिंदी शिशु-साहित्य का कथ्य और शिल्पपरक समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर एवं इसी वर्ष डॉ॰ मंजु गोयल को मेरठ विश्वविद्यालय से 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर पी॰एच॰डी॰ की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। डॉ॰ विजयलक्ष्मी सिन्हा को सन् 1983 में आधुनिक हिंदी में बाल-साहित्य का विकास' विषय पर पी॰एच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त हुई। यह प्रबंध इसी शीर्षक से साहित्य वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद से सन् 1986 में प्रकाशित हुआ। इसमें बाल-साहित्य की पहचान, प्राचीन व मध्यकालीन बाल-साहित्य, भारतेन्दुयुगीन बाल-साहित्य एवं पूर्व स्वातंत्र्योत्तर बाल-साहित्य, स्वातंत्र्योत्तर बाल-साहित्य तथा बाल-साहित्य की भविष्योन्मुख दिशाएँ विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। बाल-साहित्य के विकास में विभिन्न संस्थाओं का ऐतिहासिक महत्त्व और भविष्य के अन्य विकल्प शीर्षक के अंतर्गत बाल पुस्तकालय, बाल पत्र-पत्रिकाएँ आकाशवाणी और



दूरदर्शन के बाल कार्यक्रम तथा बाल फिल्मों पर सम्यक् जानकारी दी गई है। इस प्रबंध की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें हिंदी का वर्तमान बाल-साहित्य अपनी संपूर्णता के साथ प्रदर्शित हुआ है। इसका निष्कर्ष है कि आज बाल-साहित्य का स्वरूप ऐसा हो, जो आज के धरातल पर आज के बाल-निर्माण में सहायक हो। उसे मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक होना ही चाहिए क्योंकि ये उनके गुण हैं।

इसी वर्ष डॉ० वैद्यनाथसिंह को मगध विश्वविद्यालय से 'हिंदी की बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाएँ' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। दो खंडों में विभाजित इस प्रबंध में स्वतंत्रता के पूर्व और बाद का बाल पत्रकारिता विषयक ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बाल-साहित्य की विभिन्न विधाओं और प्रवृत्तियों के साथ-साथ बाल-साहित्यकारों पर भी विभिन्न विश्वविद्यालयों के लिए शोध-प्रबंध लिखे गए हैं। डॉ० विजयकुमार मल्होत्रा ने सोहनलाल द्विवेदी पर डॉ० विभा दूबे ने शंभूदयाल सक्सेना पर तथा अवधेशकुमार शुक्ल ने निरंकारदेव सेवक पर केंद्रित अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत करके शोधोपाधि प्राप्त की।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सन् 1986 से अद्यतन एक दर्जन से ऊपर शोध-प्रबंध बाल-साहित्य पर पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत किए जा चुके हैं। डॉ० सुमन वर्मन (वाही) को सन् 1986 में सर्वप्रथम 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बालकथा साहित्य : एक अध्ययन' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबंध में सन् 1950 से लेकर सन् 1986 तक प्रकाशित हिंदी बाल-कहानियों एवं बाल-उपन्यासों का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। डॉ० सुमन के बाद सन् 1987 में डॉ० (श्रीमती) उषादेवी सिंह को 'हिंदी बालकहानी का कथानक विश्लेषण' विषय पर शोधोपाधि प्राप्त हुई। इसमें हिंदी बाल-कहानी के साथ कथानक का रचना-विधान हिंदी बाल-कहानी का शिल्प-विधान, हिंदी बाल-कहानी के विषयगत कथानक-काल्पनिक एवं यथार्थवादी' दृष्टि पर गंभीरता से विचार किया गया है।

इसी वर्ष डॉ० निर्मला वर्मन को 'हिंदी बालकाव्य एक अध्ययन' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबंध में बालकों के लिए बालकाव्य की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए शोधार्थी ने बाल-कविता का प्रमाणिक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इसमें हिंदी बालकाव्य का विकास, क्रम, वर्गीकरण, शिल्प-विधान तथा लोकतत्त्व को प्रमुख रूप से रेखांकित किया गया है।

सन् 1987 में ही डॉ० रेनू सिंह को हिंदी बाल-नाटक : एक अध्ययन' विषय पर शोधोपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबंध में हिंदी बाल-साहित्य का स्वरूप विवेचन, ऐतिहासिक विकास क्रम, हिंदी बाल-नाटक का उद्भव और विकास, हिंदी बाल-नाटकों का निरूपण-वर्गीकरण, हिंदी के प्रमुख बाल-नाटककार और नाटक, हिंदी बाल-नाटक और रंगमंच तथा हिंदी बाल नाटक के भविष्य पर विचार करते हुए बाल-नाटकों में नई संभावनाओं को खोजने का प्रयास किया गया है।

डॉ० दिलीप अच्युत साधले ने सन् 1987 में पूना विश्वविद्यालय से 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और मराठी बाल-साहित्य : एक तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। हिंदी के साथ-साथ मराठी में भी बाल-साहित्य का समृद्ध भंडार है। इस दृष्टि से शोधार्थी

का श्रम श्लाघ्य है कि उन्होंने हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं के बाल-साहित्य का निष्पक्ष विवेचन कर नीर-क्षीर विवेकी दृष्टि का परिचय दिया है।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से सन् 1988 में डॉ० राज्यश्री सिंह को 'हिंदी बाल-साहित्य और बाल-मनोविज्ञान' विषय पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। बाल मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया बाल-साहित्य का यह यथेष्ट मूल्यांकन है। इस प्रबंध में बाल-साहित्य का स्वरूप-विश्लेषण बाल-मनोविज्ञान एवं बाल-विकास के आधारभूत तत्त्व, पूर्व बाल्यावस्था का मानसिक विकास और बाल-साहित्य, उत्तर बाल्यावस्था का मानसिक विकास और बाल-साहित्य, किशोरावस्था का मानसिक विकास और बाल-साहित्य तथा हिंदी बाल-साहित्य : बाल मनोवैज्ञानिक समीक्षा विषयों पर आधुनिक दृष्टि से विचार किया गया है।

इसी विश्वविद्यालय से इसी वर्ष डॉ० पुष्पा जैन का शोध-प्रबंध 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल काव्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन' पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लिखे गए बाल-काव्य में अनेक बदलाव आए हैं। नए प्रयोग, नए बिंब और नई मौलिक उद्भावनाओं ने बाल-काव्य को एक नई दृष्टि दी है। इस प्रबंध में बालकाव्य स्वरूप विवेचन के अतिरिक्त बालकाव्य का प्रयोजन, स्वातंत्र्य पूर्व हिंदी बालकाव्य, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बालकाव्य का विकास प्रथम एवं द्वितीय खंड, हिंदी बालकाव्य का वर्गीकरण, हिंदी बालकाव्य के रूप तथा द्वितीय खंड हिंदी बालकाव्य का वर्गीकरण, हिंदी बालकाव्य के रूप तथा हिंदी बालकाव्य के कला पक्ष पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है।

इसी वर्ष डॉ० राजकिरण दीक्षित को 'आधुनिक युग के प्रमुख हिंदी बालगीतकार' विषय पर लखनऊ विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इस प्रबंध में शोधार्थी ने बालगीत की परिभाषा, स्वरूप, प्रकृति भावपक्ष और कलापक्ष के साथ-साथ राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' से लेकर अद्यतन आधुनिक काल तक के लगभग एक सौ से अधिक बालगीतकारों का जीवन परिचय और कृतित्व प्रस्तुत किया है। निरंकारदेव सेवक शकुंतला सिरोठिया, चंद्रकिरण सोनरेक्शा, सुंदरलाल अरुणेश तथा शिवशंकर मिश्र आदि बाल-साहित्यकारों की बालगीत परिभाषाओं को उद्धृत करते हुए शोधार्थी ने बालगीत की संभावनाओं पर सम्यक् प्रकाश डाला है।

सन् 1988 में ही कंचनलता यादव को कानपुर विश्वविद्यालय से 'हिंदी बाल-साहित्य के विकास में श्री चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' के साहित्य का मूल्यांकन' विषय पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। शोधार्थी ने इस प्रबंध में जहाँ मयंक जी की बाल-साहित्य साधना का उचित मूल्यांकन किया है, वहीं उनसे संबंधित अनेक अछूते विषयों का समावेश करके इसे और उपयोगी बना दिया है।

बाल-साहित्य में पद्यलेखन के साथ-साथ गद्य में भी समान रूप से काम हुआ है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा सन् 1989 में पी-एच०डी० की उपाधि से विभूषित डॉ० भोलानाथ का शोध-प्रबंध 'हिंदी बाल गद्यसाहित्य एक अध्ययन' बाल-कहानी, बाल-नाटक, बाल-उपन्यास, बाल-निबंध, बाल-जीवनी, बाल-यात्रा विवरण, संस्मरण तथा रिपोर्टाज पर तटस्थ मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। इस प्रबंध में हिंदी बाल गद्यसाहित्य का स्वरूप-विवेचन करते हुए विधागत बाल-साहित्य में नवीन संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

नवें दशक में उपनिधि-प्राप्त उपर्युक्त शोध-प्रबंधों से बाल-साहित्य के प्रति लोगों में चेतना का विकास हुआ। डॉ० हरिकृष्ण देवसरे ने इस विकास को 'बाल-साहित्य समालोचना-आजकल फरवरी 1981'; डॉ० कुसुम डोमाल ने 'हिंदी बाल-कविता में प्रयोग बाल-साहित्य समीक्षा सितंबर 1981' जयप्रकाश 'भारती' ने 'बाल-साहित्य सही संदर्भ की तलाश, आजकल नवंबर 1981'; डॉ० श्रीप्रसाद ने 'बालकों के विकास में बाल-साहित्य का योगदान, उत्तर प्रदेश नवंबर 1981 निरंकारदेव सेवक ने 'बच्चों के लिए क्या लिखें?'; बाल-साहित्य समीक्षा मई 1982; विनोद रस्तोगी ने 'आज का बाल-साहित्य, कुछ जरूरी सवाल, उत्तर प्रदेश नवंबर 1983; योगराज थानी ने हिंदी बाल-साहित्य मान्यताएँ महत्त्व और मूल्यांकन, बाल-साहित्य समीक्षा फरवरी 1984; डॉ० मस्तराम कपूर ने 'हिंदी में बाल-साहित्य में पच्चीस वर्ष, भाषा मार्च-मई 1985; डॉ० गिरीश रस्तोगी ने 'बालकों का वर्तमान पाठ्यक्रम और बालरंगमंच', छाया 12 दिसंबर, 1985; भगवतीप्रसाद द्विवेदी, 'बाल-साहित्य समस्याएँ और संभावनाएँ, उत्तर प्रदेश नवंबर 1986; डॉ० कृष्णमोहन सक्सेना, युद्ध समस्या और बाल-नाटक, बाल-साहित्य समीक्षा अगस्त 1987 सुरेंद्र विक्रम ने साठोत्तरी हिंदी बाल-पत्रिकाएँ, उत्तर प्रदेश जुलाई 1988; डॉ० रोहिताश्व अस्थाना ने बाल-साहित्य समस्याएँ और निदान, उत्तर प्रदेश दिसंबर 1989; डॉ० बेचन ने 'बच्चों का विकास और बाल-साहित्य', तथा डॉ० दिविक रमेश ने 'बाल-साहित्य और बाल मनोविज्ञान', नवभारत टाइम्स 24 दिसंबर 1990 आदि आलोचनात्मक आलेखों में व्यक्त किया। इन आलेखों से इतना तो हुआ है कि बाल-साहित्य मुख्य धारा में आ गया।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में शोध और समीक्षा की स्थिति में उत्तरोत्तर प्रगति हुई। इस दशक में बाल-साहित्य राष्ट्रीय संगोष्ठियों में चर्चा के केंद्र में रहा। इसी दशक में बाल-भवन सोसायटी इंडिया (वर्तमान राष्ट्रीय बाल-भवन) ने अपनी वार्षिक संगोष्ठियों में बाल-साहित्य के लेखकों, प्रकाशकों, समीक्षकों और पाठकों का एक ऐसा मंच तैयार किया, जिसमें वर्ष भर में एक बार बाल-साहित्य पर खुलकर चर्चा होती थी। यह सिलसिला लगभग 12-13 वर्षों तक अनवरत चलता रहा। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भी इसकी अनुगूँज सुनाई पड़ी, परंतु निदेशक डॉ० मधु पंत के अगस्त 2006 में अवकाश ग्रहण करते ही यह दीर्घ परंपरा टूट गई। राष्ट्रीय बाल-भवन, नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तकें त्रिविधा (1994), त्रिधारा (1996), त्रिपदा (1997), त्रिदिशा (1999), त्रिवेणी (2000), त्रिसंगम और त्रिसंध्या (2004), त्रिवर्णा और त्रिसम्या (2006) आज भी हिंदी बाल-साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर हैं। लगभग 2000 पृष्ठों में फैली इस सामग्री से ही हिंदी बाल-साहित्य का एक व्यवस्थित इतिहास लिखा जा सकता है। इस दिशा में आलोचना का गुरुतर दायित्व सँभालने की महती आवश्यकता है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक सन् 1992 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से स्वीकृत शोध-प्रबंध 'हिंदी बाल-साहित्य और शिक्षाशास्त्र अपने ढंग का बिल्कुल अलग अध्ययन है। शिक्षाशास्त्र में बाल-साहित्य के महत्त्व को रेखांकित करते हुए इस शोध-प्रबंध में हिंदी बाल-साहित्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए हिंदी बाल-काव्य साहित्य तथा हिंदी बाल गद्यसाहित्य का ऐतिहासिक कालक्रम निर्धारण किया गया है। आधुनिक शिक्षाशास्त्र हिंदी-शिक्षण और बाल-साहित्य, शिक्षण संस्थाएँ और बाल-साहित्य का विश्लेषण करते हुए शोधार्थी ने हिंदी पाठ्यक्रम में बाल-साहित्य की भूमिका को रेखांकित किया है। डॉ० सुरेंद्रनाथ तिवारी का

शोध-प्रबंध 'हिंदी बाल-साहित्य, परंपरा, विकास एवं मूल्यांकन' एक अभिनव प्रयास है, जिसमें समस्त बाल-साहित्य को प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रबंध का निष्कर्ष है कि हिंदी में बाल-साहित्य का अभाव नहीं है। बाल-साहित्य तो प्रतिवर्ष ढेर सारा प्रकाशित होता है, परंतु मूल्यांकन के अभाव में बाल-साहित्य की सही जानकारी लोगों तक नहीं पहुँच पाती है।

सन् 1993 में डॉ० ज्योत्सना शर्मा को आगरा विश्वविद्यालय से बाल-साहित्यकार 'चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' शोध-प्रबंध पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इसमें मयंक जी का समस्त बाल-साहित्य प्रमुखता से रेखांकित किया गया है। बाल-साहित्य में हुए व्यक्तिपरक शोध-प्रबंधों ने जहाँ दीर्घकाल तक साहित्य-सृजन करनेवाले बाल-साहित्यकारों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया, वहीं हिंदी बाल-साहित्य में एक नई परंपरा को भी जन्म दिया। अब तक व्यक्तिपरक शोध-प्रबंधों में द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, निरंकारदेव सेवक, सोहनलाल द्विवेदी, डॉ० श्रीप्रसाद, डॉ० रोहिताश्व अस्थाना आदि उल्लेखनीय नाम हैं। प्रसिद्ध बाल-साहित्यकार श्री बालकृष्ण गर्ग के बाल-साहित्य, विशेषकर बाल-गीतों, पर रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली एवं चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ में शोधकार्य चल रहा है। इन पंक्तियों के लेखक के व्यक्तित्व कृतित्व पर भी रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली से शोधकार्य हो रहा है।

सन् 1994 में डॉ० प्रतिमा को काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-कविता : विश्लेषणात्मक अध्ययन, विषय पर तथा इसी वर्ष डॉ० नृपेंद्रकुमार पांडेय को रुहेलखंड विश्वविद्यालय से 'निरंकारदेव सेवक की बाल-कविताओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर तथा डॉ० सत्यदेव आज़ाद को आगरा विश्वविद्यालय से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन विषय पर पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। इन शोध-प्रबंधों में बाल-कविता के विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। बाल-मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ ही बाल-कविता को पूर्णता प्रदान कर सकती है।

सन् 1995 में डॉ० सुधा हिशीकर को रायपुर विश्वविद्यालय से 'छत्तीसगढ़ अंचल का हिंदी बाल-साहित्य' : श्री नारायणलाल परमार के विशेष अध्ययन सहित' विषय पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इसमें बाल-साहित्य की व्याख्या, बाल-साहित्य के सिद्धांत तथा हिंदी बाल-साहित्य का स्वरूपगत विकास बताते हुए छत्तीसगढ़ अंचल के हिंदी बाल-साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

सन् 1996 में डॉ० डी०एस० नरवार को आगरा विश्वविद्यालय से 'हिंदी बाल-साहित्य में सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना' विषय पर पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। इसी वर्ष नंदना चिटकारा को भी 'चंद्रपालसिंह यादव 'मयंक' की बाल कविताओं में राष्ट्रीय भावना' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त हुई। सन् 1997 में पुष्पा पांडेय को स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-गीतों का तुलनात्मक अनुशीलन' विषय पर भोपाल विश्वविद्यालय से, सन् 1998 में प्रीति सिंह को 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बालकाव्य में हास्य और व्यंग्य' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से, सन् 1999 में शेषपाल सिंह को 'डॉ० रोहिताश्व अस्थाना के विशेष संदर्भ में साठोत्तरी हिंदी बाल-साहित्य' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से बबीता जैन को 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-साहित्य में राष्ट्रीय चेतना' विषय पर आगरा

विश्वविद्यालय से तथा डॉ० सुनीता सिंह को 'डॉ० रोहिताश्व अस्थाना के बालकाव्य में भारतीय संस्कृति' विषय पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। सन् 2000 में एस० सुनीलकुमार को 'हिंदी के बालगीत : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' विषय पर केरल विश्वविद्यालय से शोधोपाधि प्राप्त हुई।

इस दशक में शोध के साथ-साथ समीक्षा की धारा भी निरंतर वेगवती रही। बाल-साहित्य में नई-नई संभावनाओं को लेकर आलेख लिखे गए। इसी दशक में बाल-साहित्य की कई आलोचनात्मक कृतियाँ प्रकाश में आईं, जिनमें कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं— हिंदी बाल-साहित्य परंपरा और प्रयोग, संपादक डॉ० ओमप्रकाश सिंहल (1992); हिंदी बाल-पत्रकारिता उद्भव और विकास, डॉ० सुरेन्द्र विक्रम (1992); त्रिविधा, संपादक डॉ० मधु पंत (1994); बाल-साहित्य इक्कीसवीं सदी में, जयप्रकाश भारती (1995); त्रिधारा, संपादक डॉ० मधु पंत (1996); हिंदी बाल-साहित्य : विविध परिदृश्य, डॉ० सुरेन्द्र विक्रम (1997); त्रिपदा, संपादक डॉ० मधु पंत (1997); बाल-साहित्य की अवधारणा, डॉ० श्रीप्रसाद (1998); समकालीन बाल : साहित्य परख और पहचान, डॉ० सुरेन्द्र विक्रम (1998); बाल-साहित्य-शोध समीक्षा संदर्भ, डॉ० सुरेन्द्र विक्रम (1998); त्रिपथगा, संपादक डॉ० मधु पंत (1998); त्रिदिशा, संपादक डॉ० मधु पंत (1999); बाल-साहित्य : मेरा चिंतन, डॉ० हरिकृष्ण देवसरे (2000); तथा त्रिवेणी, संपादक डॉ० मधु पंत (2000) आदि।

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में बाल-साहित्य की पहचान बनी और हिंदी साहित्य के ऐतिहासिक ग्रंथों में इसकी चर्चा शुरू हुई। शोध और समीक्षा की जो गति बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में थी, वह बढ़कर मुख्य धारा में आ गई। सन् 2001 में रेखारानी को 'आधुनिक हिंदी बालकाव्य में भारतीय संस्कृति' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से, सन् 2002 में नंदिनी चंद्रा को 'बचपन का चित्रण : हिंदी की बाल-पत्रिकाओं का अध्ययन (1920-1950)' विषय पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से, नीतू गुप्ता को 'आधुनिक हिंदी बालकाव्य में प्रकृति-चित्रण', सुमनलता को 'आधुनिक हिंदी बालगीत काव्य में राष्ट्रीय भावना', संगीता गौतम को 'आधुनिक हिंदी बालकाव्य में पशु-पक्षियों का बाल-मनोविज्ञान पर प्रभाव', प्रेमलता शुक्ला को 'आधुनिक हिंदी बाल-कहानियों में भारतीय संस्कृति' तथा कंचन सक्सेना को 'हिंदी बाल-कहानियों तथा पंचतंत्र की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन' विषयों पर सभी को आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। एक ही वर्ष में एक ही विश्वविद्यालय से बाल-साहित्य की अलग-अलग विधाओं में किए गए इस कार्य की अपनी महत्ता है।

सन् 2003 में अलका चमोला को 'हिंदी बाल-साहित्य में पर्यावरण चेतना' विषय पर गढ़वाल विश्वविद्यालय से तथा तेजवीरसिंह को डॉ० रोहिताश्व अस्थाना के बाल-साहित्य में संवेदना एवं शिल्प' विषय पर तथा पुष्पादेवी को 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-साहित्य में डॉ० श्रीप्रसाद का योगदान' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से शोधोपाधि प्राप्त हुईं।

सन् 2004 में कृष्णकुमार को सुप्रसिद्ध बाल-साहित्यकार 'श्रीमती शकुंतला सिरोटिया की साहित्य-साधना के विविध आयाम' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से तथा बुद्धसेन भारती को 'हिंदी बाल साहित्य के विविध आयाम : विनयकुमार मालवीय के बाल-साहित्य के विशेष

संदर्भ में' विषय पर रुहेलखंड विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं।

सन् 2005 में कुसुम जैन को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-एकांकी नाटकों का सांस्कृतिक तथा साहित्यिक अध्ययन' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से शोधोपाधि मिली।

सन् 2006 में बाल-साहित्य को केंद्र में रखकर अनेक शोधकार्य संपन्न हुए। बाल-साहित्यकारों पर केंद्रित शोधकार्यों में 'कन्हैयालाल मत्त की साहित्य-साधना के विविध आयाम' विषय पर, जगदीप यादव को आगरा विश्वविद्यालय से तथा 'डॉ० विनयकुमार मालवीय के बाल-साहित्य का समीक्षात्मक अनुशीलन' विषय पर हेमा जोशी को गढ़वाल विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। अन्य शोधकार्यों में नागेश पांडेय को 'हिंदी बाल-साहित्य के समीक्षा-सिद्धांत' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से, विष्णुकुमार व्यास को 'स्वातंत्र्योत्तर बालकथा साहित्य : सर्जन एवं मूल्यांकन' विषय पर राजस्थान विश्वविद्यालय से, मंजु कोठारी को 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर अजमेर विश्वविद्यालय से, इंदु सिंह को 'आधुनिक हिंदी बाल-साहित्य में अभिव्यक्त नैतिक मूल्यों का अनुशीलन' विषय पर आगरा विश्वविद्यालय से तथा रंजू नियात को 'उत्तरांचल में हिंदी बाल-साहित्य : सर्जन एवं मूल्यांकन' विषय पर गढ़वाल विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। अनेक बाल-साहित्यकारों तथा बाल-साहित्य की विभिन्न विधाओं और प्रवृत्तियों पर केंद्रित शोध-प्रबंध विश्वविद्यालयों में जमा हैं तथा कुछ का मूल्यांकन हो चुका है और उन पर उपाधियों की मुहर लगनी बाकी है।

बाल-साहित्य से ही जुड़ा हुआ किशोर साहित्य है, जिस पर चर्चा कभी-कभी हो जाती है। किशोर लेखनी पत्रिका निकालने वाले देवेंद्रकुमार देवेश ने इस पर गंभीरता से काम किया है। देवेश के संपादन में प्रकाशित 'किशोर साहित्य की संभावनाएँ' पुस्तक में बहुत सारे अनुभव, सरोकार, प्रवृत्तियाँ और युगधर्म हैं। लगभग तीन दशक पूर्व शोध-उपाधि प्राप्त प्रबंध 'हिंदी में बाल-साहित्य : डॉ० ज्योतिस्वरूप' का सन् 2002 में प्रकाशित होना भी एक घटना है। डॉ० प्रकाश मनु ने हिंदी बाल-कविता का इतिहास (सन् 2003) में एक शताब्दी में बिखरी उपलब्धियों को समेटने का प्रयास किया है। त्रिसंगम और त्रिसंध्या (2004) संपादक डॉ० मधु पंत, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी बाल-साहित्य (2005) डॉ० कामना सिंह, त्रिवर्णा और त्रिसाम्या (2006) संपादक डॉ० मधु पंत तथा बाल-साहित्य के सरोकार (2007) डॉ० हरिकृष्ण देवसरे, बाल-साहित्य के प्रतिमान (2009) डॉ० नागेश पांडेय 'संजय' ने भी बाल-साहित्य की सृजन-यात्रा को रेखांकित करने का प्रयास किया है। डॉ० देवसरे ने अपनी पुस्तक में बाल-साहित्य को वैश्विक सोच से जोड़ने पर बल दिया है तथा बाल-साहित्य में बाल-अभिव्यक्ति की चर्चा करते हुए आज के बाल-साहित्य की चुनौतियाँ, बाल-साहित्य की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की सार्थक कल्पना को साकार करती विज्ञान कथाओं पर सारगर्भित चिंतन प्रस्तुत किया है—

'आज के बाल-साहित्यकार के सामने जो चुनौतियाँ हैं, उनका सामना करने के लिए उसे सक्षम बनना ही पड़ेगा अन्यथा उसके बाल-साहित्य लेखन का कोई औचित्य नहीं रह जाएगा। वास्तव में आज के बाल-साहित्यकार से जो अपेक्षाएँ हैं, वे भविष्य की वे चुनौतियाँ हैं, जिनका बच्चे सामना करेंगे और हमें उनके उत्तर प्रस्तुत कर, बच्चों को सक्षम और समर्थ बनाना है।'

## आतंकवाद के साए में लेखन

कृष्ण राघव

पहला प्रश्न तो यह है कि आतंकवाद है क्या? शायद यह कि छापामारी करके ऐसा भय व्याप्त कर दिया जाए कि शांति अपने औसान खो बैठे और आतंकी द्वारा अपनी बात मनवा ली जाए। इस परिभाषा में भी सापेक्षता छिपी बैठी है। एक का आतंकवाद दूसरे पक्ष के लिए विद्रोह अथवा स्वाधीनता संग्राम हो सकता है। सन् 57 का ग़दर इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। हम जब बच्चे थे तब भी हमारे बुजुर्ग 1857 के सैनिक विद्रोह को ग़दर ही कहते थे, लगभग 1955-56 तक भी, किंतु बाद में वही ग़दर स्वाधीन भारत के संदर्भ में प्रथम स्वाधीनता-संग्राम कहा जाने लगा। ब्रिटेन के दृष्टिकोण से तो भगतसिंह और आजाद सरीखे, न जाने कितने क्रांतिकारी आतंकवादी ही थे। कहा जाता है कि केवल इसी कारण गांधी ने भगतसिंह के बारे में कोई भी सिफ़ारिश करने से इंकार कर दिया था, क्योंकि अहिंसा के अतिरिक्त वह कोई और रास्ता जानते ही नहीं थे। सत्य का रंग तो सफ़ेद ही हो सकता है, भूरा अथवा भकभूसड़ा नहीं।

इस दृष्टिकोण से देखें तो मानवता को आतंकवाद से कभी छुटकारा ही नहीं मिला। महाभारतकाल हो कि रामायणकाल, आतंकी तो सदा ही रहे और यह प्रश्न भी सदैव बना रहा कि आतंकवाद को रेखांकित किस प्रकार किया जाए? रावण ने यदि सीता को चुरा कर आतंकवाद का सहारा लिया तो रावण के दृष्टिकोण से हनुमान द्वारा अशोक वाटिका उजाड़ना भी आतंकवाद था। कहना न होगा कि आतंकवाद के साथ ही साथ सापेक्षवाद भी जुड़ा रहता है। वर्तमान के संदर्भ में देखें तो फ़िलिस्तीन और इज़रायल इसी पहली के प्रतीक बने हुए हैं।

इन सब पहलुओं को दोहरा लेने के बाद मैं इतना और भी जोड़ देना चाहूँगा कि इसीलिए समाज का कोई भी वर्ग भले ही आतंकवाद से जुड़ा हो किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उस वर्ग की सारी जनसंख्या ही आतंकवादी मान ली जाएगी, भले ही हिंदू हो कि मुसलमान ईसाई या सिख!

आतंकवाद धर्म से भी न ही पनपता, चौंकिए मत् धर्म तो आस्था है, सहिष्णुता है, मानवता है और जीवन शैली है.....धर्म के प्रतिकर्म में से उपजी धर्मान्धता अथवा सांप्रदायिकता आतंकवाद को जन्म देती है। उससे जब राजनीति भी जुड़ जाती है तो 'करेला नीम चढ़ा' वाली कहावत चरितार्थ हो उठती है और मानवता अपना सिर धुनती रह जाती है। फिर भी जैसे दियासलाई की एक ही तीली का प्रकाश सारे कमरे में उजास भरने के लिए काफ़ी होता है, जैसे गठरी भर कपास तौलने के लिए लोहे का छोटा-सा बाट ही काफ़ी होता है, उसी तरह अच्छाई बुराई पर सदा ही भारी पड़ेगी। तभी बार-बार आतंकवाद हार जाता है और यही कारण

है कि लेखन न तब रुका था न अब रुका है। अव्यक्त से निकला उपजा व्यक्त, व्यक्त जिसने किया वह व्यक्ति और जो व्यक्त किया वह अभिव्यक्ति। सो अभिव्यक्ति तो व्यक्ति की मजबूरी। आतंकवाद के प्रति अपनी प्रतिक्रिया देने से मनुष्य चूकेगा क्यों और कैसे! सच की राह में तीन कदम के बारे में बताते हुए गांधी जी ने कहा था कि पहला कदम अर्थात् पहले आप अपना आपा देखिए... क्या आप अपने आपसे बात करते हैं, अपने आपको भी ग़लत कहने की हिम्मत है क्या आप में... यदि है तो फिर दूसरा कदम यह कि अपने आस-पास अपने विरोध दर्ज कराएँ। और आपके इस विरोध में यदि सत्याग्रह छिपा है तो सामूहिक कदम अपने आप उठेंगे, और यही सत्य की राह में तीसरा कदम होगा, लेखक, यदि सत्य के प्रति समर्पित है तो बिना गांधी का संदर्भ दिए भी यही तीन काम करता है। यह बात अलग है कि आतंकवाद उसे भी नहीं छोड़ता किंतु जैसा कि गजानन माधव मुक्तिबोध ने कहा था कि 'अभिव्यक्ति के खतरे तो उठाने ही होंगे,' स्वर्गीय हरिशंकर परसाई ने ये खतरे उठाए और आतंकवादियों के हाथों जमकर पीटे। फिर भी हिंसक लोग उनकी लेखनी को नहीं पीट सके और परसाई जी अनवरत लिखते रहे।

ख़तरा इस बात का नहीं है कि आतंकवाद के डर से लेखक नहीं रहेंगे, उनमें भय व्याप्त हो जाएगा, डर तो इस बात का है कि लिखते समय लेखक निरपेक्ष रह सका क्या? उसे अपने और अपनों के दोष भी दिखे क्या? जिस तरह, हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई आतंकवाद है, उसी तरह उनको समझकर उनका उचित विश्लेषण करनेवाले लेखक भी चाहिए। एक ही अपराध बार-बार करना पड़ेगा कि आदमी बनकर आदमी से प्यार करना पड़ेगा तभी दृष्टि व्यापक होगी और चीजें दिन के उजाले की तरह साफ़ नज़र आएँगी वरना तो ग़ालिब कह ही गए हैं कि

बस कि दुश्वार है, हर काम का आसाँ होना

आदमी को भी मयस्सर नहीं इसाँ होना।

ऐसे दीवाने तब भी थे और अब भी हैं, जो अभिव्यक्ति के खतरे उठा सकते थे, उठा सकते हैं। भला बताइए कि विभाजन की त्रासदी से बढ़कर इस देश के लिए कोई और आतंकवाद भला क्या होगा? फिर भी क्या पाकिस्तान अपने टोबाटेक सिंह सादत हसन मंटो को सच कहने से रोक पाया? गांधी का यह सिपाही बगैर गांधी का नाम लिए 'काले हाशिए' लिख रहा था, जिसमें एक वाक्य तक की कहानियाँ भी थीं, मुलाहिजा फ़रमाइए—

'साअते-शीरीं' अर्थात् 'मधुर पल' लिखते हुए मंटो कहते हैं कि, 'नई दिल्ली, जनवरी 31 (एपी) : इत्तिला मौसूल है कि महात्मा गांधी की मौत पर इज़हारे-मसरत के लिए अमृतसर, ग्वालियर और बंबई में कई जगह लोगों में शीरीनी (मिठाई) बाँटी गई।

मैं इसी हिम्मत की बात कर रहा था। इसी हिम्मत की बात गांधी करते हैं। सच कहने की यह ताक़त जो इंसान को पागल करार कर देती है, उसे यातनाएँ देने के लिए जेल तक पहुँचा देती है, वही लेखक को सच्चा सत्याग्रही बना देती है।

सारी क़ौमों को शर्मसार करते हुए मंटो ने 'उलाहना' लिखा, 'देखो यार तुमने ब्लैक मार्केट के दाम भी लिए और ऐसा रद्दी पेट्रोल दिया कि एक दुकान भी न जली।

'आराम की ज़रूरत' को एक परिभाषा में बाँधते हुए दो दोस्तों के बीच की एक



बातचीत सुनिए, सिर्फ दो संवादों में :

‘मरा नहीं...देखो अभी जान बाकी है।’

‘रहने दे यार....मैं थक गया हूँ।’

एक और काला हाशिया सुनाकर मैं मंटो साहब से इजाजत लूँगा।

‘कौन हो तुम?’

‘तुम कौन हो?’

‘हर-हर महादेव....हर-हर महादेव!’

‘सुबूत क्या है?’

‘मेरा नाम धरमचंद है।’

‘यह कोई सुबूत नहीं....पायजामा ढीला करो।’

पायजामा ढीला हुआ तो शोर मच गया, मार डालो-मार डालो....

‘ठहरो... ठहरो... मैं तुम्हारा भाई हूँ..भगवान की क़सम तुम्हारा भाई हूँ।’

‘तो यह क्या सिलसिला है?’

‘जिस इलाके से मैं आ रहा हूँ, वह हमारे दुश्मनों का है....इसीलिए मजबूरन मुझे ऐसा करना पड़ा सिर्फ अपनी जान बचाने के लिए यही चीज़ ग़लत हो गई बाकी मैं ठीक हूँ।’

‘उड़ा दो ग़लती को...’

ग़लती उड़ा दी गई... धरमचंद भी साथ ही उड़ गया। इस पार हो या उस पार लिखना तब भी सकी रूका नहीं था, बल्कि यही वक्त था जब लेखकों के आगे सरकारें छोटी पड़ गई थीं। कहीं फ़ैज थे तो कहीं कृष्ण चंदर, अमृता प्रीतम तो यशपाल। दोनों तरफ़ थी आग बराबर लगी हुई... मगर फिर जो सिलसिला शुरू हुआ तो कश्मीर से शुरू होकर असम, उड़ीसा, कर्नाटक, पंजाब, महाराष्ट्र गुजरात अर्थात् कहीं नहीं गांधी के सिद्धांतों को बरज देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि सत्याग्रह का स्थान ‘बंद’ और ‘हिंसा’ ने ले लिया। राष्ट्र की संकल्पनाओं को ताक पर रखकर देश को खंड-खंड करने की साजिशें जोर-शोर से चलने लगीं। इसमें सबसे आगे आई राजनीति अलग विवाद और तात्कालिक लाभ वाली सोच। कहना न होगा कि हमारा लेखन भी इन गतिविधियों से दोधारी तलवार की तरह प्रभावित हुआ। इनमें एक ओर सच की गुहार लगाकर राष्ट्र की अस्मिता बचाने के प्रयास में लगे रचनाधर्मी थे तो दूसरी ओर ऐसे अवसरवादी भी जो राजनीति और निजी स्वार्थों से दुष्प्रेरित थे अवसरवादियों का ज़िक्र कर मैं उन्हें प्रोत्साहन क्यों दूँ, हाँ कुछ ऐसे ईमानदार लेखक अवश्य याद आते हैं। जिन्होंने अपनी लेखनी पर आँच नहीं आने दी। ‘अक्षरा’ पत्रिका के अपने एक संपादकीय में कैलाशचंद्र पंत ने अपने पाठकों का आह्वान करते हुए शीर्षक लिखा, ‘साक्षी नहीं रहे, हस्तक्षेप करें’ और इस लेख के अंत में उन्होंने चेताया है कि, ‘कश्मीर घाटी में अलगाववादी ताकतें समय-असमय भारत के विरुद्ध हिंसक प्रदर्शन करने लगती हैं। इन तत्वों का सामना करनेवाले सुरक्षाबलों को हमारे देश के लोग ही आरोपित करते हैं, उनके विरुद्ध कारवाई की माँग करते हैं। दिल्ली में इंसपैक्टर शर्मा की एंकाउंटर में मौत को लाँछित करने की कोशिश जिन नेताओं ने की, क्या उन्हें नेता कहलाने का अधिकार है।... जामिया मिलिया के कुलपति अपराधियों को क़ानूनी सहायता देने की बात करते हैं और केंद्र का ही एक मंत्री कुलपति के क़दम को उचित बताता

है...अनेक शहरों में चल रही इस चर्चा को कैसे ग़लत माना जाए कि आतंकवादी माफ़िया गिरोह के जाल में भारतीय मीडिया और राजनेता भी उलझे हुए हैं।

एक लैफ़्टिनेंट का दुःख बनकर एक कहानी फूट पड़ी है साबिर हुसैन की क़लम से कारगिल के युद्ध की पृष्ठभूमि इसमें आतंकवाद से जुड़ी है, अस्पताल में पड़े उस घायल सैनिक का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है, 'लैफ़्टिनेंट हनीफ़ हँसमुख और बहादुर था... कई बार वह इस बात से दुःखी हो जाता था कि लोग मुसलमानों को ग़द्दार क्यों कहते हैं?... वह जवान अभी भी बेसुध पड़ा था... किसी आतंकवादी हमले में ही यह जवान घायल हुआ होगा। अघोषित युद्ध में जवान शहीद होते हैं, लेकिन उनकी चर्चा तक नहीं होती, अख़बार के कोने में छोटी-सी ख़बर होती है कि आतंकवादियों के हमले में चार शहीद दस घायल, बस और लोग ऐसी ख़बर पर सरसरी नज़र डालने के बाद चुनी गई ब्रह्मांड सुंदरी या विश्वसुंदरी की ख़बर को विस्तार से पढ़ते हैं।

ध्यान देने की बात है कि इस कहानी का लेखक भी मुसलमान है और उसका मुख्य पात्र भी...लेखक ने मुसलमान समाज की उस कसक को पाठक तक पहुँचाने की कोशिश की है, जिसके अनुसार न जाने क्यों उन्हें ग़द्दार कहा जाता है।

सआदत हसन मंटों की तर्ज़ पर अपने वर्तमान लेखक असगर वज़ाहत का ज़िक्र किए बिना नहीं रहा जा सकता 'स्याह हाशिए' की तरह असगर साहब ने भी हाल ही में आत्मघाती कहानियाँ लिखी हैं, ये लघु कथाएँ आज के आतंकवाद का आईना तो हैं ही हमारे समाज की सड़ी-गली मानसिकता का दर्पण भी हैं। एक बानगी देखिए, 'एक आदमी ने दूसरे आदमी के पेट में चाकू मार दिया और फिर बोला, 'ये ले चाकू तू भी किसी के मार देना। दूसरे आदमी ने चाकू ले लिया और तीसरे आदमी के पेट में घोंप दिया। दूसरे आदमी ने तीसरे को चाकू भी भेंट किया ताकि वह चौथे के साथ भी वही कर सके जो उसके साथ हुआ है। अब पूरे देश के पेट में एक चाकू का घाव है और हर आदमी के हाथ में एक-एक चाकू है, जिसे वे एक-दूसरे के पेट में घोंप रहे हैं, उनको कोई रोकने की कोशिश करता है तो कहते हैं, 'यह हमारी आस्था का सवाल है। हमें मत रोको हमारी भावनाएँ आहत होती हैं।'

पंक्तियों के लेखक भी मुसलमान ही हैं और, 'जिस लाहौर नहीं वेख्या' से लेकर हर तरह के आतंकवाद पर पूरी शिद्दत के साथ जमकर लिख रहा है, फिर भी यदि इस पूरी की पूरी क़ौम को ही आतंकवादी बताने का ठेका कुछ सिरफ़िरों ने ले रखा है तो कोई क्या कर सकता है।

अब बात चली ही है तो शम्मी शरम्सवार-सी भी याद आ गए। आप आबू रोड में छोटी मस्जिद के पास रहते हैं लेकिन बात सारे हिन्दुस्तान की करते हैं। इन्होंने छंद, दोहे चुने हैं और सादा सी ज़बान में बच्चों जैसे सवाल पूछते फिरते हैं,

तितली-जुगून-फूल से, बोले कोयल कूक  
किसने दे दी हाथ में, बच्चों के बंदूक?  
भूखा बच्चा आपसे, करता एक सवाल  
कब पंछी के बोझ से, बरगद हुआ निढाल?

यह बरगद हैं। मेज़ॉरिटी और पंछी माइनॉरिटी और सुनिए—

रैन बसेरे जल गए, बेघर हुए गरीब  
हरे-केसरी रंग में, इन्सानी तहजीब

इंसानी तहजीब के नुमाइंदे ये हरे और केसरी रंग ही अब अपने आपसे मुलाक़ात करके अगर इस सवाल का जवाब पूछें कि आतंकवाद क्यों? तो बेहतर हो!

अनवर सुहैल साहब, शम्मी शम्सवारसी साहब से भी दो क़दम आगे बढ़ गए हैं, वह अमरीकन आतंकवाद से हमारे आतंकवाद का संवाद ही दर्ज कराए दे रहे हैं, पिछले दिनों बराक ओबामा के आने से पहले अमरीका की स्थिति भारत के आतंकवाद को लेकर इतनी साफ़ नहीं थी। इसीलिए अनवर सुहैल साहब अपनी कविता 9/11 में लिखते हैं—

अब तो हम पर होने लगा दुगने वेग से हमला,  
हमने माँगा साथ उससे, तब वह बोला,  
चुप, चुप, ख़ामोश, शांति बनाए रखो मूर्ख  
मैं बड़ा, मेरा दुःख बढ़ा,  
मेरा क्रोध बढ़ा, मेरी नफ़रत बढ़ी,  
मेरी लड़ाई बढ़ी,  
सबसे पहले मैं चुकाऊँगा, अपने दुःखों का हिसाब,  
तब तक आप ख़ामोश रहें जनाब!

अब जब अमरीका की बात चल ही पड़ी है तो कुछ और अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद की बात भी कर ली जाए। हमारे, कवि तो रवि है, सारे जहाँ का दर्द इनके जिगर में है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' आख़िर इसी धरती का घोष वाक्य है। सो कुबेरदत्त जलकर चीख़ उठते हैं—

'यह कटखना बिच्छू समय, फ़ासिस्ट समय...

रक्तिम, इस समय में, एक-एक मन-बदन  
हो चुका खांडा, सोमालिया, बोस्निया, गाज़ा पट्टी,

चलो हम ही कुछ नया करें, सूरज को भर दें फ़्रिज में..... चाँद को पैक कर, दे दें नवजात बच्चों को.... हत्यारे गाएँ लोरी.... मित्रो कुछ तो नया करें!

गाज़ा पट्टी की बात चली तो वही पहेली, फिर आकार खड़ी हो गई, 'फ़िलिस्तीन कि इज़रायल! कौन आतंकवादी? किसकी दृष्टि से देखें इस अनवरत युद्ध को? भरत भारद्वाज ने महमूद दरवेश को संघर्ष का योद्धा कवि कहा है। उनके निधन पर श्रद्धांजलि देते हुए वह उनकी ही एक कविता भी अपने लेख में उद्धृत करते हैं—

कविता है, 'पहचान'...शायद यह पहचान (आइडेंटिटी) ही है, जो एक आम इंसान को आतंकवाद के सामने डटकर खड़ा हो जाने का साहस देती है। कविता की प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं—

दर्ज करें, मैं अरब हूँ  
मेरे कार्ड का नंबर है 50,000  
मेरे आठ बच्चे हैं,  
अगले निदाघ में नौवें का जन्म होगा।  
मैं एक ऐसी संज्ञा हूँ, जिसका कोई सिरनामा नहीं है

मैं किसी से नफ़रत नहीं करता हूँ  
मैं किसी को लूटता नहीं हूँ  
लेकिन क्षुधाग्रस्त रहने पर  
मैं लुटेरों का गोश्त चबाता हूँ।

फ़ैज की परंपरा में हमारे पड़ोसी कवि अहमद फ़राज़ भी आते हैं, जिन्हें भारत सरकार ने कभी भी भारत आने से नहीं रोका। हाल ही में वह जाते रहे तो लेखकों ने उनके हवाले से ही, उन्हीं को श्रद्धांजलि देते हुए, आतंकवाद को खरी-खोटी तो सुनाई ही, अलगाववाद तथा विस्थापन की पीड़ा के ज़ख़्म भी उघाड़ दिए। कृष्णकुमार भावुक ने ऐसे ही एक लेख में फ़राज़-साहब के कई अशआर दर्ज किए हैं। मसलन—

तेरे करीब आके बड़ी उलझनों में हूँ  
मैं दुश्मनों में हूँ कि तेरे दोस्तों में हूँ

इतनी मुरव्वतें तो कहाँ दुश्मनों में थीं  
यारों ने जो कहा, मेरे मुँह पर नहीं कहा।

नहीं कहा, क्योंकि हम मुरव्वतों के मारे हुए जो हैं। जब भी मिलेंगे, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई कहेंगे, भले ही आस्तीन में कटार छिपाए घूम रहे हों, अरे भाई साहब, अगर आप भाई हैं ही, तो भाई-भाई चिल्लाने की ज़रूरत क्या है? क्या कोई भाई अपने भाई को, रोज़ सबेरे-सबेरे जगाकर, आपस में एक-दूसरे के भाई होने का एलान करता फिरता है? बहरहाल मौहब्बतों के नाम पर अहमद फ़राज़ का एक शेर न जाने कितनी रचनाओं को बौना बना देता है—

और फ़राज़ चाहिए कितनी मौहब्बतें  
माँओं ने तेरे नाम पर बच्चों के नाम रख दिए।

सरहदों की दूरिया पाटकर, एक-दूसरे रचनाकार के दर्द का मर्म समझकर, 'घायल की गति घायल जाने' उक्ति को साकार करने के काम में भी साहित्यकार अनवरत लगे हुए हैं, यह हुई ईमानदार रचनाधर्मियों की बात, अब कुछ और तरह के लेखन की भी बात करते हैं—

अफवाहों के परखच्चे उड़ाकर, आतंकवाद के हौवे को मानवीयता के धरातल पर उतारने वाली अति संवेदनशील कहानियाँ भी आजकल ख़ूब लिखी जा रही हैं। ध्येय वही है कि पाठक आतंकवाद के भय से मुक्त होकर अपने आप को सहज कर सके। कविता सूद की एक कहानी 'हंस' के गत नवम्बर अंक में छपी है। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

'जीजा जी जब भी आते थे, कहानियाँ सुनाते थे, आतंकवादियों और ख़ालिस्तानियों की, कि घर लूट लिया, मार डाला, लड़कियों का उठाकर ले गए... फिर उसे क्यों भेज दिया ऐसे अकेले?...रात का समय ....बस में दो चार ही सवारियाँ, ... वह कंडक्टर से पूछना ही चाहती थी कि क्या यही है उसका पीपल वाला कुआँ... कि सरदार ने अचानक उसका बैग उठा लिया और मोने ने अटैची और दोनों बस से छलांग लगाकर उतर गए... अब ये दो हट्टे-कट्टे, शराबी जैसे आदमी और वह नितांत अकेली अनिता दोनों के बीच अवसंत, रात, अँधेरा, सूनी सड़क कि तभी दूसरी मंज़िल पर सीढ़ियों से ऊपर एक अंधेड़-सी औरत अँधेरे में खड़ी दिखी। पीछे से उसे एक आवाज़ सुनाई दी, 'ल्यो पैण जी संभालो अपनी पैण।' अनिता ने आँखें

मिच-मिचाई, कुछ साफ़ दिखाई दिया.. अनिता अपनी बहन से लिपटकर रोए जा रही थी, पता नहीं क्यों? जाहिर है, वह अपनी ग़लत सोच पर प्रायश्चित्त कर रही होगी। मानवता पर से थोड़ी देर के लिए जो विश्वास हट गया था वह फिर से लौट आया तो हर्ष और संतोष के आँसू उमड़ पड़े। बुराई पर भलाई जीतती दिखाई दी तो मन आश्वस्त होकर फफक उठा, किंतु मैं आदमी मीडिया का भी हूँ, फिल्म, दूरदर्शन और पत्र-पत्रकारिता से जुड़ा हुआ तो थोड़ी उस तरफ़ की बात भी करूँगा। पीछे कह भी आया हूँ कि मीडिया इस प्रपंच में अपनी रोटियाँ सेकने में लगा हुआ है। निरपेक्ष मीडिया की दरकार ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। उस छटपटाहट को भी हमारे पत्रकार मित्र पत्र-पत्रिकाओं में उकेरते रहते हैं। अनुराग चतुर्वेदी ने साहस कर, निर्भीकता के साथ 'राजनेताओं' में राज ठाकरे बनने की होड़ को उजागर किया है। 'सृजन संदर्भ' के अक्टूबर-दिसंबर अंक में उन्होंने बड़े ही उपयुक्त विश्लेषण के साथ लिखा है कि 'राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण की विचारधारा को सहानुभूतिपूर्ण पुलिस-संरक्षण देने से शरद पवार की पार्टी ने महाराष्ट्र की उस छवि को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया है, जो महाराष्ट्र के सबसे कद्दावर नेता यशवंतराव चव्हाण ने 60-70 के दशक में बनाई थी।'

मीडिया के कई उदाहरण देते हुए उन्होंने निरूपित किया है कि किस तरह अलग-अलग चैनल अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं। एक-दो उदाहरण इस प्रकार हैं—

स्टार माज़ा के चैनल के हेड राजीव खांडेकर और ठाकरे के मीडिया सलाहकार राजू परुलेकर कुछ समय तक एक कंपनी में साझेदार थे। अब देखिए स्टार चैनल की मराठी बानगी। राज ठाकरे को एक एंकर 'राज साहेब' कहकर संबोधित करती है और चैनल का टोन होता है— 'उत्तर भारतीय ट्रेन में भर-भर कर आते हैं और महाराष्ट्रवासियों को पीछे नहीं रहना चाहिए। मराठी समाचार-पत्र, विशेषकर लोकसत्ता, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना की ओर काफ़ी झुका हुआ लगता है, महाराष्ट्र टाइम्स के भूतपूर्व संपादक भारतकुमार राउत तो इस वर्ष संपादकीय छोड़कर शिवसेना के राज्यसभा सदस्य बन चुके हैं। महाराष्ट्र का समाचार-जगत् भी अब संतुलित और निष्पक्ष नहीं रहा है।'

तो ये हैं हमारे खरे पत्रकार अनुराग चतुर्वेदी के विचार। अब एक अतुकांत कविता के नाम को चरितार्थ करती कुछ पंक्तियाँ और उद्धृत करना चाहता हूँ। पलाश विश्वास के बाएँ हाथ से लिखी गई यह कविता 'अशनि संकेत' कुछ इस प्रकार अपना समापन करती है—

दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और आदिवासियों के  
महाविद्रोह का समय भी है यह  
जाग उठा है नंदीग्राम  
भारतवर्ष को हत्यारों के खिलाफ़  
लाभबंद करने लगा है, नंदीग्राम!  
नंदीग्राम तुम्हें सलाम!!

पता नहीं यह लाल सलाम है क्या? और यह भी नहीं पता कि यह महाविद्रोह है कि....अब हम क्या कहें! बाहरहाल जैसा कि मैंने निवेदन किया कि मैं फिल्म माध्यम का एक विद्यार्थी हूँ और इतना ही जान पाया हूँ कि फिल्म माध्यम साहित्य का ही विस्तार है। दुर्भाग्य है तो यह कि हिंदी वालों के ब्राह्मणवाद ने फिल्म माध्यम को अपनी बिरादरी से छेक रखा

है। बेचारा फ़िल्म माध्यम वह तुलसी का पौधा है, जो आँगन तक तो आता है, किंतु घर में प्रवेश नहीं पाता। इसीलिए फ़िल्म के बिना सटती भी नहीं और फ़िल्म से पटती भी नहीं। अन्यथा साहित्य से दूर होते जा रहे हिंदी के सामान्य पाठक को आतंकवाद से जूझने का सही मार्ग सुझाने के लिए फ़िल्म माध्यम का सहारा लिया जाए तो मन्तव्य अधिक संप्रेषणीय भी होगा, सुगम और दूरगामी भी। पिछले दिनों कुछ फ़िल्में इसी प्रकार की आई भी हैं, जो अपने प्रारूप में किसी उपन्यास से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं तथा उपन्यास से कहीं अधिक संप्रेषणीय भी हैं। इन फ़िल्मों के नाम हैं— मुंबई मेरी जान, परजानिया, खुदा के लिए, (ध्यान रहे, यह एक पाकिस्तानी फ़िल्म है) आमिर, वैडनस डे, फ़ना और रंग दे बसंती.....

अतः गंभीरता का मोटा लबादा ओढ़े हिंदी वालों से, फ़िल्म माध्यम के एक छात्र के नाते स्व० रामावतार त्यागी के गीत को अपनी आवाज़ बनाकर मैं विनती करना चाहूँगा कि—

और कुछ भी न हो पर हमारा मिलन,  
 एक संदर्भ है, एक संयोग है,  
 आदि से अंत तक नीर ही नीर तुम,  
 और मैं जन्म से प्यास ही प्यास हूँ,  
 बेइरादा भटकने से क्या फ़ायदा,  
 आ यही बैठ लें हम गगन के तले  
 मैं उड़ूँ और तुम कुछ झुकाओ कलश,  
 तब कहीं दूर हों प्यास के फ़ासले  
 और कुछ भी न पर हमारी जलन,  
 एक अनुभूति है, एक वातावरण  
 आदि से अंत तक तुम महाकाव्य हो,  
 मैं अधूरा-अधूरा उपन्यास हूँ।

□ 103 एंबेसी, शास्त्रीनगर  
 लोखंडवाला सर्किल के पास  
 अंधेरी (प०) मुंबई 400053

## काव्य में अप्रस्तुत योजना

डॉ० अशोक उपाध्याय

रीडर हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

डॉ० श्यामसुंदर दास ने लिखा है कि—‘जीवन की घटनाओं और प्रकृति के बाहरी दृश्यों के जो काल्पनिक रूप इंद्रियों द्वारा मन पर अंकित होते हैं, वे भावमय होते हैं और उन भावों के द्योतक कुछ सांकेतिक शब्द हैं। अतएव भाव या मानसिक चित्र ही वह सामग्री है, जिसके द्वारा काव्य-कला विशारद दूसरे मन से अपना संबंध स्थापित करता है। इस संबंध-स्थापना की सहायक भाषा है, जिसका कवि उपयोग करता है।’<sup>1</sup> मानव-हृदय की भाषा में रमणीय कल्पना से परिपूर्ण और रागात्मक क्षणों में विरचित शब्दावली काव्य है। इसका संबंध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से ही है। अनुभूति का प्रादुर्भाव प्रत्येक मनुष्य में समान रूप से हो सकता है, परंतु अभिव्यक्ति समान रूप से नहीं होती है। कुछ व्यक्ति अनुभूति को यथावत् प्रस्तुत कर देते हैं और कुछ कलात्मक सौष्ठव से पूर्ण बनाकर प्रस्तुत करते हैं। कलात्मक सौष्ठव से पूर्ण बनाकर प्रस्तुत करने वाले व्यक्तियों का अभिव्यंजना-कौशल सहृदय समाज को प्रभावित करने में समर्थ होता है। वे अपनी मनोभावनाओं को भाषा की सहायता से परिष्कृत एवं परिमार्जित करके विषय तथा विषयी का मधुर सामंजस्य उपस्थित कर देते हैं। कवि प्रस्तुत के प्रति जिस प्रकार की संस्कारमूलक भावनाओं का उद्रेक करना चाहता है, उसी प्रकार के अप्रस्तुतों का प्रयोग करता है। अप्रस्तुत कविकल्पना प्रसूत वस्तु है, जिसका प्रयोग प्रस्तुत के रूपाकार भाव और प्रभाव को स्पष्ट तथा प्रखर बनाने के लिए किया जाता है। बिंब, प्रतीक, अलंकार, शब्दशक्ति इत्यादि का सौन्दर्य भी इसमें समाहित है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखिए—

नीलपरिधान बीच सुकुमार  
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,  
खिला हो ज्यों बिजली का फूल  
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।<sup>2</sup>

‘कामायनी’ में जयशंकर प्रसादजी ने श्रद्धा का सौन्दर्य वर्णन करते हुए बताया है कि श्रद्धा का नीले वर्ण के मेष चर्म के परिधान के बीच में अधखुला कोमल सुकुमार शरीर नीले बादलों के वन में खिले हुए गुलाबी रंग के बिजली के फूल की संभावना प्रदर्शित कर रहा था। यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से ‘नील परिधान’ के लिए मेघवन और ‘अधखुला अंग’ के लिए गुलाबी रंग में बिजली का फूल’ अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने इसकी टिप्पणी में लिखा है कि ‘इस चित्रण में कवि का ध्यान सौन्दर्य-चित्र अंकित

करने के लिए उपेक्षित वर्ण दीप्ति तथा रस एवं भाव के रंग-विधान की परंपरा की ओर गया है, क्योंकि नीला वस्त्र चिरस्थाई प्रेम का प्रतीक होता है। कवि ने नीले परिधान को 'मेघवन' तथा श्रद्धा के तीव्र काँतिपूर्ण उज्ज्वल एवं सुकुमार अंगों को बिजली के फूल के तुल्य कहकर एक मार्मिक बिंब प्रस्तुत किया है। इस सादृश्य योजना द्वारा श्रद्धा के सुकुमार अंगों की काँति एवं उनकी दिव्य आभा का चित्रण किया गया है।<sup>3</sup> किसी विषय, वस्तु अथवा व्यक्ति का वर्णन करते समय उसके आकार-प्रकार गुण क्रिया प्रभाव इत्यादि को रमणीय बनाकर हृदयंगम करने के लिए उसके समान ही अप्रस्तुतों का नियोजन आवश्यक हो जाता है। जो कवि जितना सामर्थ्यवान होता है, उतनी ही मार्मिक उसकी अप्रस्तुत योजना होती है। यह मूलतः कवि-कल्पना का व्यापार और कवि की प्रतिभा का चमत्कार है। 'काव्य की भूमि मानव-कल्पना की भूमि है। कवियों ने असंख्य रूप में अपनी कल्पना का प्रकाश किया है और अगणित प्रकार से जीव-जगत की वस्तुओं के संबंध में अपने भाव प्रकट किए हैं। जो तत्त्व उपदेशकों और धर्माचार्यों की शब्दावली में निहित होकर संसार की विरक्ति के हेतु बन गए हैं, उन्हें कवियों की वाणी पाकर जन-समाज आसानी से पी गया है। 'जहाँ रवि की पहुँच नहीं है, वहाँ कवि की पहुँच है', इस लोकोक्ति द्वारा कवि कल्पना की गति समझी जा सकती है। विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है। कल्पना के साथ कवि की कला है।'<sup>4</sup> अलंकार-योजना के दो प्रमुख पक्ष हैं— उपमेय और उपमान आधुनिक शब्दावली में ये दोनों ही प्रस्तुत और अप्रस्तुत बन गए हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अप्रस्तुत आलंकारिक वस्तु है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे औपम्यगर्भ अलंकारों तक ही सीमित माना है। 'अप्रस्तुत वस्तु या आलंकारिक वस्तु में बिंब-प्रतिबिंब भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा लाई हुई) वस्तु प्रस्तुत वस्तु के रूप रंग आदि में मिलती-जुलती हो।'<sup>5</sup> आचार्य रामदहिन मिश्र और आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र इससे सहमत नहीं हैं। आचार्य रामदहिन मिश्र के अनुसार 'उपमान अपने भीतर जितना अर्थ ग्रहण करता है, उससे कहीं अधिक अर्थ अप्रस्तुत योजना के पेट में पैठ जाता है। उपमान शब्द यह प्रकट करता है कि जहाँ तुलना हो, वहीं इसका प्रयोग उचित है और उन्हीं अलंकारों में हो सकता है जो औपम्यगर्भ हैं, जिनकी एक श्रेणी है। पर बात ऐसी नहीं है। सादृश्यगर्भ अलंकार का बहुत व्यापक क्षेत्र है। शेष अप्रस्तुत योजनाएँ प्रायः अर्थ से विशेष संबंध रखती हैं। अप्रस्तुत योजना बाहर से लायी जानेवाली सारी वस्तुओं को ग्रहण करती है। चाहे अप्रस्तुत का कैसा ही रूप क्यों न हो।'<sup>6</sup> अप्रस्तुत-योजना की परिधि बहुत व्यापक है। इसके भीतर विशेषण, विशेष्य, क्रिया इत्यादि भी सहजता से समाहित हो जाते हैं। प्रमाण के लिए महादेवी वर्मा द्वारा रचित निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय हैं—

'चुभते ही तेरा अरुण बान!

बहते कन-कन से फूट-फूट मधु के निर्झर से सजल गान!

इन कनक रश्मियों में अथाह, लेता हिलोर तम सिंधु जाग,

बुद् बुद् से बह चलते अपार उसमें विहगों के मधुर राग!'<sup>7</sup>

उपमा, रूपक और समासोक्ति अलंकार से पुष्ट उपर्युक्त प्रकृति वर्णन छायावादी काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। समासोक्ति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ प्रस्तुत कथन के द्वारा किसी अप्रस्तुत तथ्य या व्यवहार का समारोपण किया जाता है। इसमें कवयित्री ने प्रातः काल का



व्यापक चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रणयभाव का अभूतपूर्व दृश्य अंकित किया है। सूर्य का प्रियतम तथा प्रकृति का प्रेयसी के रूप में मिलन दृश्य समस्त प्रभातकालीन वातावरण को मानवीय हाव-भाव से अनुप्राणित कर देता है। 'लहराता हुआ प्रभातकालीन सागर, उस पर आच्छादित कुहरे की म्लानता, बादलों का घेरा और उस घेरे को चीरकर आती हुई अरुणाभ किरणें, श्यामल के ऊपर व्याप्त अरुणिमा का संयोजन अत्यंत स्वाभाविक तथा सरलतापूर्ण हुआ है। इसमें महादेवी जी ने जितने भी उपमानों की योजना की है, सभी में गुण धर्म रूप का पूर्ण सादृश्य है।' <sup>8</sup> बसंत ऋतु के प्रभात-काल का सौंदर्य भाव एवं दृश्य रूप से अत्यंत स्वाभाविक तथा मनोहर प्रतीत होता है। प्रकृति के व्यापक चेतना-संपन्न व्यक्तित्व को चित्रमयता प्रदान करनेवाली अप्रस्तुत योजना भावानुकूल माधुर्य से परिपूर्ण होने के कारण प्रशंसनीय है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि 'काव्य में जिनका वर्णन होता है, जो लक्ष्य होते हैं, जो अभिप्रेत रहते हैं, उन्हें प्रस्तुत कहते हैं, उनके अतिरिक्त और सब कुछ अप्रस्तुत। काव्य में जो ऐसी विधि या योजना होती है, वह अप्रस्तुत होती है। जो कारीगरी दिखाई जाती है, वह काव्य नहीं है, पर भारत में एक समय ऐसा अवश्य था कि काव्य के लिए उसको प्रधान कहा गया। अलंकार कारीगरी ही है। अलंकार ही काव्य है, यह तो यहाँ किसी ने नहीं कहा, पर उसको प्रधान प्रमुख मानने वाले होते रहे हैं।' <sup>9</sup> अप्रस्तुत योजना काव्य का ऐसा आवश्यक तत्त्व है, जो अपनी सामर्थ्य से अतीत की मधुर स्मृतियाँ, भावावेग, संभावना, आकांक्षा, उत्कंठा, उत्साह, सुख-दुख, हास-विलास और आस्वादनीय अनुभूतियों को सहज बोधगम्य बनाता है। इसके द्वारा चेतना के गंभीर, गूढ़ तथा रहस्यात्मक स्तरों को साकार रूप में निरूपित किया जाता है। 'सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसे अप्रस्तुतों की ओर जाती है, जो प्रस्तुतों के समान ही सौंदर्य, दीप्ति, कांति, कोमलता, प्रचंडता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता इत्यादि की भावना जगाते हैं। काव्य में बँधे चले आए हुए उपमान अधिकतर इसी प्रकार के हैं। केवल रूप-रंग आकार या व्यापार को ऊपर-ऊपर देखकर या नाप-जोख कर भावना पर उनका प्रभाव परखे बिना, वे नहीं, रखे जाते थे पीछे कवि कर्म के बहुत कुछ श्रमसाध्य या अभ्यास गम्य होने के कारण, जब कृत्रिमता आने लगी, तब बहुत से उपमान केवल नाप-जोख के अनुसार भी रखे जाने लगे।' <sup>10</sup> रीति स्वच्छंद कवि 'ठाकुर' ने स्पष्ट कहा है—

सीख लीन्हो मीन मृग खंजन कमलनैन  
सीख लीन्हो जस औ प्रताप को कहानो है।  
सीख लीन्हो कल्प वृक्ष कामधेनु चिंतामनि  
सीख लीन्हो मेर औ कुबेर गिरआनो है।  
बाको नहीं भूलि कहुँ बाँधियत बानो है।  
डेलसोबनाय आय मेलत सभा के बीच  
लोगन कवित्त की बो खेलकर जानो है। <sup>11</sup>

अप्रस्तुत योजना का मूल आधार साम्य है। इसके कारण अप्रस्तुतों में सजीवता और मर्मिकता का संचार होता है। साम्य को तुलना या सादृश्य समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। साम्य की व्यापक परिधि में तुलना या सादृश्य का ग्रहण एक विशिष्ट दृष्टिकोण से किया जाता है। यह विशिष्ट दृष्टिकोण है—दो पदार्थों में अन्तर्निहित संबंध की व्यंजना। इस संबंध को

अभिव्यक्त करनेवाली कवि-दृष्टि कोरी तुलना या सादृश्य पर टिकी नहीं होती है। यह अपेक्षाकृत अधिक गहरी और तलस्पर्शी दृष्टि है, जो पदार्थों के भीतर निहित संबंध को सूक्ष्म साम्य दृष्टि द्वारा सौंदर्यशाली ढंग से व्यंजित कर देती है। उपमा ही नहीं, समस्त औपम्यमूलक तथा विरोधमूलक अलंकारों के मूल में साम्य की स्थिति किसी-न-किसी प्रकार अवश्य होती है। साम्य तीन प्रकार का होता है—सादृश्य संबंध अर्थात् रूप एवं आकार की समानता, साधर्म्य अर्थात् गुण एवं क्रिया की समानता और प्रभावसाम्य।

सादृश्य संबंध पर आधारित अप्रस्तुतों का प्रयोग प्रस्तुत के आकार एवं रूप की अनुभूति को तीव्रतर बनाने के लिए किया जाता है। ये अप्रस्तुत अधिकांशतः रंग रूप और आकार की दृष्टि से प्रस्तुत के समान ही होते हैं। इनका प्रमुख कार्य प्रस्तुत के आकार-प्रकार रंग तथा रूप इत्यादि को भावात्मक एवं सहज संवेद्य बनाना है। जिस स्थान पर ये अप्रस्तुत इस कार्य में असफल प्रतीत होते हैं, वहाँ इनका प्रयोग निरर्थक हो जाता है। इनकी सार्थकता काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। प्रमाण के लिए चंद्रवरदाई द्वारा रचित पृथ्वीरासो के कयमास बध की निम्न पंक्तियाँ देखिए। इनमें 'बालहंस' के आसन पर विराजमान सरस्वती का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

कयंद केस मुक्करे, उरग बास बिठरे।  
 कपोल रेख गातयो, उदंत इंदु प्रातयो।  
 वभूव जूव पंचये, कलंक राह बंचये।  
 श्रवन्न ताट पिष्यो, अनंग रथ चक्कयो।  
 उछमि वारिषंजयो, तिरंति रूपरंजयो।  
 सुबाल कीर सुद्धयो, तकंत रत्त बिंबयो।  
 दिपंत तुच्छ दिठट्यो, बिची अनार फुट्टयो।  
 सुग्रीव कंठ मुत्तयो, सुमेर गंग पत्तयो।<sup>12</sup>

देवी सरस्वती की काली अलकावली उन्मुक्त हो रही थी, जो कि ऐसी प्रतीत होती थी कि मानो सुगंध लेने के लिए सर्प एकत्रित हो गए हों। सुंदर कपोलों की रेखा प्रातः काल में उदित चंद्रमा की सम्भावना स्पष्ट कर रही थी। मुखमंडल ऐसा प्रतीत होता था कि मानो चंद्रमा राहु के कलंक से अपनी सुरक्षा के लिए मृग-रथ के जुए को शीघ्रतापूर्वक खींचने में तत्पर हो। कानों के कुंडल कामदेवके रथ-चक्र प्रतीत हो रहे थे। दमकते हुए छोटे-छोटे दाँत बीच में फटे हुए अनार की सम्भावना व्यक्त कर रहे थे। ग्रीवा में निहित मोतियों की माला सुमेरू पर प्रवाहित गंगा के जैसी ज्ञात होती थी। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से प्रयुक्त सभी अप्रस्तुतों का रूप-सादृश्य अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से सार्थक तथा प्रभावपूर्ण है। एक अन्य उदाहरण देखिए—

कौन की नागरि रूप की आगरि जाति लिए संग कौन की बेटी।  
 जाको लसै मुखचंद समान सुकोमल अंग निरूप लपेटी।  
 लाल रहौ चुप लागि है डीठि सुजाके कहूँ उर बातन भेटी।  
 टोकत ही टटकार लगी रसखानि भई ज्यों कारिख पेटी।<sup>13</sup>

उपर्युक्त छंद में रीति स्वच्छन्द कवि रसखान ने सादृश्य के आधार पर नायिका के लिए 'कारिख पेटी' और उसके मुख के लिए 'चंद' अप्रस्तुत उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों के

माध्यम से चुना है। दोनों में रूप और रंग की समानता द्रष्टव्य है। रीतिकालीन काव्य में सादृश्यमूलक अप्रस्तुतों के आधार पर अतिशय चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। इस प्रवृत्ति के कारण सबसे अधिक बदनामी आचार्य केशवदास जी की हुई है। इस संदर्भ में उनका सूर्योदय वर्णन पठनीय है—

अरुण गात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय।  
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय।  
परिपूरन सिंदूर पूर कैधों मंगल घट।  
किधौं सक्र को छत्र मद्यो मानिक मयूख पट

कै स्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।  
यह ललित लाल कैधों लसत दिग्भामिनी के भाल को।<sup>14</sup>

रूपक और संदेह अलंकार के साथ-साथ उत्प्रेक्षा अलंकार से विभूषित इस छंद में 'अरुण गात पद्मिनी प्राणनाथ' (उदीयमान सूर्य) के लिए 'कोकनद कोक प्रेममय', 'परिपूरण सिंदूर पूर मंगलघट', 'माणिक मयूख पट मंडितशक्र को छत्र', कापालिक काल का स्रोणित कलित कपाल' तथा दिग्भामिनी के भाल का ललित लाल' अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। 'सभी उपमान तेज संचय करते हुए प्रातःकालीन सूर्य की अभिव्यंजना करते हैं। प्रत्येक व पंक्ति में नवीन अप्रस्तुत योजना होते हुए भी यहाँ प्रस्तुत अर्थात् उदीयमान सूर्य का ही चित्र प्रधान है।'<sup>15</sup> आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'केशव की रचना को सबसे अधिक विकृत और अरुचिकर बनानेवाली वस्तु है, आलंकारिक चमत्कार की प्रवृत्ति, जिसके कारण न तो भावों की प्रकृत व्यंजना के लिए जगह बचती है, न सच्चे हृदयग्राही वस्तु वर्णन के लिए।'<sup>16</sup> यदि ध्यान से देखें तो इनकी कल्पना चमत्कार प्रदर्शन के लिए सदैव तत्पर मस्तिष्क का क्रिया-कलाप है, सहृदयजनित अनुभूति इसमें अपेक्षाकृत अत्यंत अल्पमात्रा में परिलक्षित होती है। डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थवाल ने लिखा है कि 'कभी-कभी इनकी कल्पना ऐसे दृश्यों को अलंकार रूप में सामने लाती है, जिनसे प्रस्तुत वस्तु का असली स्वरूप कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं होता, पर जिसे प्रत्यक्ष करना अलंकारों का मुख्य उद्देश्य है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत वस्तु के बीच केवल किसी बात में बाहरी समानता ही नहीं होनी चाहिए, उन दोनों को एक समान भावनाओं का उद्भावक भी होना चाहिए।'<sup>17</sup> डॉ० बड़थवाल जी ने मुलायम कपड़े के लिए बरसात की धुली हड्डी और मक्खन की समानता का उदाहरण देते हुए, अपने कथन को सही सिद्ध करने के लिए स्पष्ट किया है कि 'यदि आप किसी मुलायम कपड़े की श्वेतता की उपमा देते हुए बरसात की धुली हड्डी से उसकी समानता करना चाहें तो कहाँ तक उसके प्रति लोगों की रुचि को आकर्षित कर सकेंगे? हाँ, मक्खन के साथ उसकी समानता करने से अवश्य यह काम हो सकता है। 'मक्खन जीन' नाम रखनेवाले ने अलंकार की सब आवश्यकताओं का ध्यान रखा है। मक्खन कोमल और श्वेत होने के साथ-साथ प्रिय वस्तु है। जबकि हड्डी कठोर तो है ही, घृणा भी पैदा करती है। केशव का बालारुण सूर्य को देखकर यह संदेह करना कि— 'कै स्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को' हड्डी वाली उपमा के ही समान है।'<sup>18</sup> एक स्थान पर शब्द सादृश्य (नाम सादृश्य) के आधार पर भी कवि ने चमत्कार दिखाते हुए त्रेतायुग की विषयवस्तु में द्वापर युग के पांडव वीरों को अप्रस्तुत रूप में ग्रहण कर लिया है—

अर्जुन की प्रतिमा सम लेखौ।  
 अर्जुन भीम महामति देखौ।  
 है सुभगासमदीपति पूरी।  
 सिंदुर और तिलकावलि रूरी।<sup>19</sup>

ऐसा सभी स्थलों पर नहीं है। कुछ स्थलों पर केशवदास जी ने उचित अप्रस्तुतों का चयन भी किया है। उनसे प्रस्तुत के रूपाकार भाव तथा प्रभाव को स्पष्ट एवं प्रखर बनाने में पर्याप्त सहायता भी मिली है। 'सीता स्वयंवर' में सुसज्जित राजसभा में 'मंचन की अवली' के लिए प्रयुक्त उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से गृहीत सादृश्य विधान देखिए—

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल धाई।  
 ईसमनो बसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।  
 तामँह केसवदास बिराजत राजकुमार सबै सुखदाई।  
 देवन स्यों जनु देवसभा सुभसीय स्वयंवर देखन आई।<sup>20</sup>

देवपुरुषों के समान राजकुमारों की राजसभा भी देवसभा जैसी संभावना से परिपूर्ण होनी चाहिए। कवि ने इस तथ्य को प्रतिपादित करने के लिए ज्योत्सना से परिपूर्ण चंद्रमा का परिवेश अर्थात् चन्द्रमंडल के सादृश्य की स्थापना गजदन्तमयी स्वच्छ निर्मलश्वेत आभा से परिप्लावित मंचो की अवली के लिए किया है। वास्तविकता यह है कि केशवदास जी की चमत्कारों से अच्छादित अप्रस्तुत योजना उनके युग की देन है। वह जिस काव्यधारा का श्रीगणेश कर रहे थे उसमें तुलसी और सूर के साहित्य के समक्ष टिकने के लिए चमत्कार के अतिरिक्त और बचा ही क्या था? अगर हम उनकी अप्रस्तुत-योजना के साथ न्याय करना चाहते हैं तो हमें उनके काव्य के ऐसे स्थलों का अनुशीलन करना चाहिए, जिनमें अप्रस्तुत योजना और भाव-व्यंजना का सम्यक् स्वरूप विद्यमान हो। चमत्कारशीलता के कठोर आग्रह ने ही उनके कविरूप को कुछ सीमा तक धूमिल किया है, लेकिन इससे वे रीति काव्यधारा के प्रवर्तक आचार्य अवश्य बन गए हैं। आचार्य केशवदास जी के 'कृतित्व की दो दिशाएँ हैं— आचार्यत्व एवं कृतित्व। दोनों ही दिशाओं में उनकी रूढ़िप्रियता और प्रयोगशीलता साथ-साथ चल रही है। उस युग में काव्यशास्त्रीय रूढ़ियों का परिपालन भी केशव के सामन किसी कवि ने नहीं किया और भाषा एवं काव्यरूपों-संबंधी इतने प्रयोग भी कोई कवि नहीं कर सका। वास्तव में प्रयोग तो परम्पराभुक्त सामग्री के आधार पर ही किए गए, पर उस सामग्री को केशव की कल्पना नवीन संयोजनों में ढालती रही। समस्त भारतीय संस्कृति, अनेक शास्त्रों एवं पुराणों की परंपरा केशव-साहित्य में पुनरुज्जीवित हो उठी है। इन समस्त स्रोतों ने ही केशव के अप्रस्तुत विधान को समृद्ध एवं व्यापक बनाया है।'<sup>21</sup> डॉ॰ श्यामसुंदर दास जी ने भी इस तथ्य का समर्थन करते हुए केशवदास जी को रीतिकाल का प्रथम आचार्य घोषित किया है। उनके अनुसार— 'रीतिकाल के इन प्रथम आचार्य केशवदास का स्थान हिंदी में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। उन्हें हृदयहीन कहकर संबोधित करने में हम उनके प्रति अन्याय करते हैं, क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानी-समझी हृदयहीनता है, और फिर अनेक स्थलों में उन्होंने पूर्ण सहृदय होने का परिचय दिया है। जिस कवि की रसिकता वृद्धावस्था तक बनी रही, उसे हृदयहीन कहा भी कैसे जा सकता है? यह बात अवश्य है कि केशवदास उन कवि पुंगवों में नहीं गिने जा सकते, जो एक विशिष्ट

परिस्थिति निर्माता हों। वे तो अपने समय की परिस्थिति द्वारा निर्मित हुए हैं और उसके प्रत्यक्ष प्रतिबिंब हैं।’<sup>22</sup> केशवदास जी की चमत्कारशील प्रवृत्ति का प्रभाव रीतिकाल के लगभग सभी कवियों पर किसी-न-किसी प्रकार पड़ा है। रीतिसिद्ध कवि बिहारी भी इससे अछूते नहीं हैं। उन्होंने भी इसी प्रकार के कुछ प्रयोग किए हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित दोहा देखिए—

मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि-केसरि आड़ गुरु।

इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत।<sup>23</sup>

नायिका के मुख पर लगी हुई लाल बिंदी और केसर की पीली आड़ को देखकर नायक के नेत्रों में अनुराग उमड़ आया है। मंगल ग्रह का रंग ज्योतिषशास्त्र में लाल और बृहस्पति का रंग पीला माना गया है। मुख और चंद्रमा का सादृश्य लोक-प्रसिद्ध है। नारी शब्द नायिका के अर्थ में आया है। कवि ने इसे श्लेष के चमत्कार हेतु ज्योतिषशास्त्र की चंडा, समीरा इत्यादि नाटियों के अर्थ में भी ग्रहण करके जगद्व्यापिनी वर्षा का योग रूपक अलंकार के माध्यम से प्रकट किया है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने बताया है कि ‘केशव के प्रभाव से समझिए या चमत्कार की रुचि के कारण बिहारी की रचना में कहीं-कहीं ऐसी अप्रस्तुत योजना भी है, जो केवल शास्त्रकथित रूप रंग को लेकर है, उसमें रूप ग्रहण कराने और रमणीयता उत्पन्न करने पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। किसी नायिका की आँखें कमल के पत्र की भाँति कहीं जाएगी, पर क्रोध में भरे किसी व्यक्ति की आँख के लिए यही कहा जाता है कि वे आँगारे की तरह लाल हैं। केवल रंग का सहारा लेकर ऐसे रूपक बाँधना काव्योपयुक्त नहीं। कवि ने उपमान के लिए आकाश से तारे उतारे हैं। केवल रंग का साम्य और वह भी ज्योतिष की पुस्तकों में वर्णित नायिका के मुख पर बिंदु केसर आदि के कारण जो शोभा होती है उसे सामने लाने में यह नक्षत्र संस्था किसी प्रकार समर्थ नहीं।’<sup>24</sup> श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी सादृश्य-विधान के आधार पर अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया है—

उन्नत हिमाचल से धवल यह सुरसरी यों टूटती।

मानो पयोधर से धरा के दुग्ध-धारा छूटती।

भूषण सदृश उडुगण हुए मुखचंद्र शोभा छा रही।

विमलांबरा रजनी बधू अभिसारिका-सी जा रही।<sup>25</sup>

उपर्युक्त पंक्तियों में हिमालय से प्रवाहित गंगा के लिए ‘धरा के पयोधर से छूटती दुग्धधारा’ अप्रस्तुत उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से आया है। यदि कालिदास ने हिमालय को पृथ्वी का मानदण्ड कहा है तो गुप्त जी ने ऊपर उठे हुए आकार को दृष्टि में रखकर गंगा की दुग्ध-धवल धारा से संकेत ग्रहण करते हुए पयोधर के रूप में स्वीकार किया है। ‘विमलांबरा’ रजनी’ के लिए ‘अभिसारिका बधू’ और ‘उडुगण’ अर्थात् तारों के लिए ‘भूषण’ अप्रस्तुत उपमा अलंकार द्वारा प्रयुक्त हुए हैं। मुखचंद्र’ में रूपक है। आचार्य मतिराम ने अभिसारिका नायिका लक्षण इस प्रकार दिया है—

पियहि बुलावै आप कै, आपहि पिय पै जाय।

ताहि कहत अभिसारिका जो प्रवीन कविराय।<sup>26</sup>

अभिसारिका नायिका के मुख्य भेद हैं— मुग्धा अभिसारिका, मध्याभिसारिका, प्रौढ़ा अभिसारिका, परकीया कृष्णाभिसारिका और शुक्लाभिसारिका, ‘उजेरी रात्रि के अनुकूल वेश

बनाकर प्रिय संभोगार्थ रतिसंकेत स्थान को गमन करनेवाली अथवा पिय को बुलाने वाली परकीया स्त्री को शुक्लाभिसारिका' कहते हैं।<sup>27</sup> यहाँ पर बधू को शुक्लाभिसारिका कहना विचारणीय है। रीतिकालीन आचार्य मतिराम ने इसे 'चंद्राभिसारिका' का नाम दिया है। इसके उदाहरण हेतु उन्होंने लिखा है—

आँगन में चंदन चढ़ाय घनसार सेत  
सारी छीर फेन की-सी आभा उफनाति है।  
राजत रुचित रुचि मोतिन के आभरन  
कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है।  
कवि मतिराम प्रान पयारे सों मिलन जात  
करिकै मनोरथन मृदु मुसकाति है।  
होति न लखाई है निसिचंद की उज्यारी मुख  
चंद की उज्यारी तन छाहीं छिपि जाति है।<sup>28</sup>

कविवर सुमित्रानंदन पंत ने भी परंपरागत प्रयोगों में मौलिकता का विन्यास करते हुए 'नौका विहार' नामक कविता में 'लहरों के लिए 'घूँघट', 'दशमी के शशि के तिर्यक मुख के लिए 'मुग्धा' नायिका तथा गंगा के दूरस्थ किनारों के लिए 'दो बाँहों अप्रस्तुत का प्रयोग क्रमशः रूपक, उपमा तथा मानवीकरण अलंकार के माध्यम से किया है—

लहरों के घूँघट से झुक-झुक,  
दशमी का शशि निज तिर्यकमुख,  
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक।  
अब पहुँची चपला बीच धार।  
छिप गया चाँदनी का कगार।  
दो बाँहों से दूरस्थ तीर,  
धारा का कृश कोमल शरीर,  
आलिंगन करने को अधीर।<sup>29</sup>

पंत जी की यह अप्रस्तुत योजना अत्यंत सटीक तथा मनोमुग्धकारी प्रतीत होती है। पद्माकर ने मुग्धानायिका लक्षण यह दिया है—

झलकत आवै तरु नई नई जासु अँग अंग  
मुग्धा तासों कहत हैं जे प्रवीन रस रंग।<sup>30</sup>

निराला जी ने 'राम की शक्ति पूजा' में सादृश्य विधान को अप्रस्तुत रूप में व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हुए केशों की श्यामलता को राम के व्यक्तित्व से जोड़कर मौलिकता प्रदान करने का भव्य प्रयास किया है। सांध्यकालीन वातारवण की पृष्ठभूमि में राम के मन का अन्तर्द्वंद्व भी इसमें अनायास समाहित हो गया है—

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण,  
श्लाघ धनुगुण है कटिबंध स्रस्त तूणीर-धरण  
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल  
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,  
चकटती दूर ताराएँ हों कहीं पार।<sup>31</sup>

डॉ० रामविलास शर्मा ने इसकी समीक्षा करते हुए स्पष्ट किया है कि 'राम के सिर पर जटाओं का ही मुकुट था, वह भी खुला गया है। घनी केशराशि पीठ, छाती और बाँहों पर ऐसे फैल गई है जैसे दुर्गम पर्वत पर अंधकार फैल गया हो। इस उपमा की सार्थकता इस बात में नहीं है कि राम की केशराशि अंधकार के समान घनी और काली है, वरन् इसमें है कि राम को जो अंधकार घेरे हुए है, उसकी ओर इस उपमा में संकेत है। अंधकार महज उपमान नहीं, वास्तविक है, धरती से आकाश तक फैला हुआ है। इसके अलावा यहाँ एक पर्वत भी है, जिसके पास राम बैठे हुए हैं। उस पर्वत पर अंधकार उतरा है, उपमान के दूरवर्ती संसार में नहीं, कथा के प्रत्यक्ष निकटवर्ती संसार में'<sup>32</sup> और फिर राम का शरीर भी तो पर्वत की तरह दृढ़ और श्यामल है।

साधर्म्य प्रधान अप्रस्तुतों का उद्देश्य प्रस्तुत के धर्म अथवा गुण एवं क्रिया की अनुभूति में सहायक होना है। 'सादृश्य के द्वारा जहाँ कवि वस्तु के रूप की चेतना को संवेदनीय बनाता है, साधर्म्य के द्वारा वहीं उसका अभीष्ट वस्तु के धर्म अथवा गुण की अनुभूति को संवेदनीय बनाना होता है।'<sup>33</sup> इस प्रकार के अप्रस्तुतों द्वारा कवियों ने जहाँ आलंबन को परिस्थिति विशेष में डालकर उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करने तथा उन्हें भाव-प्रवण बनाने के लिए अप्रस्तुत योजना की है, वहाँ उनका भावोद्रेक पूर्ण स्वरूप सराहनीय है—  
लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं।

ये मुँहजोर तुरंग ज्यौ ऐंचत ही चलि जाहिं।<sup>34</sup>

बिहारी के उपर्युक्त दोहे में लाज के लिए लगाम और नैना अर्थात् नेत्रों के लिए 'मुँहजोर तुरंग' अप्रस्तुत साधर्म्य के आधार पर गृहीत हुए हैं। इनमें रूपक और उपमा अलंकार का चमत्कार भी सहज रूप में दृष्टिगत होता है। इनसे नायिका की नायक के प्रति अनुरागपूर्ण मनोदशा की अभिव्यंजना यथेष्ट मात्रा में हुई है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र की मान्यता है कि 'अप्रस्तुत वही उत्तम समझा जाता है, जिसमें साधर्म्य हो। अप्रस्तुत योजना पदार्थ के लिए भी होती है और परिस्थिति के लिए भी। परिस्थिति के लिए अप्रस्तुत-योजना करने में साधर्म्य का ध्यान बहुत आवश्यक होता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा में तो पदार्थ और परिस्थिति दोनों के उदाहरण आते हैं, पर तुल्ययोगिता, निदर्शना आदि में परिस्थिति की ही योजना पर ध्यान रखना पड़ता है।'<sup>35</sup> रीति स्वच्छंद कवि 'बोधा' द्वारा रचित निम्न छंद भी इस संदर्भ में पठनीय है—

अति छीन मृनाल के तार हुते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।

सुई बेह को द्वार सकीन तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है।

कवि बोधा अनी घनी ने जहुते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।

यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।<sup>36</sup>

यहाँ कवि ने 'प्रेमपंथ' के लिए 'मृनालतार', 'नेजा की अनी', 'तरवार की धार', अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। इनमें पहले दो अप्रस्तुत व्यतिरेक की स्थिति में और तीसरा वाचक लुप्तोपमा, के माध्यम से आया है। ये अप्रस्तुत सामंतकालीन समाज और राजनीतिक जगत के कला-कौशल से गृहीत हैं। इन सबका संबंध उस युग की प्रसिद्ध नृत्यशैली से है, जो कि राज

दरबारों में कुशल नर्तक और नर्तकियों का चमत्कारशील वैशिष्ट्य मानी जाती थीं। 'परतीति को टाँड़ों लदावनों है' में रूपक अलंकार है। भारतेन्दु जी की निम्न पंक्तियाँ भी साधर्म्य की दृष्टि से अवलोकनीय हैं—

भरित नेह नवनीर नित, बरसत सुरस अथोर।

जयति अलौकिक घन कोऊ लखि नाचत मनमोर।<sup>37</sup>

इसमें 'नेह नवनीर' और 'मनमोर' में रूपक अलंकार है। 'अलौकिक घन' में रूपकातिशयोक्ति है। 'भारतेन्दु जी वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित कृष्णभक्त वैष्णव थे। रीतिकालीन कवियों की तरह उनकी कविता 'राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो' नहीं थी। वैष्णव भक्त अपने पुरुषार्थ के आधार पर नहीं, वरन् अपने आराध्य की कृपा के बल पर ही अपने उद्धार की कामना करता है। सूर की भाँति भारतेन्दु में दीनता के साथ अक्खड़पन भी था। कृष्ण उनके सखा और प्रियतम थे।<sup>38</sup> इसीलिए उन्होंने श्रीकृष्ण के घन श्यामल रूप के वैशिष्ट्य को दृष्टि में रखते हुए 'अलौकिक घन' की रूपकातिशयोक्ति प्रदान की है। यहाँ साधर्म्यमूलक अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से निरालाजी की 'नववय नायिका' लतिका और उसके प्रिय 'तरु' का रूपक भी द्रष्टव्य है—

सखि बसंत आया

भरा हर्ष वन के मन,

नवोत्कर्ष छाया।

किसलय वसना नववय लतिका

मिली मधुर प्रिय उर तरु पतिका

मधुप वृंद बंदी

पिकस्वर नभ सरसाया।<sup>39</sup>

मानवीकरण और रूपक अलंकार के माध्यम से कवि ने परंपरागत उपमानों को नवोत्कर्ष प्रदान किया है। छायावादी काव्याकाश ऐसे ही परंपरा से विकसित होकर भी परंपरा से उन्मुक्त उड़ान भरने वाले विहंगवृंद के सरस स्वर से प्रतिष्ठित हुआ है। कविवर सुमित्रानंदन पंत ने 'रश्मिबंध' की भूमिका में लिखा है कि 'छायावादी कविता ने सोई हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में नवीन रागात्मकता की माधुर्य ज्वाला, नवीन जीवन-दृष्टि का सौंदर्यबोध तथा नवीन विश्व मानवता के स्वप्नों का आलोक उड़ेल्ला। छायावाद से पहले खड़ीबोली का काव्य भाव तथा भाषा की दृष्टि से निर्धन नहीं रहा। छायावाद ने उसमें अँगड़ाई लेकर जागते हुए चैतन्य का भाव वैभव भरा। विश्वबोध के व्यापक आयाम, लोकमानव की नवीन आकांक्षाएँ, जीवन-प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत अहंता के मांसल सौंदर्य का परिधान उसने पहले-पहल हिंदी कविता को प्रदान किया।'<sup>40</sup> इसका प्रभाव कवियों की अप्रस्तुत योजना पर भी पड़ा है। उदाहरण के लिए पंत जी द्वारा रचित 'परिवर्तन' कविता की निम्न पंक्तियाँ देखिए—

जगत की सुंदरता का चाँद

सजा लांछन को भी अवदात

सुहाता बदल, बदल दिन-रात

नवलता ही जग का आह्लाद

स्वर्ण शैशव स्वप्नों का जाल



मंजरित यौवन सरस रसाल,  
प्रौढ़ता छाया-वट सुविशाल,  
स्थविरता नीरव सायंकाल।<sup>41</sup>

इसमें कवि ने संसार के सौंदर्य को नवलता के आह्लाद के परिप्रेक्ष्य में चाँद का रूपक प्रदान किया है। उसका दिन-प्रतिदिन रूप बदलकर अग्रसर होना संसार के परिवर्तनशील नूतन आनन्द का प्रतीक है। बचपन अर्थात् शैशव स्वप्नों का सम्मोहन जाल है। पुष्प की तरह प्रफुल्लित अर्थात् पूर्णतया विकसित आनन्दमय यौवन 'सरस रसाल' है और प्रौढ़ता दूसरों की गरमी को दूर करनेवाला 'छायावट' है। वृद्धावस्था नीरव सायंकाल है। इन सभी में रूपक अलंकार है। 'सुनहले शैशवकाल में शिशु केवल स्वप्नों का जाल बुनता रहता है। यौवन इसी प्रकार आनंदपूर्ण होता है, जिस प्रकार डाल के फल सरस और रसीले बन जाते हैं। प्रौढ़ता उस वट की विशाल छाया की भाँति है, जो दूसरो को आनन्द प्रदान करती है और वृद्धावस्था सायंकाल की नीरवता की भाँति हृदय भेदी होती है।' <sup>42</sup> रूपक, अपह्नुति और उपमा अलंकार के माध्यम से दिनकर जी की 'उर्वशी' की कमनीयता भी दर्शनीय है—

क्षण में अगाध, सिंधु हो जैसे आलोड़न में,  
और पुनः वह शांति, नहीं जब पत्ते भी हितले हैं।  
और अभी यह भाव गोद में पड़ी हुई मैं जैसे  
युवती नारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता हूँ।<sup>43</sup>

श्री गजानन माधव मुक्तिबोध द्वारा विरचित 'भूल-गलती' का जिरह बख़्तर पहनकर दिल के तख़्त पर बैठने का साधर्म्य-विधान भी यहाँ उल्लेखनीय है—

भूल-गलती  
आज बैठी है जिरह बख़्तर पहनकर  
तख़्त पर दिल के,  
चमकते हैं। खड़े हथियार उसके दूर तक,  
आँखें चिलकती हैं, नुकीले तेज पत्थर-सी,  
खड़ी हैं सिर झुकाये सब कतारें  
बे जुबाँ बस सलाम में,  
अनगिनत खंभों व मेहराबों थमे दरबारे आम में।<sup>45</sup>

प्रभावसाम्य के आधार पर की गई अप्रस्तुत-योजना सर्वाधिक सूक्ष्म एवं भावाभिव्यंजक होती है। सादृश्य एवं साधर्म्य के आश्रय से कवि वस्तु के बाह्य सौंदर्य को अभिव्यंजित करने का प्रयास करता है। प्रभावसाम्य में अनुभूति के माध्यम से निष्पन्न प्रभाव को संवेदनीय बनाकर उससे संबंधित बिंबात्मक रूप को भी ग्रहण करने योग्य बना देता है। इस पर आधारित अप्रस्तुत-योजना में कवि की गहरी अंतर्दृष्टि विद्यमान होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट कहा है कि 'कहीं-कहीं सादृश्य या साधर्म्य के अत्यंत अल्पमान रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव- साम्य को लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप में या प्रतीकवत् होते हैं, जैसे सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक ऊषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, दीप्तिमान या

काँतिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अँधेरी रात संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भावातरंग के लिए झंकार, भाव-प्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि'<sup>45</sup> प्रभाव साम्यमूलक अप्रस्तुतों के संदर्भ में रीति स्वच्छंद कवि घनानंद का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका एक कवित्त देखिए—

आस ही अकास मधि अवधि गुनै बढ़ाय  
चोपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सौ यहै।  
निपट कठोर ये हो ऐँचत न आप ओर  
लड़िले सुजानसों दुहेली दसा को कहै।  
अचिरजमई मोहि भई धन आनंदयौ  
हाथ-साथ लाग्यौ पै सभी पन कहूँ लहै।  
विरह-समीर को झकोरनि अधीर नेह  
नीर भीज्यौ जीवतऊ मुड़ी लौं उड़यो रहै।<sup>46</sup>

इसमें 'आस-अकास', 'अवधिगुन', 'विरह समीर' और 'नेह-नीर' में रूपक अलंकार है। 'खेल सो' और 'गुड्डी लौ' में उपमा अलंकार है। 'हाथ साथ लाग्यौ पै समीपन कहूँ लहँ, में विरोधाभास है। 'नीर भी ज्यौ तऊ उड़यो रहै' में विभावना है और 'गुन' में श्लेष अलंकार भी है। श्री चंद्रशेखर मिश्र ने टिप्पणी की है 'विरह की हवा लगने से हृदय को उकर कहीं का कहीं चला जाना चाहिए। गुड्डी तो हवा लगने पर समीर के झकोर से ठहर नहीं सकती। पर जीवटिका है, झकोर सहता है, फिर भी उड़ा रहता है। आशा के आकाश में टिका है, टंगा है। आँधी आने पर ही गुड्डी की दुर्गति हो सकती है, कहीं पानी भी बरसने लगे तो गुड्डी और शीघ्र गलकर फट जाए। यहाँ उद्वेग की वायु और आँसू के गिरने से भी जीव सब कुछ सहता डटा है। समीर विरह के कारण है। नीर स्नेह के कारण है।'<sup>47</sup> आँसू भीगकर भी गुड्डी की तरह उड़ने में व्यतिरेक की स्थिति स्पष्ट है, जो कि घनानंद जैसे कुशल कवि की कल्पना का चमत्कार है। प्रशंसनीय भी है और प्रभावशाली भी है। इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी में प्रभाव साम्यमूलक अप्रस्तुत-सौष्ठव द्रष्टव्य है—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ  
मैं शालीनता सिखाती हूँ,  
मतवाली सुंदरता पत्र में  
नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ।  
लाली बन सरल कपोलों में  
आँखों में अंजन-सी लगती,  
कुंचित अलकों-सी धुँधराली  
मन की मरोर बनकर जगती।<sup>48</sup>

इसमें 'नूपुर-सी' में, 'अंजन-सी' में और 'मन की मरोर' में उपमा अलंकार है, इसे मालोपमा का नाम दिया जा सकता है, क्योंकि जहाँ एक ही उपमेय के बहुत से उपमान माला जैसे बनकर प्रयुक्त होते हैं, वहाँ मालोपमा की स्थिति होती है। लज्जा कामदेव की पत्नी रति की प्रतिनिधि और प्रतिकृति है। वह युवतियों के मनोविकारों को अनुशासित करके उन्हें विनम्र

और शालीन बनाने का प्रयास करती है और उनके प्रेम-भाव के प्रति उन्मादोन्मुख स्वभाव के मार्ग में गति अवरोधक बनकर उपस्थित होती है। जिस प्रकार नृत्य कला में पारंगत नृत्यांगना के पैरों में लिपटे हुए घूँघरू अपने ध्वनि संचार से उसे सावधानी पूर्वक नृत्य करने के लिए प्रेरित करते हुए उसकी निर्वाध गति को नियन्त्रित करने का सफल प्रयत्न करते हैं। यही कार्य लज्जा का है। प्रसाद जी का यह प्रभावसाम्य अत्यन्त सटीक और भावाभिव्यंजक सिद्ध हुआ है। आचार्य रामदहिन मिश्र ने लिखा है कि 'जब यह लज्जा उत्पन्न होती है, तब स्वभावतः गाल लाल हो उठते हैं। कहीं-कहीं यह ललाई कान तक फैली हुई वर्णित होती है। लज्जा के उत्पन्न होने से आँखों झुक जाती है, जिससे सौंदर्य की वृद्धि हो जाती है। अंजन लगाने से आँखों का सौंदर्य निखर पड़ता है। आँखों में काजल न लगा रहने पर भी ऐसा भान होता है, जैसे वह लगा हुआ हो। यह लज्जा की ही महिमा है। इसमें साम्य का आधार सूक्ष्म सौंदर्य है। मन में मरोर तभी उठती है, जब उसमें लज्जा का प्रवेश होता है। इसमें ऐंठन का सूक्ष्म आधार लेकर ही कुंचित अलकों की अप्रस्तुत योजना कर दी गई है।'<sup>49</sup> श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी ऐसा ही सूक्ष्म आधार लेकर प्रेयसी को 'वीणा की मृदु झंकार', उसके साथ संग को 'पावन गंगास्नान' और उसकी वाणी में 'त्रिवेणी की लहरों का गान' प्रभावसाम्य के आधार पर अनुभव किया है—

एक वीणा की मृदु झंकार  
कहाँ है सुंदरता का पार  
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि  
दिखाऊँ मैं साकार।  
तुम्हारे छूने में था प्राण  
संग में पावन गंगा स्नान  
तुम्हारी वाणी में कल्याणि  
त्रिवेणी की लहरों का गान।<sup>50</sup>

वाणी में 'गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम की लहरों का गान' के माध्यम से कवि ने 'आँसू की बालिका' के प्रति अपने मन में निहित रूप, रस और प्रेम के प्रभाव को अभिव्यंजित किया है। डॉ० धर्मवीर भारती ने 'कविता की मौत' नामक रचना में कविता को गंगा की धारा का प्रभावसाम्य प्रदान किया है—

वही कविता, विष्णु पद से जो निकल  
और ब्रह्मा के कमंडल से उबल  
बादलों की तहों को झकझोरती  
चाँदनी के रजत फूल बटोरती  
शंभु के कैलाश-पर्वत को हिला  
उतर आयी आदमी की जमीं पर।<sup>57</sup>

अप्रस्तुतों में चार विशेषताएँ प्रमुख रूप से परिलक्षित होती हैं— कवि कल्पना-प्रसूत, सादृश्य, साधर्म्य या प्रभाव साम्य पर आधारित, प्रस्तुत को व्यंजक बनाने की शक्ति तथा सौंदर्यबोध। डॉ० नगेंद्र के अनुसार 'बिंब-विधान के अनेक उपकरणों में से उपमान एक अत्यंत उपयोगी उपकरण है।'<sup>52</sup> अमूर्त अनुभूति का मूर्तरूप बिंब है। 'हम कह सकते हैं। कि वस्तु भाव

या विचार को हृदयंगम बनाने हेतु जो संप्रेषक स्पष्ट अप्रस्तुत योजना की प्रणाली अपनाई जाती है, वह बिंबवाद है।<sup>53</sup> अप्रस्तुत जब वस्तु विशेष के लिए रूढ़ हो जाते हैं, तब इन्हें प्रतीक मान लिया जाता है। इनसे भाव एवं भाषा की प्रभावभिव्यंजना में अभिवृद्धि होती है। नए आयाम मिलते हैं। काव्य में मर्मस्पर्शिता का संचार होता है। कवि विषय के अनुरूप अप्रस्तुतों का चयन विभिन्न क्षेत्रों से करता है। प्रकृति, पशु-पक्षी एवं कीट-जगत् से गृहीत अप्रस्तुत प्राकृतिक सौंदर्यबोध के प्रमाण होते हैं। सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अप्रस्तुतों के द्वारा व्यापक ज्ञान का प्रमाण मिलता है। व्यावहारिक जीवन तथ्यों एवं लोकजीवन से गृहीत अप्रस्तुत कवि की लोकदृष्टि का बोध कराते हैं। इनसे तुक-अक्षर जोड़कर बनाई गई कविता में मोतियों जैसी माला विनिर्मित होती है और अनूठी उक्तियों का सृजन होता है। राजसभा, कवि-समाज तथा काव्य-रसरसिकों में सम्मान प्राप्त होता है। साहित्यशास्त्र के ज्ञानी पंडित तथा लोकप्रवीणजनों का मनहरण करने की जो सामर्थ्य श्रेष्ठ काव्य में पाई जाती है, उसमें बहुत बड़ा योगदान अप्रस्तुत योजना का होता है। यहाँ पर यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि 'प्रस्तुत-अप्रस्तुत भेद का निरूपण यह मानकर किया गया है कि किसी काव्य में जगत या जीवन से संबंध रखने वाली कोई-न-कोई वस्तु या तथ्य अवश्य होता है। उसी वस्तु या तथ्य के हृदयग्राह्य पक्ष का प्रत्यक्षीकरण तथा उसके प्रति जागरित हृदय की वृत्तियों का विवरण काव्य का लक्ष्य हुआ करता है।'<sup>54</sup>

#### संदर्भ

1. डॉ श्यामसुंदर दास, साहित्यालोचन, पृ० 14, 15,
2. जयशंकर प्रसाद, कामायानी (श्रद्धा सर्ग), पृ० 56
3. डॉ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी भाष्य, पृ० 111-112
4. डॉ श्यामसुंदरदास, साहित्यालोचन, पृ० 65
5. रामचंद्र शुक्ल, रस-मीमांसा, पृ० 276
6. रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत-योजना, पृ० 3-4
7. महादेवी वर्मा, संधिनी, पृ० 48
8. प्रो० कृष्णदेव शर्मा, महादेवी और उनकी संधिनी, पृ० 24
9. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, बिहारी पृ० 117-118
10. रामचन्द्र शुक्ल, रस मीमांसा, पृ० 276-277, नागरी प्रचारिणी सभा काशी संवत् 2017 वि०
11. संपादक चंद्रशेखर मिश्र, ठाकुर (आकर ग्रंथमाला-18) छंद संख्या -7, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, प्रथम संस्करण
12. चंदवरदाई, पृथ्वीराज रासउ, संपादक डॉ० माताप्रसाद गुप्त, कयमास बध पृ० 52-53
13. रसखान ग्रंथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 52, वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
14. केशवदास, रामचंद्रिका, पृ० 18 संकलनकर्ता लाला भगवानदीन
15. डॉ० विजयपाल सिंह, केशवसुधा, पृ० 44
16. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 146
17. डॉ० पीतांबरदत्त बड़थवाल, रामचंद्रिका, प्रस्तावना, पृ० 29 संकलनकर्ता लाला भगवानदीन
18. वही पृ० 29

19. वही पृ० 65
20. वही पृ० 14
21. डॉ० विजयपाल सिंह, केशवसुधा, पृ० 69
22. डॉ० श्यामसुंदरदास, हिंदीभाषा और साहित्य, पृ० 452
23. बिहारी रत्नाकर, दोहा संख्या 42, सं० श्री जगन्नाथदास रत्नाकर
24. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, बिहारी, पृ० 121
25. श्री मैथिलीशरण गुप्त, जयद्रथ-वध, पृ० 49
26. मतिराम ग्रंथावली, रसराज छंद संख्या 190, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, ब्रजकिशोर मिश्र
27. जगन्नाथप्रसाद 'भानु', काव्य प्रभाकर, पृ० 228 सं० पं० सुधाकर पांडेय
28. मतिराम ग्रंथावली, रसराज, छंद संख्या 199, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, ब्रजकिशोर मिश्र
29. सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबंध, पृ० 69
30. पद्माकर ग्रंथावली, जगद्विनोद छंद संख्या 21, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
31. निराला, राम की शक्ति पूजा, राम-विराग, पृ० 93, सं० डॉ० रामविलास शर्मा
32. डॉ० रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य-साधना, द्वितीय खंड, पृ० 410-411
33. डॉ० नगेंद्र, देव और उनकी कविता, पृ० 192
35. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, बिहारी, पृ० 120
36. बोधा ग्रंथावली, इस्कनामा, छंद संख्या 7, सं० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
37. भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारतेन्दु काव्यामृत, पृ० 31, सं० प्रो० रामचंद्र श्रीवास्तव, डॉ० कैलाशचंद्र अग्रवाल
38. वही, पृ० 17
39. निराला, राग-विराग, पृ० 44, सं० डॉ० रामविलास शर्मा
40. श्री सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबंध, पृ० 16
41. वही पृ० 61
42. प्रो० देशराजसिंह भाटी, पंत और उनका रश्मिबंध, पृ० 165
43. दिनकर, उर्वशी, पृ० 51
44. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 29
45. रामचंद्र शुक्ल, रसमीमांसा, पृ० 277
46. घनानंद कवित्त, छंद संख्या, 16
47. वही, पृ० 99-100
48. जयशंकर प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० 109
49. रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत-योजना, पृ० 95
50. श्री सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबंध, पृ० 40
51. धर्मवीर भारती, कविता की मौत, नया सप्तक पृ० 168, सं० डॉ० राकेश गुप्त, श्री ऋषिकुमार चतुर्वेदी
62. डॉ० नगेंद्र, काव्यबिंब, पृ० सं० 6
53. भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० 252

□ आवास 6/7, खन्ना भवन,  
सुभाष नगर, बरेली (उ०प्र०)

## डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के काव्य में प्रेम, संयोग एवं वियोग-पक्ष

नीनु

सृष्टि-जगत्, विशेषतया मानव-जीवन में प्रेम का सर्वोपरि स्थान माना गया है। प्रेम को अनुभवगम्य एवं अवर्णनीय मानसिक अनुभूति कहा गया है। यह मनोवृत्ति सत्, चित्त, आनंदस्वरूप अजर-अमर, अलौकिक एवं चिरंतन है। जीवन की इस मूल भावना का प्रभाव सृष्टि के प्रारंभ से लेकर आज तक मानव के आचरण-व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है। इसकी चर्चा करते हुए डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, 'प्रेम की कहानी कितने प्रकार से कही गई, लेकिन वह आज भी अधूरी है। वर्षाकाल की मेघमाला, पूर्व दिशा की राग-रंजित उषा, विस्तृत आकाश की नक्षत्र-मालिका, इनके हृदयों पर प्रेम की कहानी लिखी गई है। यह प्रेम की कहानी सुनी नहीं जाती, अनुभव की जाती है।'<sup>1</sup>

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेम वाणी का विषय न होकर अनुभूति एवं भाव का विषय रहा है। मानव-हृदय की सूक्ष्म अनुभूति प्रेम है। पूरब से लेकर पश्चिम तक, उत्तर से लेकर दक्षिण तक अर्थात् संपूर्ण विश्व के भू-भाग के महान कलाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रेम के आधिपत्य को स्वीकार किया है। प्रेम केवल सुंदर ही नहीं, सत्य और शिव भी है। अगर प्रेम में इनका अभाव है, तो वह प्रेम न होकर कोरी कामुकता या वासना है। इसके बिना मानव-जीवन की सुखमय कल्पना असंभव है। संत कवि कबीर ने तो स्पष्ट ही कहा है—

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहि।

सीस उतारै भुई धरै, सौ पैठे इस माहि।<sup>2</sup>

केवल इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी वाणी में— 'ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सौ पंडित होय' कहकर प्रेम के व्यापक स्वरूप की ओर संकेत किया है। वैसे भी मानव और पशु दोनों के मध्य अंतर की सिद्धि में भी प्रेम की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अस्तु, प्रेम का स्वरूप अति व्यापक है। प्रेम जीवन का सत्य है, जीवन की आवश्यकता है। इसमें मिलन-वियोग का विशेष स्थान रहा है। जहाँ प्रेम को लौकिक और अलौकिक कहा गया है, वहीं लौकिक प्रेम के दो व्यवहृत रूप माने गए हैं—

1. संयोगात्मक, 2. वियोगात्मक

संयोग और वियोग, दोनों ही प्रकार का प्रेम मानव-हृदय पर अपना प्रभाव डालता है। विशेष प्रकार का आह्लाद भी इससे अनुभूत होता है। यह ठीक है कि संयोगपक्ष में वियोग-पक्ष की अपेक्षा आनंद की अनुभूति अधिक होती है, लेकिन वियोग की मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना

सामाजिकों को तन्मय करने की क्षमता लिए रहती है। यही कारण है कि प्रेम का वियोग-पक्ष ही कवियों की वाणी में अधिक मुखरित हुआ। रीतिकालीन कवि घनानंद के प्रेम की सच्चाई भी उनके वियोग-वर्णन में ही अधिक उजागर हुई है—

अंतर हौ किधौ अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।  
आगि जरौ अकि पानी परौ, जब मैसी करो हिय का विविध धीरौं।  
जो घन आनंद ऐसी रुचि हो कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।  
पाऊँ कहाँ करि हाय तुम्हें, धरनी में धंसौ कि अकासहि चीरौं।<sup>3</sup>

तात्पर्य यह है कि साहित्यकारों ने प्रेम की वियोगपक्षीय अभिव्यंजना के मूल में संयोग-पक्ष को माना है। यदि संयोग ही न हुआ हो तो वियोग-पक्ष की महत्ता ही नहीं रह जाती। संयोग में प्रिय के निकट रहकर प्राप्त सुख मानव-हृदय में अनेक प्रकार की भावनाओं को जन्म देता है। दूसरी तरह से कहना चाहें तो संयोग वह अवस्था है, जहाँ प्रेमी युगल दुनिया से बेपरवाह एकांत में प्रेमलीन रहते हैं। उस क्षण उन्हें किसी अन्य की सहानुभूति, दया और सहयोग की कोई अपेक्षा या ज़रूरत नहीं होती, जबकि वियोग में मानव, मानव से ही नहीं, समस्त प्रकृति-जगत्, जड़-सचेतन से तादात्म्य स्थापित कर सहानुभूति पाना चाहता है। प्रकृति की प्रत्येक गतिविधि में अपने प्रिय की सुखद अनुभूति होती है। प्रिय की स्मृति में खोने के लिए प्रकृति के सहयोग की कामना की जाती है। संयोग के क्षण उसकी आँखों के सम्मुख उपस्थित रहते हैं और वियोग की अवस्था में वे तरह-तरह के भावोद्दीपन का कारण बनते हैं। विवेच्य गज़लकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की गज़लों में प्रेम के दोनों ही पक्षों— संयोगावस्था व वियोगावस्था— की स्थितियाँ व्यक्त हुई हैं।

वियोगावस्था में प्रेमी या प्रेमिका का एक-एक पल एक-एक युग की भाँति व्यतीत होता है। यदि एक-दूसरे से मिलने की उम्मीद का सहारा उनके पास न हो तो फिर शायद उनकी साँसों का चलना भी बंद हो जाए। मौसम की मार उन्हें और भी अधिक घायल कर देती है। विशेष रूप से सावन का मदमस्त महीना तो प्रेमी-प्रेमिका के मिलन का सबसे अच्छा महीना होता है, लेकिन अगर वे इसी मौसम में एक-दूसरे से दूर हों तो उनकी यह वियोगावस्था अत्यंत दुष्कर बन जाती है। एक-एक पल काटना मुश्किल हो जाता है—

तेरे बगैर कट गया सावन का एक दिन।  
चुभता है मेरी आँख में जीवन घटा हुआ।<sup>4</sup>

प्रेमी या प्रेमिका के लिए वियोगावस्था इतनी असहनीय होती है कि उनके आस-पास का पर्यावरण भी संपूर्ण रूप से उन्हें उदास दिखाई पड़ता है। काल्पनिक अवस्थाओं के कारण उन्हें सब कुछ अकाल्पनिक घटित होता प्रतीत होने लगता है। छत से बूँदें न टपक रही हों तो भी उन्हें लगता है कि छत से बूँदें टपक रही हैं—

दिन रात बरसती रहती है, सूखे में भी छत घर की।  
अब किस-किसको बतलाऊँ मैं कैसी है हालत घर की।<sup>5</sup>

वियोगावस्था बड़ी असहनीय होती है। इस अवस्था में संयोगावस्था के सारे किलोल याद आने लगते हैं। इन किलोलों के स्मरण से वियोगावस्था और भी क्रूर बनकर प्रेम करने वालों पर टूट पड़ती है—

हर एक पल आज भी जीवित है मुझमें  
गए दिन को भी दिल खोता नहीं है।<sup>6</sup>

वियोगावस्था में यदि प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे को पत्राचार करते हैं तो उन्हें यह आशा बँधी रहती है कि उनका मिलन कभी-न-कभी तो होगा ही। यदि पत्राचार का यह सिलसिला टूट जाता है तो यह स्थिति दोनों के लिए अत्यंत ही असहनीय हो जाती है—

साल बीता मगर उसने परदेश से  
दर्द भेजा, न आराम भेजा मुझे।<sup>7</sup>

कभी-कभी प्रेमी या प्रेमिका पत्र में कुछ इस तरह की सांत्वना भेज देते हैं कि उन्हें यह आशा एक मिलन की भाँति ही प्रतीत होने लगती है। वे पत्रों के माध्यम से ही एक-दूसरे के भाव समझ लेते हैं—

पत्र में उड़ने वाली, महक भेजकर  
प्रीत का उसने अंजाम भेजा मुझे।<sup>8</sup>

मिलन में वियोग का डर लगा रहता है इसलिए प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे से अपने मन के सभी भाव खोलना चाहते हैं। वे एक-दूसरे से जो उम्मीदें लगाए होते हैं, उन्हीं को उजागर करने लगते हैं। कुछ इस तरह—

चाहतें, प्यार, सदाचार न जाने देना  
मन से अपने वे सरोकार न जाने देना।<sup>9</sup>

प्रेमिका-प्रेमी एक-दूसरे से इस संसार की भौतिकवादी संस्कृति से दूर रहने के लिए कहते हैं, ताकि भौतिकवाद की संस्कृति उनके प्रेम में बाधा न बन जाए और एक-दूसरे से जुदा न कर दें। इस संसार में व्याप्त स्वार्थ की भावना कहीं उनके हृदय में व्याप्त प्रेम को समाप्त न कर दे—

स्वार्थ ही स्वार्थ है दुनिया में यह माना लेकिन  
तुम मगर हाथ से पतवार न जाने देना।<sup>10</sup>

इसी तरह का एक अन्य उदाहरण देखिए—

हर कदम वो साथ है क्यों यह भरोसा छोड़ दें।  
क्या रहेगा पास गर तेरा सहारा छोड़ दें।<sup>11</sup>

वियोगावस्था में प्रेमियों को एक-दूसरे को सांत्वना देने का अवसर भी मिल जाता है। दोनों एक-दूसरे से दूर होकर भी एक-दूसरे के अत्यंत निकट होते हैं और एक-दूसरे को विरह के पलों को गुज़ारने की सलाह देते हैं।

सुख से रातें विरह की गुज़ारा करो।  
उसने यह मशिवरा शाम भेजा मुझे।<sup>12</sup>

मिलन की आशा के दामन से चिपके रहना उनकी विवशता होती है। वे एक-दूसरे को बस इसी विवशता का वास्ता देते रहते हैं—

क्या साथ तेरे स्वप्न है, मधुमास में रहना  
मन मुझसे यह कहता है अभी आस में रहना।<sup>13</sup>

जब प्रेमियों को लगता है कि उनका मिलन अब संभव नहीं तो भी वे एक-दूसरे को



भूलना नहीं चाहते। एक-दूसरे को फिर भी यह सांत्वना देते हैं और आपस में किसी को न भूलने की बातें करते हैं—

आभास हो मुझको कि ज़रूरत हो मेरी तुम  
पानी की तलब बनके मेरी प्यास में रहना।<sup>14</sup>

प्रेम में भरोसा बहुत बड़ी चीज़ होती है। यदि प्रेमियों का आपसी भरोसा चला जाता है तो फिर उनके बीच कुछ नहीं रहता है। हाँ, कभी-कभी औपचारिकताएँ रह जाती हैं। उनके लिए उन पर सामाजिक दबाव भी होता है।

रस्में भी हैं, मिलाप भी, साहब सलाम भी।  
बस यह हुआ कि उसका भरोसा चला गया।<sup>15</sup>

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक प्रेम करता जाता है और दूसरा उसके प्रेम को खेल समझकर ख़त्म कर देता है। यह तब होता है, जब एक प्रेमी अधिक भावुक हो लेकिन दूसरा भावों को समझने वाला न हो। उसमें भावों के अर्थ जानने की इच्छा न हो—

लाख उसने तोड़ डाला हो, मेरे विश्वास को  
मुझसे उसके रू-ब-रू फिर भी गिला होता नहीं।<sup>16</sup>

प्रेमियों की मिलन-अवस्था अत्यंत रोचक एवं आकर्षक होती है। प्रेमी-जन चाहते हैं कि वे सदैव मिलते रहें। वे एक-दूसरे के साथ रहकर, साथ निभाकर दुनिया में परिवर्तन लाने और उसे प्रकाश से भर देने की इच्छा रखते हैं—

दोनों मिलकर भूले-भटकों को दिशा देते रहें  
तुम अगर दीपक बनो तो रास्ता हो जाऊँ मैं।<sup>17</sup>

प्रेमी या दोस्त के बिछड़ जाने पर उसका प्रेम अत्यंत याद आता है। उसकी यादें तड़पाती रहती हैं और वह उदासी के माहौल में वह जीता रहता है—

मेरा सब कुछ ले गया, इक आदमी ऐसा भी था।  
सोचता रहता हूँ, जीवन में कोई ऐसा भी था।<sup>18</sup>

प्रेम में चाह, इच्छा, आशा, विश्वास के साथ-साथ सपनों का भी महत्त्व होता है। प्रेमियों को सपने देखना बड़ा अच्छा लगता है। वे अपने सपनों में अपने प्रेमियों को ही देखना पसंद करते हैं। उन्हें एक-दूसरे के सपने में आना अत्यंत आकर्षक लगता है—

धड़कते दिलों से है आशा का रिश्ता  
अगर नींद होगी तो सपना भी होगा।<sup>19</sup>

मिलन अवस्था में प्रेमी-प्रेमिका का संयोग अत्यन्त ही निराला होता है। वे अपनी मुहब्बत व प्रेम को दुनियाभर में फैलाना चाहते हैं। वे एक-दूसरे के लिए ही वे जन्मे हैं, यह दिखना चाहते हैं। सारी दुनिया को 'एक दूजे के लिए' दिखाकर स्वयं को सर्वोच्च प्रेमियों में सम्मिलित करना चाहते हैं—

मुहब्बत बाँट दो दुनिया में जितनी बाँट सकते हो।  
छलक जाने पे भी सागर सदा सागर ही रहता है<sup>20</sup>

प्रेमी या प्रेमिका के बिछड़ जाने पर जो तड़प उत्पन्न होती है, वह तड़प भी एक-दूसरे को जीने का सहारा देती है। उनको एक-दूसरे के साथ व्यतीत किए वे हसीन पल अत्यंत ही

सुंदर लगते हैं। उन्हें एक-दूसरे के बिछड़ने का गुम भी होता है, एक-दूसरे से ढेर सारी शिकायतें भी होती हैं और यही सब कुछ जीने का सहारा भी होता है—

शिकवा है, शिकायत है, कोई दुख है, कोई गुम  
मौजूद है जीवन में भुलाने को बहुत कुछ।<sup>21</sup>

कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है। वह अपने आगे-पीछे कुछ नहीं देखता। प्रेम करने वाला व्यक्ति भी अंधा हो जाता है। उसे आगे-पीछे कुछ भी नहीं सूझता। वह प्रेम में कुछ भी कर-गुजरने को हमेशा तत्पर रहता है। उसकी बुद्धि उसकी भावनाओं पर काबू रखने में असमर्थ हो जाती है। प्रेमी के दोष भी गुण लगने लगते हैं। उससे अपने प्रेमी की निंदा सहन नहीं होती? भावातिरेक में वह प्रेम के गहन सागर में डूबता चला जाता है। नए युग में प्रेमी अपनी पुरानी परंपराओं तक तो तिलांजलि देने को तत्पर रहता है—

साथ दे पाएगी कब बीती हुई मौसम की रीत  
युग नया है, अब नई पुस्तक का पन्ना खोलिए।<sup>22</sup>

प्रेमी अपनी प्रेमिका से जुदा होकर भी जुदाई के गुम में नहीं डूबता, बल्कि वह उसकी यादों के सहारे अपना जीवन व्यतीत करने लगता है। वह जब चाहे अपने मन में उसके एहसास को जगा सकता है। उसका अहसास ही उसके जिंदा रहने के लिए काफी होता है—

नज़र उठा के जो देखूँ तो सामने है वही  
जुदा भी होके, वह मुझसे जुदा नहीं लगता।<sup>23</sup>

जुदाई का दर्द प्रेमी को दर्द-सा नहीं लगता बल्कि उसे वह दर्द भी सुख का अनुभव देता है। उसकी जुदाई का दर्द उसे जीवन जीने की राह दिखाता है। ऐसे समय में निराशा भी उसे अच्छी लगने लगती है—

निराश होकर भी जीवन बुरा नहीं लगता।  
यह कैसा दर्द है जो दर्द-सा नहीं लगता।<sup>24</sup>

प्रेम में प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे को अपना हृदय सौंप देते हैं। हृदय सौंपने का अर्थ होता है— स्वयं के प्रति उसको जागरूक करना और अपने ऊपर सारे अधिकार जताने की अनुमति प्रदान करना है। हृदय सौंपने के बाद प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे पर अपना पूरा अधिकार समझने लगते हैं। उसके पश्चात् वे एक दिल दो शरीर हो जाते हैं। अर्थात् उनके शरीर भले ही अलग-अलग होते हैं लेकिन उनके मन के भाव एक होते हैं। वे एक-दूसरे को दिलो-जान से चाहने लगते हैं तथा एक-दूसरे के लिए कुछ भी बलिदान करने के लिए तैयार रहते हैं—

याद है प्यार की संहिता आपको।  
सौंपता हूँ हृदय-वर्तिका आपको।<sup>25</sup>

प्रेमियों की यादें भी अगर उनके मन से चली जाएँ अर्थात् उनकी यादें भी एक-दूसरे के हृदय में नहीं रहें तो फिर उनके लिए इस धरती-आकाश का अस्तित्व ही नहीं रहता। वे समझते हैं कि यदि यादें चली गई हैं तो उनका सारा संसार ही चला गया है। संसार की एक-एक प्राकृतिकता नष्ट हो गई है। संसार की सुंदरता का अस्तित्व ही नष्ट हो गया है—

तेरी यादें गुम हुई मेरा निशां गुम हो गया।  
रात क्या आई कि सर से आस्मां गुम हो गया।<sup>26</sup>

एक-दूसरे से मिलन की आशा में प्रेमी-प्रेमिका सारी-सारी रात जागकर इंतज़ार कर सकते हैं। उन्हें मिलने के इंतज़ार में भी आनंद आता है। उन्हें एक-दूसरे से मिलने की आशा पूरी-पूरी रात जागते रहने की प्रेरणा देती रहती है, जिसके अवलंब पर वे पूरी रात जागते रहते हैं—

न जाने क्यों यह आस थी, वह आएगा, वह आएगा  
मैं रात अपने-आपको जगा-जगा के थक गया।<sup>27</sup>

इसी तरह विवेच्य ग़ज़लकार डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों में प्रेम की अनुभूति प्रेम की पीड़ा, प्रेम की सुखानुभूति और प्रेम-प्रकटीकरण के अंतर्द्वंद्व के वर्णनों की भरमार है। उन्होंने बड़ी ही संजीदगी के साथ इसको अभिव्यक्ति दी है। समाज का भय प्रेमी-प्रेमिका की अनुभूतियों को प्रभावित करता रहा है। ग़ज़लकार आज के युग का वर्णन करते समय इस भय को तिलांजलि देने को कहता है। कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में युगानुरूप अभिव्यक्ति करने में कवि ने लेश-मात्र भी संकोच नहीं किया है, बल्कि यथार्थ को अधिक प्रकाशित करने के लिए अपनी अभिव्यक्ति को अधिक संवेदनशील बनाकर प्रस्तुत किया है। उनकी प्रेम-निरूपण प्रक्रिया अत्यंत शुद्ध, सात्त्विक एवं युगानुरूप बन पड़ी है। उसके उपरांत भी उनके प्रेम-निरूपण में वासना को कहीं स्थान नहीं मिला है।

#### संदर्भ

1. डॉ॰ रामकुमार वर्मा, आकशगंगा, पृ० 9
2. कबीर वचनामृत से उद्धृत
3. घनानंद कवित, मध्ययुगीन हिंदी कविता, पृ० 70
4. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ० 27
5. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ० 34
6. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, सन्नाटे में गूँज, पृ० 36
7. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया, कितना, पृ० 42
8. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया, कितना, पृ० 42
9. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 84
10. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 84
11. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 87
12. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 42
13. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 87
14. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 87
15. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 31
16. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 36
17. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, पृ० 25
18. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, पृ० 29
19. डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, शिकायत न करो तुम, पृ० 56

20. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, शिकायत न करो तुम, पृ० 68
21. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, शिकायत न करो तुम, पृ० 69
22. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 63
23. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 104
24. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, रोशनी बनकर जिओ, पृ० 104
25. अनिरुद्ध सिन्हा, हिंदी गजल : सौंदर्य और यथार्थ, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के संदर्भ में, पृ० 33
26. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, भीतर शोर बहुत है, पृ० 58
27. डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, मौसम बदल गया कितना, पृ० 34

□ द्वारा श्री प्रेमसिंह मलिक ठेकेदार  
निकट नया डाकखाना, आदर्श नगर  
गोहाना ( सोनीपत ) हरि०

## राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' का राष्ट्रीय काव्य

रासुलता, शोध-छात्रा

डॉ० मीना अग्रवाल, शोध-निदेशिका

रीडर हिंदी विभाग, रानी भाग्यवतीदेवी महिला महाविद्यालय, बिजनौर

### राष्ट्रीयता : अभिप्राय और स्वरूप :

राष्ट्रीयता कोई स्थूल वस्तु नहीं है, जिसे देखा या सुना जा सके। वह तो एक ऐसा भाव है, जिसे हृदय से महसूस किया जाता है। राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जिसकी कोई सीमा या परिसीमा नहीं होती। वह तो केवल अनुभूति मात्र है। जिस प्रकार मानव-हृदय में घृणा, प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष आदि विचार उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्रीयता की भावना हृदय में उत्पन्न और विकसित होती है।

राष्ट्रीयता राष्ट्र के प्रति समर्पण की एक भावना है। व्यक्ति से ही राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित होता है। जब व्यक्ति राष्ट्रहित के लिए अपनी इच्छाओं और व्यक्तिगत सीमाओं का त्याग करता है, तभी सच्ची राष्ट्रीयता का जन्म होता है। अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्य द्वारा राष्ट्र-हित में किया गया कर्तव्य ही राष्ट्रीयता है।

### राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' के राष्ट्रीय काव्य का परिचय :

'प्रगल्भ' जी की कविताओं का संग्रह—'महक माटी की' राष्ट्रीयता की भावनाओं से ओतप्रोत है। इस संग्रह में उनकी सैंतीस कविताएँ संकलित हैं। प्रगल्भ जी ने इन कविताओं में अपने देश की विशेषताओं, समस्याओं और परिस्थितियों का उल्लेख बड़े मनोरम ढंग से किया है। इन कविताओं में उन्होंने मनुष्य की उस अनुराग-वृत्ति का परिचय दिया है, जो अपने राष्ट्र के प्रति किसी संवेदनशील प्राणी के हृदय में स्वभावतः उत्पन्न होती है। यह वही चेतना है, जो पाश्चात्य उपनिवेशवादी शासन के अत्याचार एवं शोषण से पुनर्जाग्रत होकर यातायात एवं संचार के साधनों के विकास के साथ उन्नीसवीं शताब्दी में पुनर्जीवित हो उठी थी। इसका प्रथम सामूहिक विस्फोट सन् 1857 के स्वतंत्रता-संग्राम के रूप में प्रकट हुआ था। तत्कालीन विदेशी शासन ने उसे विद्रोह अथवा गदर कहकर झुठलाने का प्रयास किया, किंतु वास्तव में वह भारतीय नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए सक्रिय छटपटाहट थी। इस प्रकार यह रचना अपने स्थानीय सरोकारों से लेकर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय अथवा मानवतावादी सरोकारों के प्रति कवि की संवेदना की अभिव्यक्ति है। ऐसा इसलिए कि भारतीय राष्ट्रीयता कभी भी पाश्चात्य राष्ट्रों की राष्ट्रीयता की भाँति संकुचित नहीं रही है, उसका विस्तार मानवतावादी दृष्टिकोण तक हुआ है। भारतीय राष्ट्रीयता सदैव विश्व प्रेम, विश्व सेवा और वसुधैव कुटुंबकम तक विकसित रही है। महात्मा बुद्ध, विवेकानंद और महात्मा

गाँधी आदि ने भी इसी विश्वबंधुत्व की भावना को आधार मानकर अपनी सोच एवं अपनी संवेदना को विकसित किया है। यही कारण है कि वे राष्ट्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व बन गए। अधिकांश भारतीय आज भी उसी उदार संवेदना से अनुप्राणित हैं, 'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं में कवि भी इन्हीं आदर्शों और प्रतिमानों का अनुयायी सिद्ध होता है।

'महक माटी की' संकलन में कवि ने भारत के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ इसके अतीत के प्रति सम्मान और अपनत्व, वर्तमान तत्कालीन दशा के प्रति क्षोभ प्रकट किया है। भविष्य के प्रति चिन्ता को पूरी लगन और भावुकता के साथ व्यंजित किया है। भारत का महिमा गान, महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि को कवि ने बड़े ही सुंदर रूप में प्रस्तुत किया है। इसी के साथ महापुरुषों में उपस्थित श्रेष्ठ मानवीय गुणों का भी सजीव चित्रण किया है। कवि ने अपनी समकालीन समस्याओं के साथ-साथ सामान्य जनों के सुख-दुःख एवं आक्रोश को भी वाणी दी है। जहाँ आवश्यकता समझी वहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के सम्मुख आदर्शों की भी शिक्षा देने का प्रयत्न किया है। कवि ने अपनी मातृभूमि और कर्मभूमि खुर्जांनगर की मिट्टी से जुड़ी संवेदना से प्रारंभ करके एक ओर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के नेतृत्वी बहादुरशाह जफर को श्रद्धांजलि दी है तो दूसरी ओर बाद के राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र के महापुरुषों, यथा-महात्मा गांधी, चाचा नेहरू, महामना मालवीय और लालबहादुर शास्त्री के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि ने अपने कर्मक्षेत्र के महापुरुषों गोस्वामी-तुलसीदास और महाप्राण निराला के प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित की है। इन श्रद्धांजलियों के द्वारा कवि ने उपर्युक्त महापुरुषों के श्रेष्ठ मानवीय गुणों और उनके अद्भुत कार्यों का स्मरण किया है। इन महापुरुषों के साथ कवि ने एक ओर रामकृष्ण के प्रति भक्ति-भाव प्रकट किया है, दूसरी ओर चीन और पाक युद्धों के सेनानियों और शहीदों के प्रति भी सम्मान व्यक्त किया है। कवि ने तत्कालीन (वर्तमान परिवेश से संबंधित) जनसामान्य के सुख-दुःख, आशा-निराशा, सौहार्द-वैमनस्यता को भी भावुक हृदय के साथ अभिव्यक्ति दी है। वर्तमान युग के राजनेताओं की दशा के साथ सामान्य जनता की समस्याओं एवं उनकी प्रतिक्रियाओं को भी कवि ने प्रमुखता से अभिव्यक्त किया है। कवि ने सामाजिक यथार्थ के साथ विभिन्न वर्गों के लिए शिक्षा और आदर्श को भी महत्त्वपूर्ण बताया है।

इस प्रकार 'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं के संकलन में कवि ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857) से लेकर अपने जीवनकाल तक की प्रमुख घटनाओं और परिस्थितियों को संवेदनाओं का आधार बनाकर प्रस्तुत किया है। कवि ने संकलन के अंत में नारी-जीवन-संबंधी अपनी भावनाओं को भी व्यक्त किया है। यह कवि की समग्र दृष्टि का ही परिणाम है।

'महक माटी की' राष्ट्रीय कविताओं के संकलन की कविताओं को संवेदना और विषयवस्तु के आधार पर निम्नलिखित 8 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

### 1. स्वदेश भारत की स्तुति एवं महत्त्व :

'महक की माटी' की संग्रह में संकलित सभी कविताएँ राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं। इन कविताओं में प्रगल्भ जी ने देश की महिमा और विशेषताओं का गुणगान किया है। किंतु कुछ कविताओं में उन्होंने देश का नामोल्लेख भी किया है, ये कविताएँ हैं-हमारा देश, भारत देश।

प्राचीन भारतीय साहित्य की एक विशिष्ट परंपरा थी कि रचना के आरंभ में मंगलाचरण

दिया जाता था। इसके अंतर्गत कवि अपने अराध्य की स्तुति करने के साथ अपनी रचना की कथा और उद्देश्य आदि का परिचय दिया करते थे। पाश्चात्य प्रभाव के कारण आधुनिक युग में यह परंपरा प्रायः लुप्त होती जा रही है। वर्तमान में कुछ रचनाकार रचना के प्रारंभ में एक ऐसी कविता अथवा नाटक में सवांद का आयोजन कर देते हैं, जो मंगलाचरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। 'महक माटी की' संकलन में पहली कविता 'हमारा देश' भी इसी श्रेणी की कविता है। कवि ने इस कविता की रचना सन् 1977 में की थी। इस कविता को पुस्तक के आरंभ में प्रस्तुत करने में कवि का आशय है कि यह मंगलाचरण तुल्य है। इस कविता में कवि ने अपने देश का गौरवगान प्रस्तुत किया है। 'हमारा देश' नामक इस कविता में कवि ने भारत की प्राचीन गरिमा और भविष्य के प्रति आकांक्षा प्रकट की है। कविता का प्रथम पद देश के स्वाभिमान से परिपूर्ण है। कवि ने इस कविता में विश्वशांति की कामना करते हुए लिखा है—

विश्व को पाठ अहिंसा और शांति का देता रहे सदैव,  
सुखों की सरिता बहती रहे, न आने पावे दुख दुर्दैव,  
जगाता रहे जगत को सदा,  
मिटता रहे अविनि का क्लेश,  
हमारा देश हमारा देश

—महक माटी की, पृ० 13

इस कविता के दूसरे पद में कवि ने राम और कृष्ण के आदर्श का उदाहरण देते हुए शिक्षा दी है कि जिस प्रकार राम, रावण जैसे शक्तिशाली राक्षस से भी भयभीत नहीं हुए थे उसी प्रकार हमें भी अपनी विरोधी शक्तियों का साहस के साथ मुकाबला करना है। कविता का तीसरा पद देश की पवित्र सरिता गंगा एवं प्राकृतिक सौंदर्य से संबद्ध है। इस पद में कवि ने ईश्वर से प्रार्थना की है कि हमारे देश का प्राकृतिक सौंदर्य हमेशा बना रहे—

गंग की धारा पावन रहे, सुहावन वृंदावन के कुंज,  
और यह नंदन सा कश्मीर, प्रकृति के रूप रंग का पुंज,  
उभरता रहे केलि का धाम,  
बिहँसता रहे सदा अखिलेश।  
हमारा देश हमारा देश।

—महक माटी की, पृ० 13

कवि ने इस कविता में जहाँ देश के शस्य-श्यामला रूप का वर्णन किया है, वहीं सूर, कबीर, मीरा जैसे भक्त कवियों का स्मरण भी किया है। अर्जुन की वीरता, दधीचि और कर्ण की दानवीरता को सराहा है तो देश के सच्चे प्रेम की नीति का भी उल्लेख किया है। यथा—

हमारी सीधी-सच्ची नीति प्रीति को सदा सरसती रहे,  
जननि का ऊँचा ललाट, कृपा को जगति तरसती रहे,  
सदा ही रहे सरल व्यवहार,  
छल, कपट, दंभ न हो लवलेश।  
हमारा देश हमारा देश।

—महक माटी की, पृ० 14

संग्रह की दूसरी कविता 'भारत देश' है। कवि ने यह कविता सन् 1969 में लिखी थी। यह वह समय था, जब देश के वीरों को चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों से जूझना पड़ा था। देश की एकता और सैनिकों के साहस से इन दोनों देशों के साथ युद्ध में भारत को जीत हासिल हुई थी। तब कुछ लोगों को आशंका हुई थी कि भारत दो-दो देशों से युद्ध करके थक गया है। ऐसे लोगों की आशंका मिटाने के लिए कवि ने बड़े चमत्कारिक ढंग से उत्तर दिया है। कवि का मानना है कि भारत भी वह देश है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड का भार वहन करने की सामर्थ्य रखता है। यथा—

ज्ञात होना चाहिए उसको  
कि होता शेष का क्या अर्थ?  
शेष कहते हैं उसे  
जो नहीं—दो—चार देशों का  
अपितु संसृति निखिल का  
भार धारण में सशक्त, समर्थ।  
है अगर हम शेष  
तो है शेष ऐसे ही।

—महक माटी की, पृ० 70

कवि ने इसी कविता में पड़ोसी देश को अपने देश की नीतियाँ समझाते हुए कहा है कि हम विरोधियों के भी कल्याण की कामना करते हैं, इस कविता में कवि ने यह भी स्पष्ट किया है कि हम शांति के पुजारी हैं। हम शांति के मार्ग पर चलने वालों के हमेशा मित्र हैं, लेकिन यदि कोई इसे हमारी दुर्बलता समझता है तो यह उसकी भयंकर भूल है। हम मित्रों के लिए मित्र हैं तो शत्रुओं के लिए खंजर और तलवार भी हैं।

## 2. महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि :

कवि राधेश्याम प्रगल्भ जी ने देश के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों, महापुरुषों, कवियों के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि राष्ट्रीय काव्यधारा के अंतर्गत प्रकट की है। कवि ने अपने श्रद्धा-सुमनों के साथ महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को निखरा-परखा है। इस श्रेणी में 'बहादुर शाह जफर', 'विजय लेख मानवता का', 'वह कौन?', 'मालवीय जी के प्रति', 'राम ते अधिक राम का दासा', 'महाप्राण निराला के महाप्रयाण पर', 'रूस भारत से गए तुम' आदि कविताएँ हैं।

अपने राष्ट्र की भूमि, इतिहास और राष्ट्रपुरुषों के प्रति सम्मान राष्ट्रीयता की पहली शर्त है। इसी कारण विभिन्न राष्ट्रप्रेमी कवि अपनी रुचि और क्षेत्र के महापुरुषों के प्रति श्रद्धांजलि काव्य रूप में देते रहे हैं। महापुरुषों के प्रति श्रद्धा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा अथवा भक्ति का ही रूप है। 'महक माटी की' संग्रह में कवि ने 'बहादुर शाह जफर' से लेकर 'लाल बहादुर शास्त्री' तक अनेक स्वतंत्रता सेनानियों और राष्ट्रनेताओं को अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए हैं। इन श्रद्धांजलियों में कवि ने प्रत्येक महापुरुष के कार्यों और आदर्शों को उजागर किया है। ऐसे महापुरुषों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का यह भाव सभी जागरूक नागरिकों की संयुक्त



संवेदना है। ऐसी कविताएँ निश्चय ही युवा वर्ग में प्रेरणा भरकर आन्दोलित करती हैं। किसी भी वर्ग को जागरूक बनाने में ऐसी कविताएँ समर्थ रहती हैं। ऐसी कविताएँ देश के प्रति आसक्ति, त्याग, उत्साह, स्वाभिमान, प्रतिद्वंद्विता आदि मूल संवेदनाओं के साथ, विश्व-प्रेम और मानव मात्र के प्रति संवेदना के कारण करुणा आदि से परिपूर्ण होती हैं। सहृदयों के मन में ये श्रद्धांजलियाँ इन संवेदनाओं का उद्रेक करने में समर्थ हैं।

बहादुरशाह जफ़र को देश के प्रति असीम प्रेम था। उन्होंने अनेक कष्ट और आघात सहकर भी आह तक नहीं की। वे सदा अत्याचार की आग में जलते रहे, उन्होंने देश से दूर सिंगापुर में निर्वासन की वेदना को सहा। इस निर्वासन को वे अपनी बदनसीबी समझते रहे। उन्होंने दुःखी होकर एक शेर में कहा है—

कितना है बदनसीब जफ़र दफन के लिए  
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कुएँ यार में।  
कवि ने ऐसे देशभक्त को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है—

वह शायर था, पर बागी था,  
या कहें देश अनुरागी था,  
स्वतंत्र्य—समर सेनानी था,  
था आग फिरंगी को लेकिन  
भारत को निर्मल पानी था  
जो सींच गया आजादी को  
युग—युग तक है जो अजर—अमर,  
वह वीर बहादुर शाह जफ़र।

—महक माटी की, पृ० 28

बहादुरशाह जफ़र वास्तव में ही ऐसा सेनानी था, जिसमें देश के प्रति सच्ची संवेदना थी और जिसने भारत की आगामी धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीयता की नींव भी रखी।

‘विजयलेख मानवता का’ शीर्षक कविता में कवि ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि का मानना है कि बापू ऐसे करुणामय व्यक्तित्व थे, जिनके एक संकेत पर पूरा देश एकत्र हो जाता था। उनमें मौसम को बदलने की असीम शक्ति थी। उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता का उल्लेख करते हुए कवि कहता है—

इनसे भी बढ़कर होते हैं कुछ दिव्य—पुरुष  
जिनके तेवर पर मौसम बदला करता है।  
मुसका दे तो ऋतुराज बिहँसता है भू पर,  
जब हो उदास तो पतझर जैसा लगता है।

—महक माटी की, पृ० 21

बापू के व्यक्तित्व में अहिंसा, करुणा और न्यायप्रियता ऐसे तत्त्व थे, जिन्होंने बापू के रूप में आकार ग्रहण किया था। इस तथ्य को उजागर करते हुए कवि ने लिखा है—

जब रूप सत्य ने रखा अहिंसा के तन में,  
पर पीड़ा को मिल गया कि जब अनुकूल हिया।

जब मिली न्याय को शरण दया की बस्ती में,  
युग ने उसको ही तो गांधी का नाम दिया।

—महक माटी की, पृ० 21

गांधी जी के व्यक्तित्व के आधार पर उनके नाम की व्याख्या करते हुए कवि कहता

—

गांधी है केवल नाम न चार अक्षरों का,  
गांधी है एक विचार, क्रांति है, दर्शन है।  
पशुता पर है वह विजय-लेख मानवता का,  
लोहे के मस्तक पर खादी का चंदन है।

—महक माटी की, पृ० 23

‘प्रगल्भ’ जी की यह कविता वर्तमान युग के लिए बड़ी महत्वपूर्ण है। दरअसल, आज मनुष्य उपभोगतावाद की अंधी दौड़ में शामिल है। उसके हृदय से संवेदना जैसे समाप्त ही हो गई है। अपने स्वार्थ के हेतु मनुष्य किसी को भी कष्ट देने के लिए तैयार है। अतः ऐसी स्थिति में गांधी जी का स्मरण बहुत आवश्यक हो गया है।

वह कौन?’ शीर्षक कविता भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को समर्पित है। यह कविता भी प्रश्नोत्तर शैली में ही लिखी गई है। कवि पहले ‘वह कौन’ कहकर प्रश्न करता है और फिर पहेली की ‘अता-पता’ शैली में नेहरू जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है। यह कविता नेहरू की प्रौढ़ावस्था से आरंभ होती है। कवि पाठकों से जानना चाहता है कि उस व्यक्ति का नाम बताओ, जिसकी आँखों में आत्मविश्वास और कर्मठता का प्रकाश विद्यमान रहता था और जो प्रौढ़ हो जाने पर भी जीवंतता ही नहीं, जवानी की उमंगों से भरा रहता था। देश के शासन की बागडोर जिसके हाथों में थी फिर भी वह फुफ़ीरों जैसी निस्पृहता से परिपूर्ण था। जिसका व्यक्तित्व तो गुलाब की तरह सुंदर और गंधयुक्त था, किंतु उसने देश के दायित्वों का काँटों-भरा मुकुट धारण किया था। जिसके हृदय में विश्वशांति की एक ललक थी। उस महापुरुष की शुद्ध भावना का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

मन-वचन-कर्म से सच्चा था, भावना हमेशा शुद्ध रही,  
छोड़े कपोत के जोड़े जो इसलिए कि हो अब युद्ध नहीं।

—महक माटी की, पृ० 24

नेहरू जी अपने त्याग और बलिदान के कारण जहाँ देशभर में लोकप्रिय थे, वहीं विदेशों में भी उनका गुणगान होता था। विदेशों में उन्हें हिंदुस्तान के नाम से पुकारा जाता था। इस बात को प्रमाणित करते हुए कवि ने लिखा है—

वह गया विदेशों में जब-जब लोगों ने ‘हिंदुस्तान’ कहा।  
घूमा स्वदेश में, जन-जन ने, जीवित, जाग्रत बलिदान कहा।

—महक माटी की, पृ० 26

नेहरू जी की हमेशा यही कामना थी कि हमारा देश शक्तिशाली बन जाए उसके लिए हमें चाहे कितना भी परिश्रम क्यों न करना पड़े। हमें इतना सतर्क रहना होगा कि चीन जैसा देश हमें फिर से धोखा न दे पाए। उनकी इसी इच्छा को कवि ने कुछ इस प्रकार स्वर दिया है—

वह बल हो उसकी बाँहों में, फिर नहीं किसी से घात मिले,  
बेबात अगर छेड़े कोई, तो एक विजय-सौगात मिले

—महक माटी की, पृ० 26

महामना पं० मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व से भी कवि प्रभावित दिखाई देता है। 'मालवीय जी के प्रति' नामक कविता में कवि ने उन्हें अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं। यह कविता अतुकांत है और इस संग्रह की सबसे लंबी कविता है। कवि ने इस कविता में मालवीय जी के उस संस्कृत भाषण का भी उल्लेख किया है, जो उन्होंने सात वर्ष की छोटी आयु में गीता पर दिया था। मालवीय जी के इस जन्मजात संस्कार के साथ-साथ ही कवि ने उनके व्यक्तित्व की बाह्य रूपरेखा, वेशभूषा और वाणी की मिठास, हिंदी के प्रति अनुराग और अनेक भाषाओं पर इनके अधिकार को भी व्यक्त किया है।

मालवीय जी की वाणी बड़ी मनहर और प्रभावपूर्ण थी। हिंदू-मुस्लिम विवाद के समय उन्होंने सबको भाईचारे का संदेश दिया। तब उनकी वाणी से प्रभावित होकर मुस्लिमों ने संकल्प लिया कि अब हम हिंदुओं पर कोई अत्याचार नहीं करेंगे। इस कविता में कवि ने मुसलमानों के उस संकल्प को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

भूल हुई, क्षमा, क्षमा,  
अब नहीं होगा यह,  
अपहृत संपत्ति भी  
वापस करेंगे सब,  
और नहीं एक भी हिंदू को मारेंगे।  
क्योंकि जैसा अभी आपने सुझाया है,  
वे हमारे मीत हैं, साथी हैं, भ्राता हैं  
दोनों की जननि ही यह भारत माता है।

—महक माटी की, पृ० 34

मालवीय जी के त्याग, समाज सेवा और देशभक्ति से कवि अत्यधिक प्रभावित दिखाई देता है। तभी तो वह ईश्वर से कामना करता है कि मालवीय जी का भारत में फिर से जन्म हो—

उनका व्यक्तित्व महान  
जीवन वृत्त भव्य है  
जो है अनुकरणीय  
जो नित ही नगण्य है  
है ईश्वर आवें फिर  
वे अपने भारत में  
आशा है आएँगे  
क्योंकि नहीं चाही थी  
मुक्ति उन्होंने कभी।

—महक माटी की, पृ० 40

‘रूस भारत से गए तुम’ शोकगीत के माध्यम से कवि ने भारत के लोकप्रिय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री के सम्मान में भी अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं। दरअसल, शास्त्री जी जनता के बीच अपनी सादगी और मृदु-व्यवहार के कारण लोकप्रिय थे। भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय उन्हें विदेशी दबाव के कारण समझौता वार्ता के लिए रूस जाना पड़ा और वहाँ विदेशी दबाव में उन्हें सीमा समझौता भी करना पड़ा। इस कारण वे मन में बहुत दुखी हुए। दूसरी ओर भारतीय जनता भी उनके इस समझौते से रुष्ट हो गई और रूस से लौटने पर शास्त्री जी का विरोध करने के लिए तैयार हो गई। उधर विदेश में शास्त्री जी का मन समझौता वार्ता से दुखी तो था ही, और उन्हें जब अपने देश का यह समाचार मिला तो उनका हृदय इस दुख को सहन न कर सका। परिणामस्वरूप उन्हें हृदयाघात हो गया। भारतीय जनता को इस समाचार से बेहद दुख और यह पश्चात्ताप भी कि हमारी भूल के कारण ही हमारे प्रधानमंत्री की मृत्यु हुई है। कवि ने भारतीय जनता के इसी पश्चात्ताप को इस कविता में व्यक्त किया है। यथा—

जब गए थे मुस्कराते थे  
कि हँसते-बोलते थे  
और जन-जन के हृदय में  
मधुरवाणी का अमृत तुम घोलते थे।  
आज लौटे हो, मगर तुम मौन क्यों हो?  
क्यों नहीं तुम बोलते हो?  
देश सारा बिलखता है, रो रहीं सारी दिशाएँ  
क्यों न दो क्षण के लिए ही  
नयन अपने खोलते हो?

—महक माटी की, पृ० 78

राजनेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों के अतिरिक्त कवि ने हिंदी साहित्य के पुरोधा साहित्यकारों के प्रति भी श्रद्धा-सुमन संवेदना के रूप में समर्पित किए हैं। इनमें एक श्रद्धांजलि भक्तिकाल के प्रख्यात और जननायक लोकप्रिय कवि तुलसीदास जी के प्रति प्रकट की है। तत्कालीन समय में दरबारी प्रकृति को छोड़कर तुलसी जी ने स्वतंत्र रचना विधान तैयार किया। कवि के शब्दों में—

मेटी युग की लीक हुई ना दरबारों में बंद  
वही तुम्हारी कविता-सरिता गंगा सी स्वच्छंद

—महक माटी की, पृ० 48

तुलसी ने हिंदी साहित्य-जगत को जो साहित्यिक उपहार दिया है, वह युगों-युगों तक विश्व का कल्याण करता रहेगा। कवि ने तुलसीदास जी के इस उपहार को अमूल्य मानते हुए, उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन इस प्रकार अर्पित किए हैं—

हिंदी जग को दिया कि तुमने जो अनर्घ उपहार।  
किया, कर रहा और करेगा, युग युग तक उपकार।

—महक माटी की, पृ० 48

पाकर तुम्हें सनाथ हुए हम, गर्वित हिंदी भाषा।  
सोलह आने सत्य 'राम ते अधिक राम कर दासा।'

—महक माटी की, पृ० 49

हिंदी साहित्य के आधुनिककाल के प्रमुख साहित्यकार सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के प्रति भी कवि ने श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'महाप्राण निराला' के महाप्रयाण पर' शीर्षक से रचित कविता में कवि ने मुक्तछंद के जन्मदाता की मुक्त-कंठ से सराहना की है। यथा—

मुक्त छंद का मुक्त कंठ वह हुआ सदा के लिए मूक है  
आज उठ गया युग निर्माता उर में उठती बड़ी हूक है।

देते अर्घ्य तुम्हें हे कविवर हम भर-भर अपनी नयनांजलि  
श्री चरणों पर अर्पित करते विनत भाव से हम श्रद्धांजलि।

—महक माटी की, पृ० 51

### 3. राष्ट्रीय स्वतंत्रता से संबद्ध तीव्र संवेदना :

श्री राधेश्याम शर्मा 'प्रगल्भ' जी ने अपनी कविताओं में राष्ट्रीय स्वतंत्रता से संबद्ध तीव्र वेदना व्यक्त की है। इस वर्ग की कविताओं में स्वतंत्रता के लिए किए गए संघर्ष तथा तत्कालीन आपदाओं और आकांक्षाओं के प्रति कविता लिखकर संवेदना प्रकट की गई है। इन कविताओं में स्वतंत्रता-प्राप्ति का उल्लास झलकता है, तो उसके बाद स्वप्न भंग को व्यक्त करने वाली कविता भी है।

इस वर्ग की कविताओं में सबसे पहले उल्लेख-योग्य कविता 'पंद्रह अगस्त' है। यह कविता 1947 में लिखी गई है। उस समय देश स्वतंत्रता की ओर अग्रसर था। इस कविता में उस समय की पूरी राष्ट्रीय संवेदना झलकती है। उस समय सभी भारतवासी स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी (उपनिवेशवादी) शासन की यातनाओं को स्मरण कर उससे मुक्ति के उल्लास से ओत-प्रोत थे। साथ ही स्वतंत्रता सेनानियों और सैनिकों के बलिदान के प्रति आभार व्यक्त कर रहे थे—

जब मिली नहीं आज़ादी थी।  
सोचो— कैसी बरबादी थी  
सोचो— था वह कैसा आलम  
कैसी दारुण थी वे घड़ियाँ।

—महक माटी की, पृ० 18

इस कविता में उस उल्लास और गौरव का गान किया गया है, जिसे हमने बड़े त्याग और बलिदान से प्राप्त किया था। कवि की संवेदना बड़ी आकर्षक है। यथा—

हम हुए मुक्त,  
आश्वस्त हमारा पथ प्रशस्त।  
है दिवस बुधु यह  
सहनशीलता का प्रमाण,  
भारत की अजर-अमर रहने वाली  
स्वतंत्रता का निशान

पन्द्रह अगस्त है पुण्य-पर्व  
पंद्रह अगस्त है दिन महान।

—महक माटी की, पृ० 19-20

स्वतंत्रता-दिवस यद्यपि बड़े उल्लास का दिन है, किंतु जब स्वतंत्रता दिलाने वाले अमर शहीदों की याद आती है तो मन वेदना से भर उठता है। कवि ने उन शहीदों के बलिदान को इस प्रकार नमन किया है—

है उचित कि अब होकर कृतज्ञ  
जय बोलें सभी शहीदों की  
जिनके अनर्घ बलिदान  
उभरते आज बने देशाभिमान।

—महक माटी की, पृ० 16

देश की उपलब्धियों के साथ ही कवि ने वर्तमान समस्याओं का भी वर्णन किया है। संप्रदायवादी आतंकवाद आज सबसे बड़ी समस्या है, जिसे अनेक उपायों के बाद भी हम रोक नहीं पा रहे हैं। इस आतंकी हिंसा को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

रोक नहीं पाए हम  
संप्रदायवादी यह आतंकी आँधी,  
लील गई हाय जो,  
एक नहीं, हाँ, कई गांधी।  
अहिंसा के उपवन में  
हिंसा के विषधर ने फिर फन फैलाया है।

—महक माटी की, पृ० 124

‘यह कैसा जनता का शासन’ नामक कविता में कवि आतंकी हिंसा से सहमा हुआ दिखाई देता है। देश में हत्या और अपहरण आदि की घटनाओं को देखकर कवि को लगता है कि इन घटनाओं से अब यम भी सहम गया है और अब वह विष्णु को अपना त्यागपत्र देना चाहता है। अभिप्राय यह है कि आतंकवाद भयानक संवेदना का जन्मदाता है, जिससे यमराज तक भी आतंकित हैं। कवि की संवेदना सशक्त अभिव्यक्ति दे रही है। यथा—

सहसा बोले यमराज, नहीं अब और नहीं  
बस और नहीं इसके आगे सह सकता हूँ,  
विधि का आग्रह हो या कि कहें भगवान विष्णु,  
इस पद पर मैं पल एक न अब रह सकता हूँ।

—महक माटी की, पृ० 81

‘नया सिरा-नई लीक’ कविता में कवि की संवेदना भारत से उठकर सम्पूर्ण विश्व की असमानता और वर्ग-चेतना की परिधि तक पहुँच गई है। वह विकसित और विकासशील देशों की बात करके अपने देश की स्थिति पर विचार करता है तथा उस स्थिति से बाहर निकलने के लिए संवेदना प्रकट करता है—

धरा का एक भाग, निरंतर अँधेरे में है।

दुःख तो यह है कि  
हमारा देश उसी घरे में है।  
और दूसरा दुःख यह कि  
जिन्हें होनी चाहिए थी इसकी चिंता  
उन्हीं को नहीं है।

—महक माटी की, पृ० 110

इस कविता में कवि नई विश्व-व्यवस्था की स्थापना के लिए उत्सुक है। वह सूरज के निर्जीव घोड़ों को बदलने और संपूर्ण पृथ्वी पर प्रकाश जगमगाने की संवेदना प्रकट करते हुए कहता है—

प्रतीक्षा है कालपुरुष की,  
कब आएगा वह?  
कब आएगी वह घड़ी जब  
बदल देगा वह सभी अश्वों को  
कर देगा धरा की धुरी को ठीक  
और हम पा जाएँगे  
नए सिरे से नई लीक।

—महक माटी की, पृ० 110

#### 4. स्वतंत्र्योत्तर भारत में राजनेताओं एवं अधिकारियों की संवेदनहीनता :

देश की ग़रीबी के प्रति नेताओं और अधिकारियों की संवेदनहीनता का परिचय प्रगल्भ जी की अनेक कविताओं में मिलता है। इन कविताओं में राष्ट्र नायक, राजनेताओं, अधिकारियों के प्रति कवि ने क्षोभ प्रकट किया है। इस प्रकार की कविताओं में 'बात वीर', 'पीना साँप', 'अग्निसागर' और बदलाव आदि प्रमुख हैं।

'बात वीर' शीर्षक कविता में कवि ने उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों की कथनी और करनी का अन्तर स्पष्ट किया है, जो हृदयहीन हैं। यथा—

पीड़ा की बातें करते हो, सच बतलाना,  
पीड़ा से कितना परिचय रहा तुम्हारा है,  
घावों को सहलाने की बात अभी छोड़ो,  
क्या नेह-नयन से कभी निरीह निहारा है।

—महक माटी की, पृ० 119

सत्ताधारी अधिकारियों और राजनेताओं के शोषण से पीड़ित कवि देश की जनता को जगाने का प्रयास करता है। यथा—

यह पीना साँप तभी हटेगा  
जब आदमी जगेगा  
ऐ, मेरे देश के सोए हुए आम आदमी  
जाग जा!

विष्प्राण होने से पहले जाग जा।

—महक माटी की, पृ० 121

‘बदलाव’ शीर्षक कविता में स्वतंत्रता की रक्षा के लिए बेचैन दिखाई देता है। वह कहता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जिन राष्ट्रनायकों को उसकी रक्षा का भार सौंपा गया था, वे अपने निजी स्वार्थ में लगे हुए हैं। उनके लिए स्वतंत्रता के कोई माने नहीं हैं। उनका उद्देश्य मात्र सत्ता की कुर्सी प्राप्त करना है। कवि ने अपना क्षोभ इस प्रकार व्यक्त किया है—

आजादी के रखवाले सब कुर्सी के हो गए मुरीद  
नहीं रहा उल्लास हृदय में होली हो अथवा हो ईद।

—महक माटी की, पृ० 130

इस कविता में भारत माता को इस दुःख से तड़फते देखकर आकाश भी कह उठता है—

कुरसी की मातमपुरसी कर रख मत कोई लगाव री।  
दे आवाज़ कर्मवीरों को लावें वे बदलाव री।

—महक माटी की, पृ० 130

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कवि ने पत्र-शैली का प्रयोग करते हुए, दो बाह्य देशों के प्रति कविता लिखी है। पहली कविता ‘सालाजार के नाम खुला पत्र’ में पुर्तगाल के शासक के नाम स्वतंत्रता का औचित्य व्यक्त किया है, जिसमें कहा है कि तुम अपनी ताकत के भ्रम में मत रहना, हम और हमारी गुट निरपेक्ष विदेश नीति तुम्हारा सामना करने में सक्षम है। इस संबंध में कवि ने नेहरू-नासिर की मित्रता का गर्व के साथ उल्लेख किया है। गोवा के स्वतंत्रता संघर्ष की कुछ मार्मिक घटनाओं के आधार पर भारत की संस्कृति और राजनीति की विशेषताओं का उल्लेख भी कवि ने किया है—

और गवर्नर घायल, जिनका किया गया उपचार।  
स्वयं बता देंगे दुनिया को हम कितने अनुदार।  
हम कुछ भी हों, किंतु तुम्हें हम इतना हैं बतलाते  
संधि-ध्वजा फहराकर हम हैं गोली नहीं चलाते।

—महक माटी की, पृ० 42

इस काव्यमय पत्र के माध्यम से कवि ने उपनिवेशवादी विदेशी सत्ता को अपने देश की नीति के अंतर्गत अहिंसा, विश्वप्रेम और मैत्री के साथ वीरता का भी परिचय दिया है।

दूसरी पत्र-कविता में कवि ने भारत की ओर से पड़ोसी देश पाकिस्तान को इंगित किया है, जिसमें कहा गया है कि हम अपने से शत्रुता रखने वाले पड़ोसी का भी भला चाहते हैं, परंतु एक तुम हो, जो हमारी उन्नति से जलकर हमें तबाह करने के स्वप्न देखते रहते हो। यथा—

जाने क्यों नहीं चाहता वह कि—  
मेरे आँगन में सुख और चैन रहे  
सुंदर सपने देखा करे गुलाब  
मंद-मंद बहती रहे पुरवाई



गाती-गुनगुनाती मस्ती बिखराती, इठलाती।

—महक माटी की, पृ० 94

### 5. उपदेशपरक कविताएँ :

‘महक माटी की’ कविता-संग्रह का कवि केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की वेदनायुक्त स्थिति तक ही सीमित नहीं है। उसने वेदना के परिवेश से उभरने के लिए राजनेताओं से लेकर सामान्य वर्ग तक और उसमें भी युवा-वर्ग को उपदेश दिए हैं। वह बदलाव के लिए बादलों और अपने अराध्य श्रीकृष्ण से भी दशा सुधारने का आग्रह करता है। ‘जागो देव लोकेश’ में कवि का यही भाव दिखाई देता है। पौराणिक कथाओं के रोचक प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। इंद्र की सभा में ‘उर्वशी’ अप्सरा का नृत्य होने पर इंद्र अपने सम्मोहित होने की आत्म स्वीकृति देते हैं, तो एक अद्भुत घटना घटती है, देव गुरु बृहस्पति वहाँ पहुँचते हैं। यह परिवर्तन विस्मयकारी होता है। वे इंद्रदेव को देवताओं की पराजय का स्पष्ट कारण बताकर सावधान करते हैं। यहाँ जो देवलोक की परिस्थितियाँ बताई गई हैं, वे अप्रत्यक्ष रूप से हमारे शासकों और जनता की हैं। इस प्रकार कवि ने इंद्र के माध्यम से शासक वर्ग को सावधान किया है।

मरते हैं, मरें रोज़ देव दीन।

तुम तो बस नुपुर की ध्वनि में रहो लीन  
झूमते रहो तुम सदा सोम, सुधा, परियों में,  
तैरते रहो तुम सदा रास-रंग तरियों में  
अप्सरा, किन्नरियों में चेतो भी देवराज!  
ऐसे कर पाओगे कब तक तुम राजकाज।  
हरके ले जाँँ असुर देव पुत्रियों को  
और कान तक तुम्हारे पहुँच पाए न चीत्कार  
अहिर्बिंशि घरे रहें तुम को जब चाटुकार,  
सुन लो स्वर्गेश! जहाँ जन-गण-मन उन्मन हो,  
नृप छंदानुवर्तन हो औ’ असमय नर्तन हो,  
ऐसा राज दरबार देता प्रकाश नहीं,  
अंधकार, अंधकार।

—महक माटी की, पृ० 115

‘ऊसर हो तो तोड़ दो’ शीर्षक कविता में कवि ने युवकों को श्रम करने की प्रेरणा दी है। कवि का कहना है कि यदि श्रम होगा, तो ऊसर भूमि भी उपजाऊ हो जाएगी। थककर बढ़ने से कोई काम नहीं होगा, हिम्मत से काम लेना होगा। श्रम से दुर्दिनों का अंत हो जाएगा और शुभ दिनों का आगमन होगा। यथा—

मारो श्रम का मुक्का, तोड़ो भी दुर्दिन के जावड़े।  
मेड़-मेड़ को तोड़ दो रे, खेत-खेत को जोड़ दो।  
ऊसर हो तो तोड़ दो रे, बंजर हो तो गोड़ दो।  
टीले काटो, गड्ढे पाटो, राह बनाओ, बढ़ते जाओ,  
तूफ़ानों का रुख मोड़ो तुम, चट्टानों से जा टकराओ,

तुम धरती के पुत्र, देवता श्रम ही सिर्फ तुम्हारा है।  
अगर संगठित हो तो जग में सानी कहाँ तुम्हारा है।  
सुख-समृद्धि की ओर राष्ट्र के जीवन की गति मोड़ दो।  
अरे, अभावों की गरदन तुम श्रम के हाथ मरोड़ दो।

—महक माटी की, पृ० 99

‘विजय वरण का प्रश्न है’ कविता में कवि ने हिंदू-मुस्लिम एकता का उपदेश देने के साथ-साथ सांप्रदायिकता के समाधान का मार्ग भी सुझाया है। कवि ने इन दोनों वर्गों की एकता और सुदृढ़ता पर बल देते हुए कहा है कि राम और रहीम एक हैं, फिर झगड़ा, विवाद, फसाद क्यों? यथा—

जानना पड़ेगा एक दिन, तो क्यों न जान लो।  
मानना पड़ेगा एक दिन, तो क्यों न मान लो—

‘जवाब है सरल बहुत, जटिल नहीं ये प्रश्न है।  
रहीम ही तो राम है, रसूल ही तो कृष्ण है।’  
विजय वरण का प्रश्न है।

—महक माटी की, पृ० 118

‘एक बार फिर’ शीर्षक कविता में एक ओर श्रीकृष्ण की लीलाओं की झलक है, तो दूसरी ओर समाज और देश की तत्कालीन समस्याओं का चित्रण है। कविता के पहले पद में कालि-दह की लीला के माध्यम से देश में पनपे रहे, आतंकवाद की समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया है। यथा—

एक बार फिर से वह बाँसुरी बजे।  
यमुना के तट पर फिर नटवर नंदलाल,  
खेलें भी खेल संग ले गोपी-गवाल,  
एक बार यमुना में गेंद जाय खो,  
विषधर के फन-फन पर फिर नर्तन हो,  
गोकुल सी सरस भूमि शोक-भय तजे।  
एक बार फिर से वह बाँसुरी बजे।

—महक माटी की, पृ० 111

कवि ने मानवता की रक्षा के लिए एवं प्रेम का संदेश देने के लिए पुनः कृष्ण की आवश्यकता जताई गई है—

एक बार फिर से वह सारथी मिले।  
पार्थ अगर विचलित हो, वह दे उपदेश,  
कैसा है मोह, शोक, कैसा यह क्लेश,  
फल की आसक्ति त्याग, करना है कर्म,  
हार-जीत मत विचार, है प्रहार धर्म।  
टूटे प्रण फिर से, रथ-चक्र फिर चले।

एक बार फिर से वह सारथी मिले।

—महक माटी की, पृ० 112

6. युद्ध के प्रति सैनिकों और युवकों का उत्साहवर्धन :

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश को कई बार पाकिस्तान से तथा एक बार चीन से घोषित युद्ध लड़ना पड़ा। भारत की युद्ध करने की कोई इच्छा नहीं थी, किंतु शत्रुओं ने युद्ध के लिए विवश किया। अनिच्छा के बाद भी हमारी सेना ने समुचित उत्तर दिया। पाक तो अभी भी अघोषित युद्ध लड़ रहा है। दरअसल, उसके मूल में आतंकवाद छिपा हुआ है। इस संग्रह की कुछ कविता सैनिकों और युवा वर्ग के उत्साहवर्धन के लिए अर्पित हैं। 'माँ! मत पथ रोक' कविता में कवि ने भारत के वीर सैनिकों के युद्ध लड़ने की कामना को व्यंजित किया है। सैनिकों की माताओं द्वारा युद्ध में जाने के लिए रोके जाने पर वीरों का उत्साह बोल उठता है—

माँ! मत पथ रोक मुझे बलि-पथ पर जाने दे  
श्वेत भूमि शोषित से लथपथ कर आने दे।  
माटी का कर्ज मुझे, जननि तु चुकाने दे।  
कैसी है उलझन माँ, फर्ज बस निभाने दे।

—महक माटी की, पृ० 72

'सच यह देश नहीं हारेगा' शीर्षक कविता में कवि ने एक काल्पनिक प्रसंग के माध्यम से भारत की नीतियों और देश के वीरों की वीरता का वर्णन किया है। इस कविता में कवि ने चीन के एक गाँव में माँ-बेटे के एक संवाद में भारतीय सेना को अजेय माना है। स्त्री के साथ लोकतांत्रिक व्यवस्था की तुलना चीन की नीतियों और जनता में व्याप्त शासन के आतंक से की गई है। चीनवासियों के मन में व्याप्त आतंक को माँ के शब्दों में कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है—

फिर जो छेड़ा है प्रसंग, मन हुआ सशंकित  
यहाँ पवन भी शासन के भय से आतंकित  
अगर कहीं पहरेदारों ने इसे सुन लिया,  
तो यह समझ मृत्यु ने हमको सहज चुन लिया।

—महक माटी की, पृ० 55

चीनी बच्चे का भारत की नीति के प्रति गुणगान भी उल्लेखनीय है—

मैंना सुना कि भारत तो है शांति-पुजारी,  
उसके सत्य, अहिंसा से हिंसा है हारी।  
और समझ में मेरी यह भी बात नहीं आती,  
रोज हमारी सीमा क्यों आगे बढ़ जाती।

—महक माटी की, पृ० 56

'घोषणा अपने दुश्मन के नाम' शीर्षक कविता में भी लगभग इसी प्रकार की संवेदना है। कवि ने भारत की ओर से चीन और भारत की तुलना करते हुए, चीनी देशवासियों को समझाया है। अपने देश की नीतियों की सराहना की है।

'तानाशाही एकतंत्र की' शीर्षक कविता में तानाशाही और प्रजातंत्र की व्यवस्थाओं में

अंतर बताया गया है। भारत के प्रजातांत्रिक परिवेश की खुशहाली से एकतंत्र वादी तानाशाह ईर्ष्या करता है। यथा—

मैं तानाशाही एकतंत्र,  
है अमन-चमन दोनों से मेरा बैर,  
मैं नहीं चाहता यह  
कि पड़ोसी के घर में सुख चैन रहे  
मैं नहीं चाहता यह कि वहाँ हो लोकतन्त्र  
मैं नहीं चाहता यह  
कि वहाँ ढप-ढोल बजे।

—महक माटी की, पृ० 67

इस प्रकार अपनी इन कविताओं के माध्यम से कवि ने सैनिकों और युवाओं में साहस वीरता, देशभक्ति तथा शासन पद्धति आदि संकल्पना का संचार किया है।

#### 7. नारी-चेतना अथवा मातृशक्ति :

कवि राधेश्याम प्रगल्भ जी ने अपनी कविताओं में नारी-शक्ति को भी सम्मिलित किया है, जो एक श्रेष्ठ साहित्यकार के लिए अनिवार्य भी है। नारी से संबद्ध कविताओं में कवि ने भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों दशाओं का चित्रण किया है। 'आदि शक्ति हो तुम ही' शीर्षक कविता में कवि ने भारतीय संस्कृति में नारी रूपों का अनेक गुणों के अनुरूप चित्रण किया है। सीता, सावित्री, राधा, सारधा, रानी लक्ष्मीबाई, गार्गी, उर्वशी, पन्नाधाय, मीरा, रत्नावली, श्रद्धा, पद्मिनि, कौशल्या, दुर्गा और भवानी आदि को प्रेरक बताकर, उनसे पवित्रता, वीरता, माता-बहिन के गुण स्वीकार करने पर बल दिया है। यथा—

तुम राखी का पावन बंधन, धरती का पर्याय तुम्हीं  
हँसकर काट दिया निज सुत को ऐसी पन्नाधाय तुम्हीं।

—महक माटी की, पृ० 67

त्याग, बलिदान और प्रेम की प्रतीक नारी वर्तमान में आधुनिका बनकर इन आदर्शों को त्याग करती जा रही है। नारी का यह परिवर्तन कवि की चिंता का विषय है। यथा—

तुमको श्रद्धा कहा किसी ने श्रद्धा से हूँ नत होता।  
किंतु देखकर रूप आधुनिक आज हृदय कवि का रोता।

—महक माटी की, पृ० 128

नारी-संबंधी दूसरी कविता का शीर्षक है— 'धरा की आत्मजा' इस कविता का वर्ण्य विषय रामकथा पर आधारित है, जिसमें वन-गमन का मार्मिक प्रसंग है। प्रबन्धात्मक शैली की इस कविता में सीता, राम और लक्ष्मण तीनों को आदर्श रूप में चित्रित करते हुए, भारतीय दांपत्य जीवन और भारतीय नारी के मार्मिक रूप को प्रस्तुत किया गया है। सीता की सहनशीलता और कष्ट, सहिष्णुता इस कविता की मूल संवेदना है। पारिवारिक सुख शान्ति के लिए दाम्पत्य जीवन का सुदृढ़ होना बहुत जरूरी है। सीता का कथन उल्लेखनीय है—

ज्ञात मुझको आपके उर की समरसता

कष्ट में मुझको कहाँ हैं देख पाते  
इसलिए विश्राम का सुंदर बहाना।  
शूल निकलेगा नहीं  
जब तक कि पद से सेविका के,  
शूल स्वामी के हृदय चुभता रहेगा।

—महक माटी की, पृ० 133

इस कविता में सीता जी के माध्यम से निरंतर बढ़ते रहने का संदेश दिया गया है।  
कवि का मानना है कि मार्ग कितना ही कष्टकारक क्यों न हो, लेकिन निरंतर बढ़ते रहने में  
ही जीवन की सफलता है। यथा—

चलो, चलते ही रहो अविराम  
बस, जीवन यही है  
शूल-सुमनों की हमें परवाह कैसी  
हम पथिक हैं,  
पंथ ही है पंथ पंथी का  
फिर भले हो राह कैसी।

—महक माटी की, पृ० 132

#### 8. स्थानीय समस्या से संबद्ध कविता :

कविता में कवि की संवेदना चाहे राष्ट्रीय हो या अंतर्राष्ट्रीय, किंतु वह अपनी स्थानीय  
समस्याओं और व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख से भी अवश्य आंदोलित होता है। 'खुर्जा की  
सड़क' नामक कविता इसी श्रेणी की है। इसमें कवि ने खुर्जा शहर से रेलवे जंक्शन तक जाने  
वाली सड़क के माध्यम से देश की मूलभूत सुविधाओं की दुर्दशा पर समाज का ध्यान आकृष्ट  
किया है। कवि ने इस साधारण-सी घटना को हास्य-व्यंग्य द्वारा आकर्षक बना दिया है। यथा—

गड्ढा आया इक बहुत बड़ा  
जिसमें था मेरा पैर पड़ा  
मुड़ गया पैर आ गई मोच  
भरकर ज़मीन की कौली मैं  
फिर वहीं कहीं पर लुढ़क गया।  
लाली तो लगी रक्त की थी,  
लग गया क्रुदरती था पाउडर  
चलने वाले से हँसे खूब  
था खासा मैं कार्टून बना।

...

फिर चक्र-सुदर्शन गया घूम  
सब बर्तन-भाँडे गए कड़क  
मेरे मुँह थे भी निकल पड़ा

ले! पलट देख खुर्जा की सड़क।

—महक माटी की, पृ० 106-108

इस प्रकार 'महक माटी की' कविता संकलन में कवि की मूल संवेदना राष्ट्रीयता है। कवि ने राष्ट्र के प्रति अपनी आसक्ति को इसके माध्यम से संप्रेषित किया है। इसमें संकलित सभी रचनाओं में कवि ने देश के अतीत के प्रति गौरव, वर्तमान की दशा के प्रति चिन्ता और भविष्य के प्रति आशा और विश्वास को अभिव्यक्त किया है। कवि ने मंगलाचरण के रूप में देश की स्तुति की है। श्रद्धांजलियों के माध्यम से अपने राष्ट्र के नेताओं की महिमा और साहित्यकारों के प्रति शोक प्रकट किया है। दुर्दशा के वर्जन में कवि का क्षोभ और आक्रोश दिखाई पड़ा है, तो देश के वीर सैनिकों और स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति उनकी श्रद्धा प्रकट हुई है। संकलन में भारतीय समाज के जीवन मूल्यों के प्रति कवि का विश्वास और लगाव छिप नहीं पाया है। युद्धों में युवकों के शौर्य की अभिव्यक्ति राष्ट्रीय संदर्भ में की गई है। मैत्री, विश्व-प्रेम, धर्म-निरपेक्षता, सत्य और अहिंसा आदि हमारे राष्ट्रीय जीवन के वे स्थायी मूल्य हैं, जिन्हें कवि ने अपनी विभिन्न कविताओं में व्यक्त किया है। भारतीय नारी के व्यवहार और आदर्श भी कवि की राष्ट्रीय चेतना के अंग रहे हैं। वात्सल्य और शृंगार आदि के माध्यम से इस संकलन की कविताएँ सरस बन गई हैं। इस प्रकार कवि संवेदना के स्तर पर राष्ट्रीयता से लेकर अंतर्राष्ट्रीयता तक पाठकों की मानसिकता का परिष्कार कर, उन्हें उद्वेलित करने में समर्थ रहा है।

□ ए-472, कुसुम विहार  
कोतवाली रोड, नजीबाबाद ( बिजनौर )

## अभिमन्यु अनत के उपन्यास अपनी-अपनी सीमा में नारी की स्थिति

नीलम सिंह, शोध छात्रा

हिंदी विभाग, सी०आर०एम० जाट कॉलेज, हिसार (हरियाणा)

डॉ० राजनारायण शुक्ल, शोध निदेशक

रीडर हिंदी विभाग, शंभूदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

प्रत्येक नारी की अपनी मानसिकता के अनुरूप कष्ट, यातना, अभाव, प्रताड़ना, उपेक्षा आदि को सहने की सीमा होती है। जब कष्ट देनेवाला, प्रताड़ित करनेवाला व्यक्ति अथवा अभाव सीमा का अतिक्रमण देते हैं तब प्रभावित नारी को स्वयं तय की गई अपनी सीमा के अनुरूप ठोस कदम, क्रांतिकारी कदम उठाना पड़ता है, जैसा कि अभिमन्यु अनत 'अपनी-अपनी सीमा' उपन्यास (1983) में पुरुष-प्रधान समाज में नारी पर होने वाले अत्याचारों और अन्यायों के विरुद्ध नायिका सीमा ने कदम उठाया।

मारिशस में नारी पर अब भी अत्याचार होते हैं। इस दृष्टि से भारत में भी नारी की स्थिति बेहतर नहीं है। इस तथ्य का पाठक को विश्वास दिलाने के लिए उपन्यासकार ने 'उपन्यास से पहले' शीर्षक के अंतराल पाँच औरतों के वास्तविक अथवा काल्पनिक इंटरव्यू दिए हैं, जिनमें मूल मुद्दा यह उठाया गया है कि क्या तुम्हारा पति तुम्हें पीटता है? राजरानी मानती है कि उसका पति उसे खरी-खोटी तो खूब सुनाता है, पर पीटता कभी-कभार ही है। कुर्शिदा का उत्तर है कि उसका पति क्रोधित बहुत जल्दी हो जाता है और पीटने के बारे में कहती है—'मुझे नहीं मालूम'। शीला का उत्तर है— 'मरद है, एक-दो थप्पड़ या लात मार दे यह तो कोई बड़ी बात नहीं होती।' आदि-आदि। अपने कथ्य की विश्वसनीयता को पुष्ट करने के लिए उपन्यासगत पात्रों के अतिरिक्त लोगों के विचारों को प्रस्तुत करना हिंदी उपन्यास में एक नया एवं सफल प्रयोग है।

उपन्यास का नायक आलोक सीनियर कैंब्रिज फेल है और हिंदी पास है। वह पहले ग्रासाब्ल में ही खेती का काम करता था, पर अधिक कमाने की इच्छा से मकान बनाने का काम सीखकर राजगीरी करने लगा, लेकिन उस आय से भी वह अपने सपनों के अनुसार जीवन व्यतीत नहीं कर पाता। चुनाव के दिनों में उसने जिस व्यक्ति की खूब मदद की थी, वह अब मंत्री है, परंतु उसने अपने वायदे पूरे नहीं किये। आलोक का विवाह किसान-परिवार की लड़की सीमा से हो गया और सीमा की एक बेटा है फीकी। मंत्री ने घोषणा की थी कि गाँव से कुछ

दूरी पर पर्वतीय भूमि गाँव के कुछ लोगों में बाँटी जाएगी। आलोक उस भूमि को प्राप्त करना अपने जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य मानने लगा।

आलोक के गाँव की एक सुंदरी सानी है, जिसका विवाह हुआ था किंतु वहाँ उसका मन नहीं लगा और वह ससुराल छोड़कर सदा के लिए अपने मायके लौट आई। आलोक अपने काम पर प्रातः जल्दी जाने और रात होने पर लौटने के कारण सानी से कभी-कभी हफ्तों बाद मिल पाता। आलोक को पता चला कि सानी का संबंध उसी क्षेत्र के मंत्री से हो गया है तो वह सानी से मिला ताकि वह उसे पर्वतीय भूमि दिलवा दे। महिला अफ़सर बनना चाहती है। फिर भी सानी ने मंत्री से आलोक को मिलवाने का प्रबंध कर दिया। मंत्री ने आलोक को फिर आना कहकर कई चक्कर लगवा दिए। अंत में सानी ने उसे वास्तविकता बताकर चकित कर दिया कि मंत्री पैसा देने वालों को जमीन देगा। इधर (घर में) कभी छोटी-सी बात और कभी बिना बात के आलोक अपनी पत्नी सीमा को पीट देता। एक दिन तो उसने इतना पीटा कि सीमा को शहर के अस्पताल में दाखिल करवाना पड़ा। वहाँ डॉ॰ किरण ने सहानुभूति पूर्वक उसका उपचार किया और बताया कि तुम्हारे पति की एक और लात तुम्हारी मृत्यु के लिए पर्याप्त थी। किरण ने यह भी कहा— 'तुम्हारे पति का इलाज होना चाहिए वह मानसिक रूप से रोगी है।' सानी ने आलोक से मिलते ही उसे दुत्कारा कि उस भोली-भाली पत्नी को कसाई की तरह क्यों पीटते हो। सानी की हार्दिक इच्छा है कि आलोक सीमा के साथ एक अच्छे पति के रूप में रहे।

आलोक को पता चला कि सुगुन पंडित की इतनी चलती है कि वह मंत्री से उसे जमीन दिलवा सकता है, तो आलोक उससे मिला। पंडित ने तीन हजार माँगे। आलोक ने सीमा को अपने मायके से कर्ज के रूप में रुपए लाने के लिए कहा। सीमा के इंकार करने पर आलोक ने उसे पीटा। एक दिन सीमा पति को बिना बताए मायके गई पर उसका बाप रुपए नहीं दे सका। आलोक का मित्र श्याम प्रायः उसके घर आता है। सीमा की बीमारी, पिटाई आदि के कारण श्याम का उसके पास आना-जाना अधिक हो गया तो आलोक ने सीमा के चरित्र पर शक किया। सीमा ने उत्तर दिया— 'जिस दिन मैं अपना सिर किसी दूसरे मर्द के कंधे पर रख दूँगी, उस दिन के बाद इस चारदीवारी के भीतर कदम नहीं रखूँगी।'<sup>1</sup>

आलोक को पता चला कि मंत्री ने लोगों में जमीन बाँट दी हैं उसे हैरानी हुई कि जमीन उन लोगों को मिली जिनके पास पहले ही जमीन और पैसा था। आलोक के गाँव के सुग्रीव को भी जमीन मिली थी। आलोक को उसने बताया कि साढ़े तीन हजार देकर पंडित के माध्यम से जमीन ली है अर्थात् पंडित दलाली खाता है।

आलोक ने सीमा के चरित्र पर शक कर उसे बुरी तरह पीटा तो वह घर से बाहर निकली और सामने श्याम को देखकर उसके कंधे पर अपना सिर रखकर उसके साथ चल दी। विवेच्य उपन्यास में पति अपनी पत्नी पर इतना अत्याचार करता है कि उसके मानसिक रोग से ग्रस्त होने का संदेह होने लगता है।

सामान्यतः मारिशस की नारी अपनी अस्मिता एवं इच्छा की रक्षा करने के लिए सचेत ही रहती है, पर इस उपन्यास की नायिका सीमा अत्यधिक मार खाने और अपमान करवाने के बाद भी अपने अस्तित्व के स्वतंत्र महत्त्व को पहचानती है। आलोक ने अपनी पत्नी सीमा को इतना



पीटा कि वह बेहोश हो गई— ‘होश आने पर सीमा अपनी सास से लिपट गई जब सीमा के पीठ के कपड़े हटाए गए तो तब लातों के निशान उसके आधे शरीर पर झलक आए थे। पीठ और पंजरी में कुचली हुई—सीमा लग रही थी।’<sup>2</sup> सीमा को भीतरी घाव के कारण पंजरी के पास एक असह्य दर्द शुरू हो गया था। सरकारी डॉ॰ किरण ने जाँच करने के बाद सीमा को बताया— ‘अगर तुम्हें एक लात और मार देता तो तुम्हारे जीवन का अंत हो सकता था। जानती हो तुम थोड़ी देर और करती तो इंटरनल हेमोरेज हो जाता तुम्हें।’<sup>3</sup> आलोक कहीं जाने के लिए तैयार होता तो सीमा यदि पूछ लेती— ‘कहाँ जा रहे हो?’ ‘तो आलोक गालियाँ देने लगता।’ इसके साथ उसने सीमा की सास को गालियाँ दे डाली थी कि सीमा की आँखों में आँसू आ गए थे।<sup>4</sup>

सीमा की ननद बच्चों सहित पूर्व सूचना के आ पहुँची थी, घर में उनकी सेवा के लिए कुछ नहीं था। सीमा ने इधर-उधर उधार लेकर काम चलाने का प्रयत्न किया। आलोक ने खाना देखा तो ‘अपनी तनखाह के पैसे सीमा के ऊपर फेंक दिए थे। वहाँ कोई सिक्का रह गया जिससे सीमा की कनपटी पर गिलटी लग गई थी... काँच की गोली बराबर की वह गिलटी तीन दिन बाद तक नीली पड़ी रही थी।’<sup>5</sup>

आलोक अपने ससुर से कर्ज लेने के लिए जाने वाला था कि माँ ने पूछ लिया... ‘कर्ज लेने जा रहे हो?’ आलोक को संदेह हुआ कि माँ को सीमा ने बताया है... ‘आलोक ने अपनी फौलादी मुट्ठी से सीमा के कंधे पर के अनसँवारे भीगे बालों को पकड़ लिया। बालों के बल खींचकर उसने उसे खंभे से दे मारा। दोबारा उसी तरह चोटा पकड़कर उसे ढकेला। इस बार सीमा का सिर खंभे से टकराया। वह जमीन पर गिर पड़ी। आलोक ने घूमकर उसके चेहरे पर लात मारी। ... दूसरी लात उसके पेट में लगी। सीमा बेहोश हो चली थी।’<sup>6</sup> सानी आलोक की भर्त्सना इसलिए करती है कि वह अपनी पत्नी को पीटता है... ‘सीमा को मारकर तुमने अस्पताल भेज दिया? इस तरह से कोई अपनी औरत की दुर्गति करता है?’<sup>7</sup>

सीमा की माँ ने उसे कुछ रुपए दिए थे, जिससे सीमा ने घर का राशन मँगवा लिया था। आलोक को शक हुआ कि रुपए श्याम ने दिए हैं। इसलिए बोला— ‘कल तो घर में एक दाना भी नहीं था। यह सब कुछ कहाँ से आ गया। उसके बाद, गाली, ‘गालियों की बौछार... आलोक ने दाँत पीसकर सीमा के दोनों कंधों को जकड़ लिया... सीमा को ढकेल दिया। उछलकर उसे एक लात मारी। सीमा ने पंजरी पकड़ ली। आलोक ने दूसरी लात मारी। सीमा की सास और मधु ने उसे उठाया। उसके मुँह से खून बह चला था। वह अधमरी हो गई थी।’<sup>8</sup>

उपेक्षा, गालियाँ, पिटाई आदि सहने की जितनी सहनशीलता लेखक ने सीमा में दिखाई है, वह मारिशस की सामान्य नारी की स्थिति को देखते हुए अपवाद ही समझी जा सकती है। सीमा की इस सहनशीलता के पक्ष में केवल इतना कहा जा सकता है कि उसे विश्वास है कि आलोक उसे बहुत प्यार करता है, जबकि तथ्य यह है कि वह सानी को अधिक चाहता रहा है।

सीमा की सास, आस-पड़ोस की औरतें यहाँ तक कि सीमा का उपचार करनेवाली डॉ॰ किरण को भी सीमा से सहानुभूति है और उनमें से कुछ तो सीमा को आलोक के विरुद्ध कुछ करने की प्रेरणा देती हैं। सीमा भी अपनी नारी स्थिति का विश्लेषण करती है। उसमें वैचारिक स्तर पर विद्रोह परिलक्षित होता है। अपनी पिटाई की पिछली घटना को याद करके

उसका मन हुआ— ‘अब घोषणा कर दे कि बस अब यह नहीं चलेगा। अगर वह गुलत है तो उसके विरुद्ध खड़ा होना चाहिए आलोक सहम जाए। इसका कोई आश्वासन नहीं था।’<sup>26</sup> सीमा के अंदर अंतर्द्वंद्व चलता है। उसका मन आलोक से पूछता है— ‘आखिर तुम्हें क्या हो जाता है। एक मिनट में प्रलय ला देते हैं। सीमा ने जवाब में अपनी ही प्रतिध्वनि सुनी— ‘सीमा मैं तुम्हें बेहद चाहता हूँ। बेहद।’<sup>9</sup>

सीमा की सास भी सीमा पर होने वाली ज्यादातियों से दुखी है और बेटे अलोक को फटकारती है। उसने सीमा से कहा—‘वह आलोक को कई महिने तक के लिए यों ही छोड़कर मायके चली जाए। फीकी को भी यहाँ छोड़ दे तीन-चार दिन में उसे दिन में ही तारे नज़र न आ जाए तो कहना।’<sup>10</sup> पर सीमा नहीं मानी। उर्मिला ने कहा— ‘अरी मान ले अपनी सास की बात और चली जा अपनी माँ के यहाँ।’

मारिशस की आम औरत में अपने अधिकार के प्रति जागृति है। एक दिन आलोक ने सीमा से कहा था कि तुम श्याम से बहुत घुल-मिल कर बातें करती हो। सपने में मैंने देखा कि तुमने किसी दूसरे मर्द के कंधे पर सिर रखा हुआ था, तब सीमा का स्वाभिमानि स्वर निकला— ‘जिस दिन मैं अपना सिर किसी दूसरे मर्द के कंधे पर रख दूँगी उस दिन इस चार दिवारी के भीतर कदम नहीं रखूँगी।’<sup>11</sup>

पिटार्ई के बाद जब घायल अवस्था में सीमा को उसकी सास सरकारी अस्पताल की डॉ॰ किरण के पास लेकर गई तो उसने जाँच करने के बाद सीमा से उसके पति के बारे में अनेक प्रश्न किए। सीमा टालने का प्रयत्न करती रही थी। वह पति को दोषी सिद्ध नहीं करती तो डा॰किरण बोली मैं पुलिस नहीं हूँ मैं डॉ॰ हूँ। शादी के कितने दिनों बाद तुम्हारे पति ने मारना शुरू किया था? दो-तीन साल से तुम इस नरक में जीती आ रही हो। तुम औरत तो हो यह कथन ठीक है। तुम अपने पति को बहुत चाहती हो यह तुम्हारा अधिकार है, पर एक बात याद रखना तुम गलियाँ और मार सहते रहने के लिए पैदा नहीं हुई हो।’<sup>12</sup> डॉ॰ किरण न केवल नारी चेतना और स्वतंत्रता का प्रतीक है अपितु नारी की सुरक्षा और उत्थान के प्रति पूर्णतया समर्पित भी है। मारिशस की स्त्री सुरक्षा आंदोलन नामक संस्था की अध्यक्ष डॉ॰ किरण ही है। स्त्री सुरक्षा के लिए आंदोलन करना और संस्था बनाना वहाँ की नारी की जागरूकता का प्रमाण है। इसलिए डॉ॰ किरण चाहती है कि पिटार्ई करने वाली पति के विरुद्ध पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई जाए। पति अपनी पत्नी पर शारीरिक और भावात्मक स्तर पर जो घाव कर देते हैं, डॉ॰ किरण उन्हें दूर करने का प्रयत्न करती है। वह कहती है— ‘औरत को दासी समझकर आज भी उसके साथ जो अमानवीय व्यवहार किए जाते हैं उससे नारी को मुक्त करना ही उसका धर्म था। स्त्री सुरक्षा आंदोलन का उद्देश्य है कि हमारी बहनें भेड़ न बनी रहें। सब कुछ चुपचाप सहने का अर्थ है औरतों पतियों के जुल्म को झेलती हैं।’<sup>13</sup> इसलिए डॉ॰ किरण सीमा से कहती है कि अपने पति के विरुद्ध पुलिस में रिपोर्ट लिखवाओ, लेकिन सीमा नहीं मानी। किरण ने कहा— ‘आज सुबह भी मेरे पास एक औरत इसी दशा में आई, पर वह तुमसे साहसी थी। उसने आते ही कह दिया कि उसके पति ने उसे नशे में मारा है। मेरे यहाँ पहुँचने के पहले वह रपट भी लिखवा आई थी।’<sup>14</sup> मारिशस में पत्नी को पीटने वाले पति को अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। सानी आलोक से कहती है— मर्द शराबी हो, जुआरी हो, रण्डीबाज हो तो मैं शायद

उतनी घृणा नहीं करती जितनी कि तुम्हारे पर (पत्नी पीटने वाले पर)<sup>15</sup>

इस प्रकार एक तथ्य स्पष्ट रूप में उभरता है कि मारिशस की आम नारी अथवा पत्नी पति द्वारा अपनी पिटाई को अमानवीय और असभ्य समझती है। ससुराल में काफी दुःखी होने के बावजूद बेटी मायके में जाकर बाप पर बोझ नहीं बनना चाहती। सीमा घरेलू झगड़े एवं तनाव का कारण धनाभाव समझती है। इसलिए उसने इच्छा प्रकट कि वह घर के धनाभाव को दूर करने के लिए एक फैक्टरी में नौकरी कर ले। क्योंकि उसी गाँव की दस-बारह लड़कियाँ फैक्टरी में काम करती हैं। आलोक ने इस प्रस्ताव का विरोध किया आलोक की माँ परिवार चलाने के लिए नौकरी करती थी आलोक ने अपनी माँ की नौकरी भी छुड़ा दी। इस प्रकार मारिशस की नारी धनाभाव को दूर करने के लिए नौकरी करने के लिए सदैव तत्पर रहती है।

‘अपनी-अपनी सीमा’ उपन्यास में स्वस्थ सामाजिक जीवन को भी अभिव्यक्ति मिली है। सीमा अस्पताल से कुछ दिन इलाज करवाने के बाद जब घर लौटी तो आस-पड़ोस हाल पूछने आया। ‘एक-एक करके सारा गाँव ही आ गया उसे देखने के लिए। सानी भी आई थी। बहुत दिनों बाद सीमा ने उसे देखा था।’<sup>16</sup> इस प्रकार मारिशस के ग्रामीण क्षेत्र में भाईचारा अभी तक विद्यमान है।

मॉरीशस में सरकारी नौकरी प्राप्त करने पर उसे बड़ा महत्त्व दिया जाता है और व्यक्ति सरकारी नौकरी प्राप्त करने में सफल हो जाता है, रातो-रात उसकी इज्जत बढ़ जाती है। श्याम आलोक का दोस्त होने के साथ-साथ मौसेरा भाई भी है। श्याम को मंत्रालय में क्लर्क की नौकरी मिल गई तो आलोक को महसूस हुआ कि—‘आलोक की अपनी माँ श्याम को उससे कहीं अधिक महत्त्व देने लगी थी।’<sup>17</sup> आलोक सानी गाँव में अपने आचरण के कारण काफी बदनाम है और जबसे उसे मंत्री की विशेष कारों में आते जाते देखा गया, तबसे उसकी इज्जत कम होने लगी, पर सानी जानती है कि सरकार की ओर से महिला अफसर बनते ही उसकी इज्जत बढ़ जाएगी। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का सनातन संघर्ष मॉरीशस में भी दिखाई देता है। आलोक की माँ पारिवारिक परंपराओं और सिद्धांतों का पालन करना चाहती है और चाहती है कि आलोक भी ऐसा करे, पर आलोक भिन्न विचार का युवक है। आलोक अपनी पत्नी सीमा पर दबाव डालता है कि वह अपने माँ-बाप से दो हजार रुपए लाए। आलोक की माँ को पता चला तो वह बोली— मैं आज भी इस घर में जीवित हूँ। मेरी कोई राय चाहिए या इसके लिए तुम काफी बड़े हो चुके हो, खुद तय कर लेना। मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनके लिए मुझे तुम्हारे बाप के उसूलों का भी ख्याल रखना पड़ता है। मेरे जीते जी, कम-से-कम, तुम उन सिद्धांतों को तोड़ नहीं सकते।’<sup>18</sup>

### संदर्भ

1. अभिमन्यु अनत, अपनी-अपनी सीमा, पृ० 82
2. वही, पृ० 63
3. वही, पृ० 68
4. वही, पृ० 85

5. वही, पृ० 88
6. वही, पृ० 104
7. वही, पृ० 112
8. वही, पृ० 147
9. वही, पृ० 90
10. वही, पृ० 73
11. वही, पृ० 91
12. वही, पृ० 82
13. वही, पृ० 77
14. वही, पृ० 116
15. वही, पृ० 67
16. वही, पृ० 112
17. वही, पृ० 123
18. वही, पृ० 69

## विद्यापति की पदावली में मिथिला संस्कृति

डॉ० मिथलेश कुमारी

विद्यापति मिथिला के कवि हैं। मैथिली भाषा, संस्कृति एवं लोकजीवन के प्रति उनमें गहरी आसक्ति है, जो उन्हें ज़मीनी स्तर के साधारण व्यक्ति के रूप में स्थापित करती है। भले ही वह राजपंडित, नवकवि शेखर एवं महाराज शिवसिंह के मित्र रहे हों, किंतु उन्हें मिथिला का एक साधारण कवि भर रहना ही प्रिय था। उनके पदों में आया 'विद्यापति गाओल' पद इस सत्य की ओर बार-बार पाठकों, रसिकों एवं आलोचकों का ध्यान खींचता है। इस प्रकार विद्यापति मिथिला की माटी एवं उसकी संस्कृति में रचे-बसे एक उदार एवं लोकोन्मुख कवि ठहरते हैं। विद्यापति पदावली इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। मिथिला का लोकजीवन, प्राकृतिक वैभव एवं ग्रामीण परिवेश उसमें पूरी गहराई एवं विशदता से मुखरित हुई है। कवि अपनी भाषा के बारे में अच्छी तरह जानता है कि वह कितनी मीठी, कितनी रुक्ष हो सकती है और इसीलिए भावानुरूप उसने उसका सफल प्रयोग किया है। मिथिला का लोकजीवन कितना मृदु एवं कठोर है। इसकी सही-सही उन्हें परख है। यही कारण है कि उनमें न केवल मिथिला का लोकजीवन अपितु वहाँ की भाषा भी अपने पूरे वैभव के साथ उपस्थित हुई है।

विद्यापति मिथिला की धरती से अपने लंबे साहचर्य एवं उससे गहरी संपृक्ति के नाते वहाँ के एक-एक रंग-रेशे से भली-भाँति परिचित हैं। उनके कविरूप की निर्मिति का हेतु यदि कोई है, तो वह मिथिला, उसकी संस्कृति एवं उसका लोकजीवन है, जिसकी रसमयता उन्हें गहरे तक अपने रंग में रँग गई है।<sup>1</sup> और यही वह कारण है, जिससे महापंडित विद्यापति ठाकुर आभिजात्य वर्ग एवं राजसमाज के बीच रहते हुए भी मूल रूप से लोक के अपने बन सके। उसके आचार-विचार, आस्था-विश्वास, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, पूजा-पाठ, संस्कार, उपासना पद्धति, लोकमान्यता एवं कला-शिल्प को पूर्णतः अपनत्व एवं भव्यता के साथ प्रस्तुत कर सके। वह पंडित थे, ज्ञानी थे, पर इसके साथ ही वह मिथिला की माटी से गहरे तक जुड़े भी थे। फलतः उनके पदों में उस माटी को, उसकी संस्कृति को, लोकजीवन के स्पंदन को उस रससिक्त लोकदृष्टि से देखा-परखा गया, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

फूटल कुसुम नवकुंज कुटिर वन  
कोकिल पंचम गाब रे।  
मलयानिल हिम-शिखरे सिधारल  
पिआ निज देश न आबरे।  
चाँद-चंदन तनु अधिक उताषइ

उपवने अलिकुल बूल रो।<sup>2</sup>

विद्यापति लोक-व्यवहार के मर्मज्ञ थे। बहुश्रुत तो वे थे ही, परंतु इसके साथ-ही-साथ वह काफ़ी घूमे-फिरे भी थे। जोनापुर (योगिनीपुर, जिसका एक नाम दिल्ली भी है) से लेकर पुरादित्य के तराई प्रदेश तक उन्होंने स्वयं यात्रा की थी और मुसीबत के समय राजा शिवसिंह के परिवार के साथ दर-दर भी भटके थे।<sup>3</sup> अतः वे लोक के बीच भी रहे और अभिजात्य वर्ग के मध्य भी। किंतु आकर्षित तो उन्हें लोक ही करता है, जो अभिजात्य लोगों की तरह महल-दुमहलों, हवेलियों में पला-बढ़ा तथाकथित सुविधाजीवी वर्ग न होकर जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तक के लिए हाड़तोड़ मेहनत करने वाला, भौतिक सुख-सुविधाओं से वंचित श्रमजीवी वर्ग था। उन्हें लोकचित्त की, जो इतनी खरी पहचान है, वह विद्यापति के साधारण जनता के साथ आत्मीय एवं नितान्त घनिष्ठ संबंध का ही प्रतिफल है। वह लोक के सुख-दुख, राग-विराग, आशा-आकांक्षा से गहराई तक जुड़े थे, जिसका प्रमाण उनका जोनापुर नगर वर्णन एवं वहाँ पर हिंदुओं की दुर्दशा-वर्णन है। यद्यपि यह प्रसंग विद्यापति-पदावली का नहीं है किंतु वह उसके सृष्टा के व्यक्तित्व एवं लोकोन्मुखता की ओर संकेत तो करता ही है। जबकि अन्यत्र राजाविहीन मिथिला की अस्त-व्यवस्तता पर विद्यापति कहते हैं—

ठाकुर ठक भए गेल, चोरें चप्परि धर लिज्झिअ।  
दास गोसामुनि गहिअ धम्म गए धन्ध निमज्जिअ।  
खले सज्जन परिभविअ कोई नहि होई विचारक  
जाति अजाति बिआह अधम उत्तम पतिपारक।<sup>4</sup>

मिथिला का भारतीय साहित्य एवं पांडित्य जगत् में सदैव से ही बड़ा मान रहा है। वैदिककाल में महर्षि याज्ञवल्क्य शतानंद एवं जनक ने इसका मान बढ़ाया, तो मध्यकालीन भारत में वाचस्पति मिश्र, लखिमा देवी, ज्योतिश्वर ठाकुर और वीरेश्वर ठाकुर प्रभृति विद्वानों ने। दर्शन जगत् में तो मंडन मिश्र प्रभृति दार्शनिकों का वर्चस्व रहा। विद्यापति इसी मिथिला की माटी में जन्मे, रचे-पगे और गहरे तक जुड़े कवि हैं, आचार्य हैं। ब्रजभूमि की तरह मिथिला भी उस समय राधा-कृष्ण के प्रेम, भक्ति एवं लोकरज्जकत्व से युक्त थी, जिसके विद्यापति अकुंठ गायक के रूप में हमारे सामने आते हैं। इस संबंध में डॉ० रामसजन पांडेय लिखते हैं— मिथिला आर्य संस्कृति का केंद्र रहा है। कृष्ण और राधा ब्रजभूमि की तरह मिथिला भूमि के आराध्य, सखा और प्रेमी रहे हैं।<sup>5</sup> चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में कृष्ण के प्रेम-भक्ति की जो अपरूप धारा उमड़ी, उसने इस भूमि की बोली को ही नहीं, मधुर भावव्यंजक एवं साहित्यिक रूप को ही नहीं, वरन् इस प्रदेश की संस्कृति को भी सर्वत्र प्रसारित किया। यहीं पर उक्त सारा वैविध्य-वैशिष्ट्य महाकवि विद्यापति के महनीय व्यक्तित्व के ही चारों ओर फैला हुआ है। मैथिली या विद्यापति की कोमलकांत पदावली ने अपनी मधुरता, नवता, अपरूपता तथा तन्मयता से केवल मिथिला ही नहीं, वरन् समग्र बंगला तथा हिंदीभाषी प्रांतों को मुग्ध किया। इस प्रकार मैथिली बोली के माध्यम से मिथिला संस्कृति का प्रस्तार दूर-दूर तक हुआ और उसकी सरसता, भावप्रवणता, आत्मीयता एवं व्यापकता ने वहाँ के जन-जन को काफ़ी गहराई तक स्पर्श किया। विद्यापति में मिथिला की प्रकृति अपनी संपूर्ण सुषमा एवं वैभव के साथ मूर्त है।

राधाकृष्ण के विरह वर्णन में कवि ने मिथिला के पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति ही नहीं, वहाँ का ग्रामीण परिवेश एवं खेत-खलिहान तक का समावेश कर दिया है। बसंत, वर्षा, चंद्रमा, सूर्य, फूल, तीज-त्योहार ही नहीं, उसका समग्र लोकजीवन मुखरित हो उठा है—

बरिसए लागल गरिज पओधर धरगी दन्तुरि भेली।  
नाबि नागरि-रत परदेस बालमु आओत आसा गेली।  
साजनि! आबे हमे मदन असारे।

सून मंदिर पाउस के जामिनि कामिनी की परकारे।  
लघु गुरु भए सरि पए-भरें बाढ़लि नीचे ओ भअउ अगाधे।<sup>6</sup>

मिथिला संस्कृति मूलतः कृषक-संस्कृति है। यहाँ पर कृषक, खेत-खलिहान, मेंड़, धान और उसको पगे हुए हेममय अन्न आदि का अपना विशेष महत्त्व है। वहाँ के पर्व-उत्सव मूलतः कृषि पर आधारित हैं। इन सबका परिणाम यह हुआ कि मिथिला का साहित्य लोकजीवी बना। उसकी रागात्मकता वर्णन-वैदग्ध्य एवं संपृक्ति प्रकृति के उपादानों से प्रेरित-निर्देशित होती रही। विद्यापति-पदावली भी इसका अपवाद नहीं है। कवि को अच्छी तरह पता है कि कौनसी फसल कब पकती है। कौनसा पर्व किस समय पड़ता है और किस समय कौनसी ऋतु आती है। उस समय धरती और लोकमानस का क्या रूप होता है। कहने का आशय यह है कि लोकजीवन की एक-एक लय को विद्यापति ने उसके पूरे रंग-रेशे के साथ उभारा है। प्रकृति के उपकरणों तथा प्रकृति की सहज क्रियाओं का उपयोग उनके अंदर के लोक कवि ने बड़ी चतुराई, दक्षता एवं रागात्मकता के साथ किया है।

माधव काहु जनु दिन अवगाहे।  
सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल, धुथुरा तर निरबाहे।  
दखिन पवन सौरभे उपभोगल पीड़ल अमिअ रस सारे  
कोकिल कलरव उपवन पूरल तहुकत कएल विकारे।  
पातहि सओ फुलभर अगोरल तरुतर लेलन्हि वासे।  
से फुल काटि कीट उपभोगल भमरा भेल उदासे।<sup>7</sup>

विद्यापति की मिथिला-दृष्टि अधिकतर स्थितियों की व्यंजना के लिए ठेठ ग्रामीण जीवन के ही उपमानों को अपना विषय बनाती है। चाहे वह 'रातिअंधार गाम बड़चोर हो' अथवा 'जे फूल भमर निंदहु सुमन वासि'।<sup>8</sup> उनके समस्त उपमान ग्रामीण जीवन के बीच से ही आए हैं। इसका एक उदाहरण मधुरी नामक फूल है, जो लाल रंग का होता है और मिथिला में बहुतायत में पाया जाता है इसकी सुर्ख रक्तिमा उन्हें इस कदर प्रभावित कर गई है कि वे नायिका के अरुण अधरों के लिए इसी फूल की लालिमा को उपमान रूप में प्रस्तुत करते हैं।<sup>9</sup> इसी प्रकार ओंठ के लिए कवि ने पाँड़रि को प्रयुक्त किया है। विद्यापति पदावली भले ही राजमहलों में रहने वाले राजा-महाराजाओं, सेठ-साहूकारों की रुचियों की तुष्टि करती है किंतु उसका निर्माण विशुद्ध लोकजीवन में पाए गए अनुभवों के आधार पर हुआ है। यही कारण है कि वह मिथिला की लोक-संस्कृति को, वहाँ की लोकजीवन को वाणी प्रदान कर सकी। विद्यापति की महत्ता इस बात में भी है कि जिस भाषा की साधना कर बड़े-बड़े कवि भी उस पर पूर्णतया

अधिकार नहीं रख पाते, वह विद्यापति में स्वभाव से ही प्राप्त है। भाषा उनके भावों एवं अनुभूतिमयता का अनुगमन-सी करती दिखाई पड़ती है।<sup>10</sup> अपनी अभीष्ट अभिव्यक्ति के लिए विद्यापति भाषा के पीछे कभी नहीं भागते, वरन् भाषा ही भगवती जाह्नवी के समान उनके पीछे-पीछे अनुगमन करती है। विद्यापति-पदावली की भाषा, कल्पनामयता, अभिव्यक्ति शैली और विषयवस्तु का मिथिला की संस्कृति, वहाँ के लोकजीवन से सीधा संबंध रखती है। वे बड़ी सहजता एवं आत्मीयता से हिंदू घरों में व्याप्त राधा-कृष्ण के प्रेमलीला, अभिसार एवं भक्तिभावान्वित आस्था को अपनी कविता का विषय बनाते हैं और इस उपक्रम में वहाँ के एक-एक पर्व, उत्सव, रीति-रिवाज, तिथि-त्योहार और लोकविश्वास को अपने पदों में समाहित ही नहीं करते, उसका सुंदरतापूर्ण तरीके से अभिव्यक्ति भी करते हैं। मिथिला की सारी प्रकृति, उसका आकर्षण एवं आस्था एक साथ निनादित हो उठती है।

इंदुवदनि धनि नयन विशाला।

कमलकलित जनि मधुकर माला।

देखलि कलावति अपरुब रमनी।

जिनए आइलि सुरपुर गजगमनी।

बेनी विमल विराज तसु रस कुसुमावलि हार।

स्याम शुअंगम देखि कहु कियो काम परहार।<sup>11</sup>

विद्यापति पदावली में ऋतुवर्णन एवं बारहमासे का बड़ा सुंदर उपयोग हुआ है। इनमें कवि ने मिथिला के सामान्य उपादानों को भी उपयोग में लिया है, जिससे वस्तु-वर्णन और चटक एवं सोख हो गया है। वहाँ की मस्ती, अल्हड़ता, रसात्मकता और प्राकृतिक सुषमा सभी एक साथ मूर्त हो गए हैं। सच कहा जाए तो विद्यापति पदावली मिथिला के लोकजीवन का महाकाव्य है, जिसमें सामान्य-से-सामान्य एवं विशिष्ट-से-विशिष्ट विषयों का समन्वय हुआ है।<sup>12</sup> इसमें मिथिला की माटी की सोंधी महक आदि से अंत तक व्याप्त है। अतः विद्यापति-पदावली को देख-पढ़कर, उसके रचनाकार के संबंध में जो छवि उभरती है, वह गँवई मन और संस्कारों वाले एक निहायत साधारण, सरल और अपनी भूमि से अनुराग रखने वाले, निश्छल, सहृदय और पवित्र अंतःकरण वाले मनुष्य की छवि है। एक ऐसा मनुष्य जो साधारण-से-साधारण व्यक्ति के साथ जुड़ा है और अपने समकालीन युग से तदाकार है।<sup>13</sup> जहाँ वर्ण, जाति, धर्म और वर्ग के प्रति संकीर्ण मनोभाव का अभाव है। इसी कारण वह अपने युग, समाज और जमीन से एकलय, एकतरु हो सके। जिस प्रकार सूर और तुलसी अपने युग एवं लोक की मनोभावना को पहचानते हैं, उसी प्रकार विद्यापति भी अपने समकालीन संदर्भों से पूर्णतया जुड़े हुए हैं।<sup>14</sup> वे अपनी माटी और लोकमन की खरी-खरी पहचान रखते हैं। उनकी रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीति और सांसारिक जो भी सोच विद्यमान है, वह तत्कालीन लोकमन की सोच है। साधारण जनमानस ही उनके कविमानस के रूप में प्रतिबिंबित हुआ है। इस साधारण लोकमानस को उन्होंने उसकी बोली-बानी, आचार-व्यवहार, हर्ष-विषाद, दाह-दुख, ताप-त्रास को एक साथ अपनी रचनाओं में रूपायित किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि विद्यापति अपने समाज एवं लोक को उस स्तर पर जाकर देखते-समझते हैं, जो उसकी मूल पहचान है। उनके यहाँ मिथिला की



लोक-संस्कृति जिस रूप में आई है, वह राजवैभव में पले-बढ़े, विद्याभिमानी, महापंडित विद्यापति ठाकुर की वाणी नहीं, लोक के गर्भ में पले-बढ़े उस लोककवि की वाणी प्रतीत होती है, जिसका कभी राजन्य वर्ग एवं समाज के धनी-मानी जनों से साबका पड़ा ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने अपना सारा पांडित्य एक ओर रखकर अपनी इस पदावली का निर्माण किया है। जहाँ लोक है, मस्ती है, अल्हड़ता है और है यौवन का अकुंठ आलाप, जिसकी रसमयता में सारा मिथिला प्रदेश नाच उठना चाहता है।

विद्यापति पदावली के अनेक पदों में वहाँ के संस्कार, व्यापार-वाणिज्य, आर्थिक संदर्भों के साथ-साथ वहाँ का सारा लोकजीवन ध्वनित होता है।<sup>15</sup> उसके राग-विराग, हाट-बाजार, लोकरीति-विश्वास, आस्था, शकुन-अपशकुन, सभी कुछ स्वयमेव आ उपस्थित हुए हैं।

#### संस्कार :

संस्कार मनुष्य को समाज एवं परिवार के एक योग्य सदस्य के रूप में ढालने वाली प्रक्रिया है। जिसे भारतीय लोकजीवन में एक उत्सव माना गया है। चूँकि विद्यापति-पदावली में समूची मैथिल संस्कृति समाई है, अतः यहाँ पर मिथिला के संस्कार-उत्सवों का बड़ा जीवंत चित्र उभरा है। इनमें जन्मोत्सव, नामकरण, जन्मपत्री, मंगलगान, शहद चटाना, कमर में सूत बाँधना, विवाह आदि का वर्णन प्रमुख है। इसके साथ ही इन अवसरों पर वाद्य-यंत्रों का वादन, वंदनवार, दधि-हल्दी, मुहूर्त-शोधन, पूजन, आशीर्वाद दान प्रभृति अनेक आयोजनों का भी कवि ने सुंदर वर्णन किया है।

#### जन्म :

माघ माँस मिरिपञ्चमि गँजाइलि  
नवए माँस पञ्चम हरुआइ।  
अतिघन पीड़ा दुख बड़ पाओल  
बनस्पती के बधाई हे  
सुभ खन बेरा सुकल पख हे।  
दिनकर उदित समाइ।  
सोलह सँपुने बत्तिस लखने जनम लेल रितुराई हे।<sup>16</sup>

#### मंगलगीत :

नाचए जुवतिगन हरखित जनमल बाल मधाइ हे।  
मधुर महारस मंगल गाब ए मानिनि मा उड़ाइ हे।<sup>17</sup>

#### शृंगारोत्सव एवं वंदनवार :

बह मलयानिल ओत उचित हे  
वन घन भयउ उजिआरा  
माधवि फूल भल गजमुकता तुल  
ते देन वन्दनेवारा

पीअरि पाँउरि मुहुअरि गाबए  
काहर कार धुथूरा।<sup>18</sup>

**गंगा :**

गंगा मिथिला की जीवनधारा है। वह भुक्ति, मुक्ति एवं समस्त सुखों की मूल है। कवि का ही नहीं, संपूर्ण भारत का गंगा पर भक्तिभाव है। उसके लिए एक बूँद गंगाजल का मूल्य करोड़ों मील चलने के कष्ट से भी अधिक मूल्यवान है। फिर तो गंगा के सान्निध्य का कहना ही क्या?

बड़ सुख-सार पाओल तुअ तीरे। छोड़इत निकट नयन बह तीरे।  
कर जोडि बिमनओ विमल तरंगे। पुन दरसन होइह पुनमति गंगे।  
एक अपराध खेमब मोर जानि। परसल माए पाए तुअ पानी।  
कि करब जप तप जोग धेजाने। जनम कृतारथ एकहि सनाने।<sup>19</sup>

**दुर्गा एवं भवानी :**

मिथिला भूमि शाक्त विचारधारा-प्रधान बंगाल प्रांत से लगी हुई है। अतः यहाँ पर इस संप्रदाय का अत्यधिक प्रभाव रहा है। विद्यापति के समय में भी यह प्रभाव बना रहा। उन्होंने जिस भक्तिभाव से अपने इष्ट शिवजी एवं गंगा की स्तुति की है, उसी भक्तिभाव से भगवती दुर्गा एवं भगवती पार्वती की भी वंदना की है।

जय-जय भगवति भीमा भयानी  
चारि वेदे अवतरु ब्रह्मवादिनि।  
हरिहर ब्रह्मा पुछइत भमें  
एक ओ न जान तुअ आदिमरमे।<sup>20</sup>

**विविध विश्वास :**

मिथिला की संस्कृति में विविध विश्वास संबंधी तथ्य मिलते हैं। झाड़-फूँक, टोना-टोटका, नजर लगना, शकुन-अपशकुन, अंगस्फुरण, पुनर्जन्म, बलि प्रथा, सती प्रथा, गोदान का यहाँ बोलबाला रहा है। विद्यापति के समय में तो तंत्र-मंत्र प्रधान वज्रयान और नाथपंथी अपने चरम पर था। फलतः कवि की वाणी पर भी उसका प्रभाव पड़ा। इस संबंध में डॉ० रामसजन पांडेय का विचार है-

‘किसी भी समाज में व्याप्त विविध विश्वास उस समाज की विविधता की ही पुष्टि करते हैं। मिथिला का समाज भी वैविध्यमूलक था, अतएव उसमें विविध विश्वासों की व्याप्ति रही हो, तो कोई अतिरंजना नहीं। मिथिला के लोगों में पुनर्जन्म, जादू-टोना, नजर लगना आदि नाना बातें व्याप्त थीं। जिसका वर्णन विद्यापति के साहित्य में मिलता है।<sup>21</sup>

**पुनर्जन्म :**

भारतीय समाज में अनादिकाल से पुनर्जन्म का विश्वास व्याप्त है। मिथिला और विद्यापति भी इसके अपवाद नहीं है। विद्यापति की स्पष्ट मान्यता है कि अगला जन्म इस जन्म के कर्मों के अनुसार ही निर्धारित होता है। इसके साथ ही उनकी पदावली में झाड़-फूँक, जंत-मंत्र, टोना आदि की भी उपस्थिति है, जो महिलाओं के संदर्भ में विशेष रूप से आई है।

वहाँ पर नारियाँ हस्तरेखा के माध्यम से जोगी जाति से झाड़-फूँक कराकर उसके भावी अनिष्ट को दूर करना चाहती हैं।

बहुरिक पानि धरिहे रह जोगी, कुशल करब वनदेव।  
इहे एक अंक बंक बिसंकओं, वन मधि पसुपति सेब।  
पुजनक तंत्र-मंत्र बहु आछए, से हम किछु नहि जान।<sup>22</sup>

#### नज़र लगाना :

लोकमानस में नज़र लगाना एक महत्वपूर्ण तथ्य रहा है। किसी स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट बालक अथवा सौंदर्यवती स्त्री को नज़र जल्दी लग जाती है। अतएव उसको कुदृष्टि से बचाने के लिए माथे पर काला टीका अथवा गले में बघनखा पहनाने की परंपरा रही है। विद्यापति ने बालक बसंत के लिए उसकी संरक्षिकाओं द्वारा डिठौना लगाने, कटि-सूत्र बाँधने एवं गले में बघनखा पहनाए जाने का बड़ा सुंदर वर्णन किया है। इसी क्रम में उन्होंने बालक को झूला झुलाने का भी वर्णन किया है।<sup>23</sup>

#### गोदना गुदवाना :

शरीर पर चित्रकारी अथवा लेखन करवाना 'गोदना' कहा जाता है। भारतीय समाज में इसका प्रचलन अत्यंत प्राचीनकाल से है। मिथिला में तो इसका चलन चरम पर दिखाई पड़ता है। जिसका प्रभाव विद्यापति पर भी देखा जा सकता है। उनकी एक नायिका, जो मानिनी रूप में दिखाई पड़ती है, अपने वक्ष पर उभरे काले तिल अथवा बने गोदने को मिटाना चाहती है, जिसके लिए वह मलयज का प्रयोग करती है।

असित चित्र उर पर छल, मेटल देह लगाइ।  
मृगमद तिलक धोइ मृगंचल कचसयँ मुख लए छपाए।  
एक तील छल चारु, चिबुक पर बिन्दि मधुप सत सामा।  
तून अग्रे करि मलयज रंजल ताहि छपा ओल रामा।

इस प्रकार विद्यापति-पदावली में मिथिला की माटी, उसकी सौंधी सुगंध एवं लोकजीवन ही नहीं संपूर्ण मैथिल-संस्कृति ही जीवंत हो उठी है। कवि की सौंदर्य-दृष्टि एवं उसका मिथिला के प्रति लगाव उस अवस्था का स्पर्श करता है, जहाँ तक पहुँचने में बड़े-बड़े महाकवियों की लेखनी भी नहीं पहुँच पाई है। वहाँ का लोकजीवन, प्राकृतिक वैभव, पर्व-उत्सव, तीज-त्योहार एवं लोकरीति परंपराएँ कवि को निरंतर काव्यसाधना में निरत रहने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। विद्यापति मिथिला की माटी, वहाँ के साधारण-से-साधारण उपकरण, आस्था, विश्वास, संस्कार, रूढ़ियों, रीति-रिवाज़, वेशभूषा एवं ग्रामीण परिवेश को पूरी गंभीरता से अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं। वहाँ की भाषा पर विद्यापति का असाधारण अधिकार है। फलतः मिथिला की जनभाषा 'मैथिली' उस उत्कर्ष तक पहुँच गई, जो महान-से-महान भाषाओं को भी नसीब नहीं होता है। मिथिला की संस्कृति, लोकजीवन एवं आस्था के विषय, उनके महत्व से विद्यापति भली-भाँति परिचित हैं। इसमें उनका लोक से घनिष्ठ संबंध एवं उसके साथ लंबा साहचर्य भी एक महत्वपूर्ण कारक है। इसका परिणाम यह हुआ कि विद्यापति अपनी मातृभूमि

के साथ केवल भावात्मक अर्थों में ही नहीं जुड़े, बल्कि रचनात्मक स्तर पर भी उससे तदाकार हो सके। जिससे मिथिला की संस्कृति, वहाँ के लोकजीवन एवं प्राकृतिक समृद्धि के वे अकुंठ गायक बन सके। उनकी मधुर भावान्वित कोमलकांत पदावली ने अपनी मधुरता, नवता, अपरूपता एवं रागात्मकता से न केवल मिथिला, अपितु समग्र बँगला-साहित्य एवं हिंदी जगत् को अपने सौंदर्य से मुग्ध कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मिथिला और उसकी संस्कृति एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित न रहकर व्यापक फलक पर प्रसारित हो गई।

### संदर्भ

1. डॉ० रामसजन पांडेय, विद्यापति : व्यक्ति एवं कवि, पृ० 84
2. विद्यापति पदावली, पद संख्या 152
3. विद्यापति पदावली, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० 86
4. विद्यापति, कीर्तिलता, पृ० 16
5. डॉ० रामसजन पांडेय, विद्यापति : व्यक्ति और कवि, पृ० 84
6. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 177
7. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 167
8. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 117
9. वही, पद संख्या 1
10. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 19
11. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 17
12. वही, पद संख्या 147
13. वही, पद संख्या 147-149
14. कीर्तिलता, पृ० 16
15. डॉ० प्रमोदकुमार सिंह, विद्यापति-पदावली में लोकसंस्कृति का चित्रण, पृ० 14
16. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 14
17. वही, पद संख्या 14
18. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 14
19. वही, पृ० 35
20. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 44
21. डॉ० रामसजन पांडेय, विद्यापति : व्यक्ति और कवि, पृ० 88
22. विद्यापति-पदावली, पद संख्या 182
23. वही, पद संख्या 14

□ अध्यक्ष हिंदी विभाग  
के०ए० पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज  
कासगंज, काशीराम नगर ( उ०प्र० ) 207123

## समकालीन कहानियों में सांप्रदायिकता-विरोधी चेतना

डॉ० मनोजकुमार

सन् 1980 के पश्चात् भी सांप्रदायिक दृष्टि से देश में कोई कम उथल-पुथल नहीं हुई है। नौवें एवं दसवें दशक में ही पंजाब का खालिस्तान विवाद एवं जम्मू-कश्मीर में पाक प्रायोजित आतंकवाद अपनी चरमसीमा पर पहुँचा और आधे-से-अधिक भारत में अयोध्या का रामजन्मभूमि एवं बाबरी मस्जिद विवाद सातवें-आठवें दशक से ही छाया रहा। परिणामतः आलोच्य अवधि के बाद भी देश में अनेक स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए। इसी के साथ केंद्र तथा अनेक प्रांतों में भी उथल-पुथल रही, इसी समयावधि में राजनेता, धनी वर्ग एवं अपराधियों के गठजोड़ भी अपनी चरमसीमा में उभरे।<sup>1</sup>

सन् 1980 के पश्चात् देश में जहाँ जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद और अलगाववाद का बोलबाला रहा, वहीं इसी दशक में भारत की सबसे बड़ी समस्या सन् 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद देशभर में हुए हिंदू-सिख सांप्रदायिक दंगे रहे।

1984 में इंदिरा गांधी हत्याकांड के पश्चात् पूरे देश में जिस प्रकार सांप्रदायिक तांडव हुआ, उसे मात्र एक दंगा कहकर ही व्याख्यायित करना पर्याप्त नहीं होगा। ऐसा नहीं है कि कभी भी दो विपरीत विचारधाराओं में परस्पर विवाद न हुआ हो अथवा दो संप्रदायों के बीच आपस में लड़ाई न हुई हो। अन्य सांप्रदायिक दंगों के विपरीत 1984 के हिंदू-सिख दंगे सबसे अलग थे। ये दंगे पूरे देश में पहली बार एक साथ हुए और पूरे देश में धर्म के साथ-साथ राजनीतिक बदले की भावना का राक्षसी तांडव हुआ। जिसका तात्कालिक कारण था— दो सिख अंगरक्षकों द्वारा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या।

इस काल के सांप्रदायिक दंगों के संबंध में 'काला नवंबर' के संपादक सुरेंद्र तिवारी लिखते हैं—'1984 में जो कुछ हुआ, उसे हम किस नाम से पुकारें? क्या दंगा इसके लिए पर्याप्त है? मुझे लगता है नहीं, सिर्फ दंगा कहकर हम स्थितियों को एकरूप नहीं कर सकते। क्योंकि हम सब जानते हैं कि जो कुछ हुआ, वह तो बहुत बाद की बात है। स्थितियाँ तो बहुत पहले से ही अपने भयानक रूप में हमारे सामने थी। स्थितियों ने आपसी भाईचारे को ख़त्म कर आपसी वैमनस्यता, संदेह और अविश्वास को जन्म दिया था।'<sup>2</sup>

भीष्म साहनी जैसे कहानीकार भी, जिन्होंने 1947 के देश-विभाजन के समय हुए सांप्रदायिक दंगों और 1984 में हुए हिंदू-सिखों दंगों को स्वयं देखा था और दंगों को उत्पन्न

करनेवाले कारणों का खुले मन से अनुभव किया था, 1984 की इस घटना को दंगा मानने से इंकार करते हुए अपनी कहानी 'झुटपुटा' में स्पष्ट करते हैं— 'यह कोई दंगा तो न हुआ? दंगों में तो लोग दुश्मन को पहचानते हैं, एक-दूसरे को ललकारते हैं, एक-दूसरे का पीछा करते हैं। पर यहाँ तो सड़क ख़ाली थी और दुकान को, जो चाहे तोड़ जाए, जो चाहे, जला जाए। दंगे ऐसे तो नहीं होते। लुटेरों में एक भी चेहरा पहचाना नहीं था, एक भी आदमी अपने मुहल्ले का नहीं था। क्या हम इसे दंगा कह सकते हैं या नहीं?'<sup>3</sup>

सन् 1980 के पश्चात् देश में जितने भी दंगे हुए, उनके पीछे मुख्य कारण स्वार्थी राजनेताओं द्वारा धर्म की ग़लत व्याख्या कर सामान्य जनता की भावनाओं को उकसाना था। सन् 1985 में अलीगढ़ (उ.प्र.) में दंगा भड़का, जिसके कारण अलीगढ़ शहर पचासी दिन तक कर्फ्यू की गिरफ्त में रहा।<sup>4</sup>

सन् 1985 के इस दंगे के कारणों को स्पष्ट कर लेखक पुनः लिखते हैं— 'फ़ैजाबाद के तत्कालीन ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश श्री के.एम. पांडेय द्वारा अपने एक निर्णय में विवादित पूजा-स्थल का ताला खोलने और पुजारी को भीतर जाने की अनुमति देना था कि हिंदू और मुस्लिम दोनों समुदाय एक-दूसरे के सामने आ खड़े हुए।'

इसी क्रम में डा० गिरिराजशरण अग्रवाल ने राजनीतिज्ञों एवं सरकार की भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है— 'अलीगढ़ का यह सांप्रदायिक दंगा रामजन्मभूमि, बाबरी मस्जिद के राजनीतिकरण का भयंकर परिणाम था। इस विवाद को राजनीति का हथियार बनाने की प्रक्रिया तो तभी शुरू हो गई थी, जब सरकार ने मुस्लिम महिला शाहबानो के मामले में तलाक़ के बाद गुज़ारे-भत्ते को लेकर अलग क़ानून पास कर दिया था और मुस्लिम समुदाय को भारतीय दंड संहिता की धारा 125 से मुक्त करते हुए उसे अपने निजी धार्मिक क़ानून पर चलने की अनुमति दे दी थी। स्वभावतः देश के बहुसंख्यकों में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उनमें रोष एवं उत्तेजना की भावना बढ़ी। यह देखकर सरकार ने घबराहट में मुस्लिम वोटों को अपने पक्ष में करने के लिए जिस प्रकार मुस्लिम तलाक़ क़ानून पास किया था, उसी प्रकार अयोध्या के विवादित पूजास्थल का ताला खुलवाने में सहायक बनकर बहुसंख्यकों को संतुष्ट करने का प्रयास किया। नतीजा यह हुआ कि तिकड़म के इस खेल में सरकार हार गई जबकि हिंदू और मुसलमानों के बीच अलगाव की खाई और भी ज़्यादा चौड़ी हो गई।'<sup>5</sup>

इस तरह सन् 1980 के बाद देश में सांप्रदायिक दंगों को चिंगारी दिखानेवाले मुख्य कारण कश्मीर में फैला आतंकवाद, पंजाब का खालिस्तान आंदोलन, अयोध्या का रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के साथ ही प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या रही है।

जहाँ सन् 1984 में श्रीमती गांधी की हत्या के उपरांत दिल्ली के साथ ही देश के अन्य राज्य हिंदू-सिख सांप्रदायिकता की चपेट में आए, वहीं सन् 1980 से लेकर सन् 1990 तक रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के विवाद के कारण दंगों के घरे में आए। इन कारणों के अतिरिक्त कतिपय अन्य कारण भी रहे, जिनके मूल में धार्मिक पर्व एवं स्वार्थी राजनेताओं के भड़काऊ वक्तव्य भी कारण रहे हैं।

सांप्रदायिक अलगाववाद के इतिहास में जितनी भयंकर भूमिका रामजन्मभूमि एवं बाबरी मस्जिद प्रकरण की रही है, उससे अधिक किसी अन्य कारण की नहीं रही है। इसकी

स्थिति तब और अधिक गहराई तक खतरनाक बनी, जबसे इस विवाद का राजनीतिकरण हुआ। इस विवाद ने देश ही नहीं, विदेशों में रह रहे हिंदू-मुस्लिमों को भी प्रभावित किया। इसके संबंध में यह विवाद व्यापक रूप से हिंदू और मुसलमान दोनों संप्रदायों में जनसामान्य की भावनाओं के साथ जुड़ गया है और धर्म की राजनीति चलानेवालों ने इसे अब इतना जटिल बना दिया है कि तर्क-बुद्धि या परस्पर सहमति से किसी निर्णय पर पहुँचना सरल नहीं है। इस विवाद ने 30 अक्टूबर 1990 को सांप्रदायिक दंगों की जो आग भड़काई थी, उसमें उत्तर प्रदेश के 32 जिले एक साथ धू-धू करके जल उठे थे।<sup>6</sup>

इन सभी प्रकार की घटनाओं एवं देश में हुए सांप्रदायिक दंगों तथा राजनीतिक क्षेत्र की उथल-पुथल को तत्कालीन रचनाकारों ने देखा एवं भोगा है। अपने उसी भोगे हुए को उन्होंने अपने रचना-संसार में कथ्य बनाकर उजागर किया है, जिसका हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत अन्वेषण करेंगे।

1. घटनाओं पर आधारित कहानियाँ, 2. मानसिकता पर आधारित कहानियाँ, 3. प्रतीकों पर आधारित कहानियाँ। तत्कालीन कहानीकारों की कहानियों का विश्लेषण-विवेचन प्रस्तुत है—

#### 1. घटनाओं पर आधारित कहानियाँ

वर्तमानकाल के रचनाकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा सांप्रदायिक दंगों व तनाव को पैदा करनेवाली परिस्थितियों व कारणों को खोजने का सार्थक प्रयास किया है। 1984 के हिंदू-सिख सांप्रदायिक दंगे भारतीय इतिहास में विभाजन के पश्चात् पहली बड़ी सांप्रदायिक घटना थी, जिसने न केवल पूरे देश को सांप्रदायिक द्वेष की लपटों में घेर लिया, अपितु वर्षों से साथ रह रहे हिंदू-सिखों में सांप्रदायिक तनाव उत्पन्न करवाया। तत्कालीन कहानीकारों ने 1984 में हुए प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी हत्याकांड और उससे पूर्व पंजाब में व्याप्त आतंकवाद के पश्चात् देशभर में हुए सांप्रदायिक दंगों के कारणों और घटनाओं को अपनी कहानियों का कथानक बनाया है।

कहानीकार हृदयेश सिख-हिंदू विवाद का कारण राजनेताओं को मानते हैं। उनके अनुसार जब दोनों वर्गों में रोटी-बेटी का संबंध हो, जब एक भाई केशधारी सिख तो दूसरा हिंदू हो, तो फिर आपसी अलगाव या विवाद का तो प्रश्न ही नहीं उठता। देश में इस विवाद को फैलाने में राजनीतिज्ञों के अपने व्यक्तिगत स्वार्थ ही प्रधान रहे हैं।

सरदार सोहनसिंह मशीन छोड़कर आगे बढ़ आए, 'ठाकुर साब, ऐसा न बोलिए... परमेश्वर के लिए ऐसा न बोलिए। हिंदू और सिख दोनों एक हैं। मेरा छोटा भाई मोहनसिंह जो गाजियाबाद में है, उसकी बेटी की सगाई हिंदू चोपड़ा के घर हुई है। मेरी बहन की दोनों बहुएँ हिंदू घरों से आई हैं। ठाकुर साहब, यह वोटों की सियासत है, जो हिंदुओं और सिखों को अलग करने के लिए ज़हर फैला रही है।'<sup>7</sup>

सन् 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री की हत्या के बाद देश के अनेक शहरों में दंगे हुए। लोगों की संवेदना जाने कहाँ चली गई? वे अपने ही सीधे-साधे अनपढ़ पढ़ोसियों को इसलिए मार रहे थे कि वे मात्र सिख या हिंदू थे। उनमें किसी का नाम प्रधानमंत्री के हत्यारे से मिलता था। इस प्रकार की घटना का यथार्थ चित्रण करते हैं कहानीकार हृदयेश अपनी कहानी—

‘अफ़वाहें’ में। एक अंश प्रस्तुत है—

‘शरीफ़ मोहम्मद ने एक मिनट तक खड़े-खड़े सतवंतसिंह को ताका और फिर झपटकर उसकी गर्दन पकड़ ली। ...उसकी आँखें चमक उठीं और स्वर और भी तमक गया— ‘प्रधानमंत्री को सतवंतसिंह ने मारा और यह हरामी भी सतवंतसिंह है? इस मादर ...को भी मार दो।’<sup>8</sup>

इस समय उपजा जुनून इतनी गहराई तक बैठ चुका था कि अगर माँ ने किसी सिख को घर में छिपाकर रखा, तो उसी का बेटा उसका दुश्मन बन बैठा। यहाँ तक कि उसने सिख को शरण देनेवाली माँ को भी नहीं छोड़ा। यह सांप्रदायिकता की अंतिम पराकाष्ठा है, जिसने व्यक्ति को संवेदनाहीन एवं पशु से भी तुच्छ बना दिया। इसी प्रकार की घटना को कथानक बनाकर कहानी-लेखिका मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी ‘अगली सुबह’ का ताना-बाना बुना है।<sup>9</sup>

इस काल के कहानीकारों ने श्रीमती इंदिरा गांधी हत्याकांड से प्रभावित घटनाओं का यथार्थ व सटीक चित्रण अपनी कहानियों में बिना किसी पक्षपात के किया है। हृदयेश की, ‘अफ़वाहें’, मृदुला गर्ग की ‘अगली सुबह’, महीपसिंह की ‘एक मरा हुआ दिन’, स्वयंप्रकाश की ‘क्या तुमने कोई सरदार भिखारी देखा है’, सुरेंद्र तिवारी की ‘हत्यारा’ आदि कहानियों में देश की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात् उत्पन्न विभिन्न घटनाओं का यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत किया है। श्रीमती गांधी पर उनके ही अंगरक्षकों द्वारा चलाई गई गोली की ख़बर आग की तरह संपूर्ण भारत के साथ ही विश्वभर के देशों में फैली। इस घटना का चित्रण कहानीकार ‘हृदयेश’ ने अपनी कहानी ‘अफ़वाहें’ में किया है।<sup>10</sup> इसी क्रम में आगे पुनः कथाकार लिखता है— ‘फिर किसी ने बताया कि प्रधानमंत्री की मृत्यु हो गई है। हिंदुस्तान रेडियो ने नहीं कहा पर पाकिस्तान रेडियो ने बता दिया है।’ इस हत्याकांड ने लोगों को मानसिक रूप से आहत किया था क्योंकि मुल्क के लिए बहुत बुरा हुआ, बहुत ही बुरा। बहुत ही दिलेर और दूरदेश लीडर थी। वह इस्पात की औरत थी ...वास्तव में, यह बहुत ही बुरी ख़बर है।’<sup>11</sup>

हत्या के उपरांत लोगों के मन में संदेह के बादल उमड़ने लगे। यथा— ‘वहीं पास खड़े गली के एक अन्य रहनेवाले ने कहा ‘सरदारों ने प्रधानमंत्री की मौत के बाद मिठाई बाँटकर खुशियाँ मनाई हैं। इस शहर में भी गुरुद्वारे में रोशनी की गई।’<sup>12</sup>

इस प्रकार की मानसिकता एवं स्थितियों ने तत्काल में दंगों को फैलाने में आग पर घी डालने जैसा कार्य किया। इस समय पर अफ़वाहें भी अधिक फैली और उनका प्रभाव सीधे सांप्रदायिक सद्भाव पर पड़ा। वातावरण शांत होने की तुलना में और भी बिगड़ गया। कहानीकार सुरेंद्र तिवारी ने अपनी कहानी ‘हत्यारा’ में श्रीमती गांधी की हत्या के उपरांत की घटनाओं को प्रस्तुत करते हुए लिखा है— ‘और इसके बाद की कहानी तो आप भी जानते हैं, वे सभी जानते हैं, जो अपने घरों के दरवाज़ों को मजबूती से बंद करके अँधेरे कमरों में बैठे रहे थे और वे भी जानते थे, जो हाथों में हथियार उठाए तेल के डिब्बे और दियासलाई की तीलियाँ लिए गलियों में घूमते रहे थे। ये जहाँ-जहाँ से गुज़रते थे, गलियाँ, सड़कें, मारो-काटो, जलाओ के शोर में डूब जाती थीं, आग की रोशनी और धुएँ के गुब्बारे के बीच उन्हें शायद कोई पहचान नहीं पाया। लोगों के घरों के दरवाज़े, जो एक बार बंद हुए तो कई दिनों तक बंद रहे। बाहर कफ़्यू और भीतर दहशत। एक तेज़ आँधी उठी और शहर को, शहर को ही क्यों, पूरे देश को दबोच ले गई।’<sup>13</sup>



इसी प्रकार श्रीमती गांधी की हत्या के उपरांत फैली सांप्रदायिक आग का यथार्थपरक चित्रण कहानीकार 'धीरेंद्र अस्थाना' ने अपनी कहानी 'विचित्र देश की प्रेमकथा' में किया है। यह कहानी मानव की पशु-प्रवृत्ति को उजागर करने में पूर्णतः सक्षम है। उस समय दंगाइयों ने लोगों के घरों में आग लगा दी। जीवित लोगों को उस आग में पकड़-पकड़कर झोंक दिया या घर में से बाहर ही नहीं निकलने दिया।<sup>14</sup>

डा. महीपसिंह की कहानी 'एक मरा हुआ दिन' इंदिरा गांधी हत्याकांड के पश्चात् दिल्ली और देश के अन्य शहरों में निर्दोष व्यक्तियों के साथ हुए अमानुषिक व्यवहार की भयानक घटनाओं का चित्र प्रस्तुत करती है।

इन बेगुनाह लोगों के साथ अमानवीय अत्याचार केवल इसलिए किए जा रहे थे कि वे सिख थे और इंदिरा गांधी की हत्या भी किसी सिख ने की थी। आक्रोश और प्रतिशोध की ज्वाला में नेताओं के भड़काने से अत्याचार करनेवाले ये लोग अपना विवेक और संपूर्ण मानवमूल्यों को त्याग चुके थे। अंधी सांप्रदायिकता की चिंगारी लेकर इन गुंडों और असामाजिक तत्वों की भीड़ निर्दोष व्यक्तियों के साथ अमानुषिक व्यवहार केवल इसलिए कर रही थी, क्योंकि वे सिख धर्म के अनुयायी थे।<sup>15</sup>

कहानीकार स्वयंप्रकाश ने अपनी कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है?' में आतंक, भय व बर्बरतापूर्ण वातावरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, जहाँ एक बुजुर्ग सिख को, जिसकी किसी से कोई दुश्मनी नहीं, उपद्रवियों के अमानुषिक अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। अपने-आपको बचाने के लाख प्रयत्न करने पर भी वह असहाय, अकेला वृद्ध सिख प्रतिशोध व आक्रोश का शिकार बन जाता है।<sup>16</sup>

सांप्रदायिक बर्बरता से भरी घटनाओं का शिकार केवल एक संप्रदाय ही नहीं हो रहा था, अमानवीय कृत्यों का नंगा नाच दोनों ही संप्रदाय की ओर से हो रहा था और दोनों ओर के लोगों को धिनौने अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा था। सांप्रदायिक उन्माद से भरे ऐसे समय में व्यक्ति पशुवत् आचरण करने पर उतर आया था, वह सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों से पूरी तरह मुँह मोड़ बैठा था। ऐसी घटनाओं का यथार्थ चित्रण प्रख्यात कहानीकार विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानी 'सत्य को जीने की राह' में किया है।<sup>17</sup>

वहशीपन से भरी धिनौनी पशुवृत्ति की सीमा इतना करने पर भी समाप्त नहीं हुई थी। सांस्कृतिक मूल्यों की तो अलग बात थी, वह बर्बरता और अमानवीय कृत्यों की सीमाओं को भी लाँघ चुका था—'इतने में उसी तरह की एक चीख सुनी मैंने। सुरजीत ने कृपाण से उस लड़की का सीना चीर दिया था। एक बार शायद उसका चेहरा ऐंठा था या वह भी मेरा अपराधबोध ही था। दूसरे ही क्षण जद्दोजहद करने की सारी शक्ति समाप्त हो गई। पर समाप्त नहीं हुई हमारी जानवर होने की क्षमता।'<sup>18</sup>

जिस कौम ने सदैव देश-रक्षा के लिए, सनातन-धर्म के लिए अपना सर्वस्व निछावर किया, उसी कौम को लोगों ने देशद्रोही मानकर मारना आरंभ कर दिया, जो मात्र स्वार्थी एवं चापलूस राजनीतिक लोगों का ही खेल था। उस समय यदि किसी पड़ोसी ने अपने पड़ोसी अथवा परिचित को बचाना भी चाहा तो बचा नहीं पाया। दंगाइयों ने, असामाजिक तत्वों ने, गुंडों ने, किसी की बात नहीं मानी। जो लोग जिंदगी-भर साथ-साथ नौकरी करते रहे, रिटायरमेंट पाने

के बाद अपने गुजारे के लिए, रहने के लिए किसी प्रकार मकान बना सके, उन्हें भी लोगों ने जानते-पहचानते हुए नहीं छोड़ा। इसका एकमात्र कारण था उनका सिख होना। इस प्रकार की घटना का यथार्थपरक चित्रण कहानीकार कुसुम अंसल ने अपनी कहानी 'कुछ अनकहा' में किया है।<sup>19</sup>

इसी प्रकार का घटनापरक चित्रण कहानीकार भीष्म साहनी अपनी कहानी 'झुटपुटा' में करते दिखाई देते हैं। सांप्रदायिक उन्माद से भरी हिंसक भीड़ के हाथों जो व्यक्ति बच भी गए थे, वे भी दूसरे धर्म के संरक्षण में अपने-आपको असुरक्षित महसूस कर रहे थे। संदेह, भय, विवशता व लाचारी से छिपे बैठे लोगों की स्थिति दयनीय थी। मृदुला गर्ग की कहानी 'अगली सुबह' इसी विवशता व बेबसी का यथार्थ चित्रण करती है। जहाँ अशोक की माँ उसके मित्र सरबजीत को दंगाइयों से बचाने के लिए स्टोर में बंद कर देती है और वह भय व लाचारी से छिपा बैठा है। उसके अंतर्द्वंद्व और उसकी व्यथा का चित्रण लेखिका ने मार्मिकता से किया है।<sup>20</sup>

सांप्रदायिक सद्भाव को स्थापित करनेवाले लोगों ने केवल सद्भाव की बातें ही नहीं कहीं, अपितु दंगों के दौरान दूसरे समुदायों के लोगों को बचाने का भी भरसक प्रयास किया। दूसरे संप्रदायों के लोगों को अपने घरों में छिपाकर उन्होंने मानवमूल्यों की रक्षा की। इस प्रकार के सद्भाव को स्थापित करनेवाली कुछ प्रमुख कहानियाँ हैं— कहानीकार वीर राजा की 'अरथी', स्वयंप्रकाश की 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है', राधावल्लभ त्रिपाठी की 'कफ़्यू हटने के बाद' और मृदुला गर्ग की 'अगली सुबह'। मृदुला गर्ग ने 'अगली सुबह' कहानी में सत्तो द्वारा पुत्र के सिख दोस्त को अपने मकान में छिपाकर रखने की घटना को कथानक बनाया है। वह उसे बचाने की पूरी कोशिश करती है।<sup>21</sup>

राजेंद्रराव की 'वैष्णवजन' और राकेश तिवारी की 'जुनूनिये' कहानी हिंदू-सिखों की मित्रता की अटूट गाँठों को उजागर करती हुई सांप्रदायिकता का विरोध करती हैं। सांप्रदायिक दंगों के दौरान अपने मित्रों पर हुए अमानवीय अत्याचारों से ऐसे लोग स्वयं भी असहनीय पीड़ा का अनुभव कर रहे थे। वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि मजहबी भीड़ किसी पर दया नहीं करती। इसी कारण बलविंदर के बाहर जाने की जिद देखकर उसका मित्र राधे खीज जाता है और उसे रोकते हुए कहता है—'लगता है, तुम पागल हो गए हो। यहाँ तुम्हारी जान न चली जाए तो कहना।' राधे खीझकर बोला। बलविंदर भी उत्तेजित हो गया, 'हाँ, मैं पागल हो गया हूँ। क्यों न होऊँ, मेरी दो पुश्तों की कमाई राख हो गई। अगर यह सब बचा-खुचा सामान भी चला गया तो हम जिंदा रहकर क्या करेंगे?'<sup>22</sup>

1984 में श्रीमती गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने। उनके शासनकाल में अयोध्या का रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद उभरकर सामने आया। इस विवाद के कारण 1990 में देश के अनेक शहरों में सांप्रदायिकता की आग भभक पड़ी। डा. गिरिराजशरण अग्रवाल अपनी कहानी 'फ़रिश्ता' में तत्कालीन सांप्रदायिक घटना का यथार्थपरक चित्रण करते हुए लिखते हैं—'जैसे-तैसे हुसैन के शब्द होंतों तक आए, उसकी गंभीरता उसकी पीड़ा को खुद बता रही थी। धीरे-धीरे हुसैन ने कहा, 'मुझसे क्या पूछते हो राकेश! मुझ पर इतना भयानक कुछ नहीं गुजरा जितना इस पूरे शहर पर गुजरा है। सुना है पूरा बाज़ार राख का ढेर हो गया। सजी हुई दुकानें भूतों का डेरा बनी खड़ी हैं। सब्जी मंडी शमशान बन गई है। बड़वान

और बकली में भीषण नरसंहार हुआ है।’<sup>23</sup>

सन् 1990 के रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद के कारण हुए हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता में जहाँ लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे बन गए थे, वहीं समाज में ऐसे सहृदय एवं ऐक्यभाव रखनेवाले लोग भी थे, जिन्होंने अपने विरोधी धर्म के लोगों को अपने यहाँ शरण दी और अपने प्राणों की परवाह न करते हुए उनकी रक्षा की। डा. गिरिराजशरण अग्रवाल ने इसी स्थिति का चित्रण अपनी कहानी ‘फ़रिश्ता’ में बूढ़े राजेंद्रपालसिंह के माध्यम से किया है, जो लेखक की सांप्रदायिकता-विरोधी चेतना को ही उजागर करता है।<sup>24</sup>

प्रख्यात रचनाकार डा. महीपसिंह की कहानी ‘एक मरा हुआ दिन’ में सरदार हरनाम को बिना किसी सांप्रदायिक द्वेष व घृणा का शिकार होना पड़ता है। एक साथ कई लोग उसे मारते हैं। ऐसे वातावरण में जब उसे चारों ओर खूँखार चेहरे दिखाई दे रहे थे और प्यास के कारण जान निकलने को थी, उस समय एक मजदूर व्यक्ति और उसकी स्त्री उसकी सहायता करने को आगे आते हैं। उसे खाने के लिए देते हैं और पानी पिलाकर उसके उखड़ते हुए प्राणों को बचाते हैं।<sup>25</sup>

तत्कालीन रचनाकारों ने जहाँ एक ओर हिंदू-सिख सांप्रदायिकता के कारणों का यथार्थपरक चित्रण किया, वहीं सद्भाव की भावनाओं को भी उकेरा है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन रचनाकारों ने हिंदू-मुस्लिम सद्भाव को बढ़ाने के लिए अपनी कहानियों में कथानकों का ताना-बाना बुना है।

कहानी-लेखिका डॉ॰ मीना अग्रवाल ने अपनी कहानी ‘अपनत्व’ में हिंदू भाई राकेश के द्वारा अपनी मुसलमान बहिन सीमी की आबरू बचाने के लिए दंगाइयों के हाथों अपनी जान गँवाने की घटना के माध्यम से सांप्रदायिक सद्भाव को विस्तृतफलक पर उकेरा है। उनकी कहानी का एक दृश्य प्रस्तुत है—‘सारी रात आँखों में कट गई है। भोर की पहली किरण के साथ ही हॉकर खिड़की से अख़बार फेंक गया। अमीना घबराकर उठी। उसे चिंता थी, बस्ती का हाल जानने की। सीमी की, राजेश की, सभी बेटे-बेटियों की। अचानक उन पंक्तियों पर उसकी नज़र जाकर रुक गई— ‘राजेश नामक नौजवान बलवाइयों से अपनी बहन सीमी की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गया। सीमी को सुरक्षित पुलिस स्टेशन पहुँचा दिया है। वह मामूली तौर पर घायल हुई है।’<sup>26</sup>

देश में सांप्रदायिकता की भावना को समाप्त करने के लिए सरकार को भी सहयोग करना होगा, उसे पार्टी-हित से ऊपर उठकर राष्ट्रीय हित में कार्य करना होगा। देश में सांप्रदायिक सद्भाव स्थापित करने के कठोर क़ानून भी बनाने पड़ें तो उसके लिए भी तत्पर होना होगा। राजनेताओं को कुर्सी का लोभ त्यागकर जनकल्याण के विषय में सोचना होगा। किसी भी संप्रदाय अथवा धर्म के विरोध अथवा समर्थन में कोई भी ऐसा वक्तव्य देने से बचना होगा, जिससे सांप्रदायिक भावना उभरती हो। समाज में रूढ़िवादी मानसिकता को त्यागकर विकास के मार्ग प्रशस्त करने होंगे। जातीय भेदभाव को भुलाकर एकता और समानता का भाव अपनाना होगा। वर्गवाद से उठकर सर्वधर्म समभाव को अपनाना होगा।

## 2. मानसिकता पर आधारित कहानियाँ

वर्तमान में एक सशक्त कहानीधारा सांप्रदायिकता का तीव्र विरोध कर रही है। इस समय में जहाँ एक ओर भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती, महीपसिंह, विष्णु प्रभाकर जैसे कहानीकार विभाजन

की असहनीय पीड़ा लिए हुए अब भी विद्यमान हैं, वहीं दूसरी ओर सुरेंद्र तिवारी, श्रीनाथ, स्वयंप्रकाश, राकेश तिवारी, सुरेंद्र मनन, हृदयेश, वीरसिंह, दीवान वीरेंद्रनाथ, मंजुल भगत आदि कहानीकार हैं, जिन्होंने 1984 में सांप्रदायिकता की बर्बरता पूर्ण घटनाओं को स्वयं अपनी विस्मित आँखों से देखा और उस संकीर्ण मानसिकता को महसूस किया था, जो अलगाववाद के बीजों को उत्पन्न करने में सहायक रहे थे। इन कहानीकारों ने केवल सांप्रदायिक सद्भाव को स्थापित करने वाली घटनाओं को ही उजागर नहीं किया, अपितु संकीर्ण व प्रतिशोध से प्रेरित उस मानसिकता को भी यथार्थरूप में उद्घाटित किया, जिसके कारण सांप्रदायिकता का तांडव हुआ। 'अफवाहें', 'भावो भागांवाली', 'किस पर', 'कुछ अनकहा', 'कपर्ण हटने के बाद', 'हत्यारा', 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है?', 'झुटपुटा', 'सत्य को जीने की राह', 'एक मरा हुआ दिन', 'अगली सुबह', 'अरथी', 'जुनूनियो', 'स्याह घर' आदि कहानियों में सांप्रदायिकता फैलाने वाले मानसिक विकारों को यथार्थ धरातल पर उजागर किया गया है।

व्यक्ति जहाँ भी रहता है, उस पर वहाँ के वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह भी सत्य है कि जिस प्रकार का वातावरण होगा, उसी प्रकार की वहाँ रहनेवालों की मानसिकता बन जाएगी। कुछ इसी प्रकार के कथानक बुने हैं समकालीन कहानीकारों ने। पंजाब में आतंकवाद एवं सांप्रदायिक दंगों से पूर्व हिंदू-सिखों में अटूट भाईचारा था। किंतु जब धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँची और हिंदू-सिखों के मध्य तनाव बढ़ा तो वह इतनी गहराई तक गया कि साथ उठने-बैठने वाले परिवारीजन भी एक-दूसरे के साथ बैठने-उठने में कतराने लगे। वे एक-दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे। कुछ इसी प्रकार की स्थिति को कहानीकार सुरेंद्र तिवारी अपनी कहानी 'हत्यारा' में उकेरते हैं। कहानी की पात्र लंछवत, जो सबसे मिल-जुलकर रहती है और जिसके साथ पास-पड़ोस की सभी महिलाएँ उठती-बैठती हैं, वे सभी महिलाएँ सिखों द्वारा हिंदुओं को मारे जाने की खबरें सुनकर उसके पास आना-जाना कम करने लगती हैं। उसका दोष था सिख महिला होना।<sup>27</sup>

आतंकवादी गतिविधियों से देश कई वर्षों तक त्रस्त रहा है। आतंकवादी गतिविधियों के कारण ही देश को जहाँ बहुत-से जन-धन की हानि उठानी पड़ी, वहीं देश के प्राचीन भाईचारे, आपसी विश्वास को ठेस पहुँची। देश को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी का बलिदान भी देना पड़ा। यह कोई कौम-विशेष का काम नहीं था। यह तो उस स्वार्थी मानसिकता का काम था, जो केवल अपनी पहचान बनाना चाहती थी, जो केवल राष्ट्र को अस्थिरता के दलदल में धकेलना चाहती थी। इंदिरा गांधी हत्याकांड ने जहाँ जनता में अविश्वास को बढ़ाया, वहीं संकीर्ण मानसिकता का परिचय भी दिया। इसी जातीय संकीर्ण मानसिकता को कहानीकार हृदयेश अपनी कहानी 'अफवाहें' में उकेरते हैं।<sup>28</sup>

सांप्रदायिक तनाव के इस वातावरण में कई ऐसे सहृदय व्यक्ति भी थे, जो भले ही सांप्रदायिक ताकतों का शिकार नहीं हुए थे; किंतु फिर भी वे इनके प्रभावों को महसूस कर रहे थे। इनमें से अनेक ऐसे लोग भी थे, जो भारत-विभाजन के दौरान शरणार्थियों के रूप में भारत में आए थे। ऐसे लोगों को उस पीड़ा का अहसास था, जो कि उन्हें स्थानांतरण के दौरान सहनी पड़ी थी। पुनः भीष्म साहनी लिखते हैं- 'यह मुहल्ला तो पहले ही शरणार्थियों का मुहल्ला है। यहाँ पर तो लुटे-पिटे लोग आकर सिर छिपाने के लिए बैठ गए थे, जब पाकिस्तान बना था। तब उन्हीं में

से सिखों को चुन-चुनकर मारेगा।’<sup>29</sup>

कहानीकार वीर राजा ‘अरथी’ कहानी में शास्त्रीजी के माध्यम से सद्भाव की मानसिकता को उजागर करते हैं। अलगाववाद की संकीर्ण भावना किस प्रकार लोगों में द्वेष की भावना को बढ़ावा देकर उनकी मानसिकता को संकीर्ण बनाती है और देश की अखंडता के लिए ख़तरा उत्पन्न करती है, इस बात को संवेदनशील व्यक्ति महसूस कर रहे थे। अलगाववाद के बढ़ते क़दमों को देखते हुए ऐसे लोग मानसिक रूप से भविष्य की भयंकरता को देख रहे थे। यथा—

‘शास्त्री जी थरथर काँपने लगे। कोई बात उनके अंदर थी, जो शोला बन चुकी थी, ‘फिर तो अपने दो प्रदेशों को छोड़कर सभी अलगाववादी हो जाएँगे। हमारे ये दोनों प्रदेश जात-पात में इस कदर डूब चुके हैं कि हमें कोई हक़ नहीं कि दूसरों को सबक सिखाएँ।’<sup>30</sup>

समाज में अनेक लोग ऐसे भी होते हैं, जो सर्वधर्म सम्मान को मानते हैं। उनके लिए किसी भी धर्म की पुस्तकों को पढ़ना अथवा उनकी चौपाई अथवा आयतों को गाना कोई बुरा काम नहीं। किंतु आतताइयों अथवा दंगाइयों के लिए यह बात महत्त्व नहीं रखती। इसके अतिरिक्त रूढ़िवादी धार्मिकों के लिए भी यह चरित्र अहसनीय होता है, कि वे अपने धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के भक्ति-पाठों को गाते हैं। इस प्रकार की संकीर्ण मानसिकता को उकेरती है कहानीकार हृदयेश की ‘अफ़वाहें’ कहानी।<sup>31</sup>

सन् 1984 के दंगों में जहाँ हिंदू-सिखों के बीच अविश्वास की भावना बढ़ी, वे एक-दूसरे के रक्त-पिपासु बने, वहीं प्रशासन की ओर से शांति स्थापित करने, दंगों को रोकने के लिए लगाई गई पुलिस भी संकीर्ण धार्मिक भावनाओं से मुक्त नहीं रही। वह अपने-अपने धार्मिक संप्रदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं के अनुकूल कार्य कर उनको ग़लत कार्यों के लिए उकसाने में पीछे नहीं रही। यह प्रवृत्ति उसकी संकीर्ण रूढ़िवादी मानसिकता को ही उजागर करती है। कहानी लेखिका कुसुम अंसल अपनी कहानी ‘कुछ अनकहा’ में पुलिस की इसी मानसिकता को उजागर करती दिखाई देती हैं। यथा— ‘हमारी प्रधानमंत्री को मारेंगे तो क्या हम चुप रहेंगे। मैं तो खुश हूँ— हमारी पड़ोसन है ना निर्मला, उसका नंदोई पुलिस में है। कह रहा था....जब दंगे होते हैं तो हम हिंदुओं को रोकते ही नहीं....कहते हैं मारो सालों को...इनकी माइनरिटी जीरो कर दो....।<sup>32</sup>

इसी प्रकार के मानसिक द्वंद्व को कहानीकार यादवेंद्र शर्मा ‘चंद्र’ ने अपनी कहानी ‘किस पर’ में चित्रित किया है। कहानीकार ने इंदिरा गांधी की हत्या के कारण भड़के दंगे के बाद उस दंपती की मानसिक पीड़ा को उकेरा है, जिनमें पति हिंदू और पत्नी सरदार की बेटी थी।<sup>33</sup>

कहानीकार यादवेंद्र शर्मा ‘चंद्र’ जसवंतसिंह एवं दुखीराम के द्वारा सांप्रदायिक मानसिकता एवं चरित्र को स्पष्ट करते हैं। वे इनके चरित्र द्वारा स्पष्ट करते हैं कि सांप्रदायिक कोई धर्म-विशेष के लोग नहीं होते। किसी भी धर्म का कोई भी व्यक्ति सांप्रदायिक मानसिकता का बीमार हो सकता है। उनका उद्देश्य केवल सांप्रदायिकता फैलाना एवं अपना स्वार्थ-सिद्ध करना होता है अथवा अपनी काम-पिपासा शांत करना होता है। कहानीकार अंततः ऐसे लोगों को मारने में विश्वास रखता है।<sup>34</sup>

श्रीमती गांधी की हत्या के उपरांत देश में ऐसा वातावरण बना कि कोई भी हिंदू-सिख पड़ोसी चाहकर भी एक-दूसरे पर विश्वास नहीं कर पा रहे थे। यदि कोई विश्वास करना चाह भी रहा था तो कुछ लोग ऐसे भी थे, जो इसके ठीक विपरीत बात कर रहे थे। इस प्रकार की

मानसिकता को कहानी लेखिका कुसुम अंसल ने अपनी कहानी 'कुछ अनकहा' में उकेरा है।<sup>35</sup>

अविश्वास की मानसिकता का वातावरण इतना गहरा गया कि निश्चल मन वाले बच्चों को भी इस भावना ने नहीं छोड़ा। उस वातावरण में बच्चों की मानसिकता को कहानीकार राधावल्लभ त्रिपाठी अपनी कहानी 'कपूरू हटने के बाद' में इस प्रकार चित्रित करते हैं—

'सुन एक बात बताऊँ— एक सरदार बैठा है तेरे ड्राइंगरूम में—दीपक कह रहा है।

—पता है। वो अमरीक अंकल हैं। पापा के दफ्तर में काम करते हैं।

—सुन तो! इसी ने गोली मारी है इंदिरा गांधी को।

—चल हट!

—सच कह रहा हूँ। अभी मम्मी सक्सेना आँटी को बता रही थीं कि तेरे पापा चुपचाप स्कूटर पर बिठाकर एक सरदार को लाए और अपने घर में छिपा लिया। कह रही थीं—ऐसे खूनी-हत्यारों को लोग अपने घर में क्यों लाते हैं।' <sup>36</sup>

इसी क्रम में वातावरण के प्रभाव से बनी स्कूली बच्चों की मानसिकता को भी कहानीकारों ने प्रस्तुत किया है— '—कहा था न इसी सरदार ने मारी है गोली—पेश फिर अपनी बक-बक चालू कर देता है—अब पिटाई पड़ेगी, तो पता चलेगा, हाथ-पैर टूट जाएँगे—हमें स्कूल कौन ले जाएगा फिर? हमारे मुँह से निकल पड़ता है।' <sup>37</sup> सांप्रदायिक दंगों से जब सर्वत्र वातावरण ही दूषित हो जाता है तो उसका प्रभाव सभी पर पड़ता है। पास-पड़ोस में रहनेवालों में भी विश्वास की डोर टूटने की कगार पर आ जाती है। वे द्वंद्वात्मक स्थिति में आ जाते हैं। इस प्रकार की स्थिति को सुरेंद्र तिवारी अपनी कहानी 'हत्यारा' में स्पष्ट करते हैं। <sup>38</sup>

अंतर्द्वंद्व की स्थिति का एक और चित्र प्रस्तुत है—'ऐसे में इंद्रनाथ को चुप हो जाना पड़ता। कहाँ तक पक्ष ले, कहाँ तक विरोध करे, यह वह खुद ही निर्णय नहीं कर पा रहा था। जो जहरीली हवा चारों तरफ़ बह रही थी, उसमें साँस लेना भी मुश्किल हो उठा था। तारासिंह से मिलते हुए अब वह संशय की अंधी गलियों में भटकता रहता।' <sup>39</sup>

सन् 1980 के उपरांत देश में अलग-अलग स्थानों पर अनेक दंगे हुए। कभी उनका कारण धर्म रहा, कभी राजनीतिक नेताओं की स्वार्थी प्रवृत्ति रही तो कभी पंजाब में पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद रहा और कभी अयोध्या का रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद का विवाद। सांप्रदायिक दंगों में अनेक ऐसे लोग भी मारे गए, जो सदा सांप्रदायिक सद्भाव के पोषक रहे या जिनका सांप्रदायिक तत्त्वों से किसी प्रकार का संबंध नहीं था। कुछ लोगों ने इस प्रकार के लोगों को दंगाइयों से बचाना चाहा परंतु अथक् प्रयासों के उपरांत भी उन्हें बचा नहीं पाए। दंगों के शांत होने पर ऐसे लोग मन-ही-मन में घुटन महसूस करने लगे। इन लोगों की मानसिक पीड़ा को भी तत्कालीन कथाकारों ने अपनी कहानियों में यथार्थरूप में चित्रित किया है। इस अंतर्द्वंद्व को कहानीकार सुरेंद्र तिवारी ने अपनी कहानी 'हत्यारा' में उकेरा है। <sup>40</sup>

प्रख्यात रचनाकार अमृतलाल नागर अपनी कहानी 'मोती की सात चलनियाँ' में हिंदू-मुस्लिमों के बीच की सांप्रदायिकता को समाप्त करने के लिए दोनों वर्गों के लड़के-लड़कियों के प्रेम-विवाह का समर्थन करते हैं। <sup>41</sup> वास्तव में रचनाकार नागर जी रूढ़िवादी मानसिकता को समाप्त कर समाज में सर्वधर्म समभाव की स्थापना करना चाहते हैं। इस सद्भाव के विरोध में खड़ी मुस्लिम कट्टर मानसिकता को भी उन्होंने बड़े सटीक शब्दों में उकेरा है। <sup>42</sup>

इसी प्रकार कहानीकार गोविंद मिश्र अपनी कहानी 'दूसरी सुबह' में रमेश और आलम दो मित्रों के माध्यम से जहाँ सांप्रदायिक सद्भाव को स्थापित करने का प्रयास करते हैं, वहीं दूसरी ओर रमेश के पिता उमाशंकर के माध्यम से कट्टर हिंदू रूढ़िवादी चरित्र को भी चित्रित करते हैं। यथा— 'उन्होंने उस दिन अपनी पत्नी को घेरा। कितने दिनों से दबाए हुए थे— 'इस लड़के का इतना आना-जाना मुझे पसंद नहीं ... वह अपने रमेश का वक्त बहुत बरबाद करता है। इसकी सोहबत रमेश को बिगाड़ देगी। यहाँ ऐसे पड़ा रहता है जैसे कि उसका ही घर हो। खाने पर क्यों बैठा लिया ....।' <sup>43</sup>

डा.मीना अग्रवाल ने अपनी कहानी 'अपनत्व' में अमीना के द्वारा ऐसे मानसिक अंतर्द्वंद्व को भी उकेरा है, जिसकी बेटी सीमी अपने भाई राजेश को राखी बाँधने गई, किंतु साँझ ढले तक लौटी नहीं, तब माँ किस प्रकार चिंतित हो जाती है, उसकी मानसिकता एवं बाह्य परिवेश का यथार्थपरक चित्रण डा.मीना अग्रवाल ने किया है। <sup>44</sup>

हमारा विचार है कि वर्तमान समाज में, विशेषकर भारतीय समाज में, जहाँ पर अनेक धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं, समान मानसिकता का विस्तार आवश्यक है। किंतु, राष्ट्रीय स्तर पर एक समान मानसिकता बनाने के लिए हमें पूरे प्रयास करने होंगे। सर्वप्रथम इसके लिए सभी वर्गों के लिए समान शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक है। सभी वर्गों को, सभी संप्रदायों को एक राष्ट्रीय नीति के अंतर्गत शिक्षा ग्रहण करनी आवश्यक की जाए। शिक्षा से ही समुदायों की अथवा व्यक्तियों की संकीर्ण मानसिकता समाप्त हो सकती है। तभी वे संकुचित दायरे से बाहर निकलकर समाज और राष्ट्र के हित में सोच सकते हैं।

### 3. प्रतीकों पर आधारित कहानियाँ

समकालीन कहानीकारों में प्रमुख हैं— भीष्म साहनी, डा.महीपसिंह, निशतर खानकाही, मृदुला गर्ग, धीरेंद्र अस्थाना, मंजुल भगत, राधावल्लभ त्रिपाठी, राकेश तिवारी, स्वयंप्रकाश, सुरेंद्र तिवारी, हृदयेश आदि। इन कहानीकारों ने अपनी कहानी झुटपुटा, एक मरा हुआ दिन, जलता हुआ सवाल, अगली सुबह, विचित्र देश की प्रेमकथा, सत्य को जीने की राह, अरथी, किस पर, कुछ अनकहा, स्याह घर, कफ़्यू हटने के बाद, हत्यारा, अफ़वाहें, क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है? और जुनूनिये में कथानकों को यथार्थपरक घटनाओं से ग्रहण किया है। कथानकों में परिवेश को जीवंत करने के लिए कहानीकारों ने सटीक प्रतीकों का यथास्थान प्रयोग किया है।

प्रख्यात रचनाकार अमृतलाल नागर सांप्रदायिक सद्भाव स्थापित करने के लिए समाज में नए-नए प्रयोग करना चाहते हैं। कहानीकार ने अपनी कहानी 'मोती की सात चलनियाँ' में हिंदू-मुस्लिमों में व्याप्त सांप्रदायिक भावना को समाप्त करने के लिए दोनों पक्षों में वैवाहिक संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। सामाजिक रूढ़िवादिता के कारण लड़की एवं लड़के के माँ-बाप इस प्रकार के प्रेम-विवाहों के विरोधी भी हैं। उनका मानना है कि इस तरह के प्रेम-विवाह समाज में असफल हो जाते हैं। किंतु कथाकार समाज में फैली सांप्रदायिकता की लंबी-चौड़ी खाई को पाटने के लिए इसे एक सफल कारक मानते हैं। इसी भावना को वे प्रतीक रूप में चित्रित करने का प्रयास करते हैं। यथा— 'सुरेंद्र को हँसी आ गई, बोला, 'पापा, राकेट तेज़ी से उड़ रहे हैं, तेज़ी से फेल भी हो रहे हैं, पर उतनी ही

तेजी से स्पेस-ट्रैबल की सफलता भी बढ़ रही है।’<sup>45</sup>

वास्तव में नागर जी राकेटों के सफल एवं असफलता के माध्यम से वर्तमान में प्रेम-विवाह के सफल और असफल होने को दर्शाना तो चाहते हैं किंतु यह भी स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिस प्रकार रोकट की तीव्रगति से दो स्थलों के मध्य की दूरी शीघ्र तय की जा सकती है, उसी प्रकार प्रेम-विवाहों के माध्यम से समाज में बनी सांप्रदायिक भावना, कट्टरता, रूढ़िवादिता की भावनाओं को भी किसी सीमा तक समाप्त तो किया ही जा सकता है।

व्यक्ति के शरीर में जब नासूर अथवा कैंसर की बीमारी घर कर लेती है तो धीरे-धीरे उसका पूरा शरीर खोखला होता जाता है, अंततः वह मौत के मुँह में चला जाता है। इसी भाँति समाज में जब सांप्रदायिकता का ‘नासूर’ या ‘जहर’ फैलता है तो वह तब यह नहीं देखता है कि कौन किस धर्म का, किस संप्रदाय का अनुयायी है, सभी को अपनी गिरफ्त में धर दबोचता है, सभी वर्गों को धन-जन की हानि तो उठानी ही पड़ती है, साथ ही सामाजिक सद्भाव को भी आघात पहुँचता है। इसी भावना को कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह अपनी कहानी ‘दंगाई’ में ‘प्रतीक’ के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते हैं—‘....सियाराम मय सब जग जानी!’ मुझे लगता है कि यहाँ तो सब कुछ सियाराम मय दिखाई पड़ रहा है। तब वह गाँठ कहाँ है, जो कभी-कभी किसी स्थान पर नासूर बनकर बहने लगती है।’<sup>46</sup>

इसी क्रम में कथाकार पुनः प्रतीक का सटीक प्रयोग कर लिखता है—‘और लगता है कि वह गाँठ मेरे ही दिमाग में है। नासूर का वह स्रोत मेरे ही भीतर विद्यमान है। जहर की वह जड़ मेरे ही पेट में फैली हुई है।’<sup>47</sup>

कहानीकार नफीस आपफ़रीदी ने अपनी रचना ‘फ़साद’ में ‘आग’ एवं ‘चूड़ियाँ’ जैसे प्रतीकों का प्रयोग विस्तृत फलक पर किया है। ‘आग’ जहाँ व्यक्ति की सांप्रदायिक भावना को उजागर करती है वहीं ‘चूड़ियाँ’ कमज़ोर लोगों में सांप्रदायिक भावना उकसाने वाली भावना को प्रदर्शित करने में सक्षम है। इन प्रतीकों का प्रयोग द्रष्टव्य है— ‘ये आग उगलती आँखों से सात मकान छोड़कर मौलवी खुदाबख़्श के मकान की ओर देख रहे थे, जहाँ चार आदमी बरामदे में बैठे थे—और मौलवी साहब के छोटे भाई से कानाफूसी कर रहे थे।’<sup>48</sup>

इसी प्रकार आगे— ‘आज कुछ होकर रहेगा फ़साद खड़ा होगा। पंडित जी ने चूड़ियाँ नहीं पहनी हैं। वह ज़रूर कुछ करेंगे।’<sup>49</sup>

इसी प्रकार कहानीकार ने अपनी कहानी ‘फ़साद’ में सज्जनता एवं सरल स्वभाव के लिए ‘गऊ’, क्रोध एवं घृणाभाव के लिए, ‘आँखों में शोले’ तथा सांप्रदायिक उन्माद में एक-दूसरे को मारने वाले लोगों के लिए ‘बिफरे शेरों’ के प्रतीक का प्रयोग किया है।

कथाकार निशतर ख़ानकाही अपनी कहानी ‘जलता हुआ सवाल’ में जहाँ एक ओर सांप्रदायिक भावनाओं के द्वारा नष्ट हुई संवेदना को उकेरते हैं, वहीं उन्होंने सांप्रदायिकता, सज्जनता को ‘आग’, ‘नंगा’ एवं ‘गाय’ के प्रतीकों द्वारा पूर्ण परिवेश को जीवंत करने का प्रयास किया है।

कहानीकार हृदयेश की कहानी में ‘साँप’ उन सांप्रदायिक तत्त्वों का प्रतीक है, जो बाह्यरूप में तो समाज के हितैषी बने रहते हैं किंतु जब उनका मौका लगता है तो अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समाज को सांप्रदायिक आग में झोंक देते हैं। इन्हीं तत्त्वों को लक्ष्य कर कथाकार अफ़वाहें कहानी में लिखता है—‘....पाकिस्तान से भागकर आने पर हमने इनको अपनाया, मगर ये



साँप निकले। साँपों का सिर अगर अब भी न कुचला गया तो ये औरों को भी डँस सकते हैं।'<sup>50</sup>

सन् 1984 में श्रीमती गांधी की हत्या के पश्चात् देश में सांप्रदायिक तत्त्वों ने जहाँ-तहाँ तांडव किया। कब कहाँ पहुँच जाएँ और क्या कर दें, सब अकल्पनीय था। इसी को लक्ष्य कर कथाकार स्वयंप्रकाश अपनी कहानी 'क्या तुमने कभी कोई सरदार भिखारी देखा है' में प्रतीक रूप में लिखते हैं— 'लाठियों-बल्लमों-कुल्हाड़ियों और बेंतों से लैस भीड़ डिब्बे में घुस आई। आगे-आगे एक नौजवान लड़का था। पतलून-बनियान पहने। काला तगड़ा और खूँखार। पिए हुए। वह जैसे हिस्टोरिया में चीख रहा था था— 'माँ को मार डाला। सरदार! निकल बाहर इसकी माचोडालूँ!...' और सीटों के नीचे से समान हटा-हटाकर डंडा फटकारता जा रहा था।

मुसाफिर कह रहे थे—'नहीं है। नहीं है। इस डिब्बे में कोई नहीं है।' एक तूफान की तरह पागलों की वह भीड़ एक तरफ़ से घुसकर दूसरी तरफ़ से निकल गई।'<sup>51</sup>

इस प्रकार रचनाकार ने उपर्युक्त कथन में 'तूफान' के द्वारा तत्कालीन सांप्रदायिक वातावरण की तीव्रता एवं विशालता को यथार्थरूप में ला खड़ा किया है। साथ ही 'पागलों' के द्वारा सांप्रदायिक तत्त्वों की भावनाओं को भी स्पष्ट कर दिया।

सन् 1984 के दंगे देश के लिए एक अनहोनी घटना थी। इस समय देश के अनेक भाग दंगों की चपेट में आ गए। उनकी व्यापकता के सम्मुख प्रशासन भी मूक-बधिर हो गया। वह असहायों की तरह ही खड़ा देखता रहा। सांप्रदायिक वातावरण को कहानीकार सुरेंद्र तिवारी अपनी कहानी 'हत्यारा' में इस प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं—

'ऐसे में इंद्रनाथ को चुप हो जाना पड़ता, कहाँ तक पक्ष लें, कहाँ तक विरोध करें, यह वह खुद ही निर्णय नहीं कर पा रहा था। जो जहरीली हवा चारों तरफ़ बह रही थी, उसमें अब साँस लेना भी मुश्किल हो उठा था।'<sup>52</sup>

इस प्रकार कहानीकार ने अपने कथन में 'जहरीली हवा' प्रतीक के माध्यम से तत्कालीन सांप्रदायिक वातावरण को पाठक के सामने यथार्थरूप में प्रकट करने में सफलता पाई है। कथाकार बीर राजा की कहानी 'अरथी' सांप्रदायिक दंगों के कारण समाप्त हुए उन मानव-संबंधों, भाईचारे, ऐक्यभाव, मानव-संवेदनाओं की द्योतक है, जो सांप्रदायिक आग में जलकर राख हो गए हैं।<sup>53</sup>

इसी प्रकार वातावरण को प्रतिबिंबित करने के लिए 'गर्म हवा' एवं सद्भाव को स्थापित करने के लिए 'फूल' के प्रतीकों का प्रयोग किया है।

कहानीकार विष्णु प्रभाकर ने अपनी कहानी 'सत्य को जीने की राह' में दंगों के समय डरी, सहमी, भयभीत स्त्रियों के लिए 'फाख़्ता' मनुष्य की सांप्रदायिक प्रवृत्तियों के लिए 'राक्षस' और दंगों के लिए 'तूफान' जैसे सटीक प्रतीकों का प्रयोग किया है, जो पाठक को यथार्थ की भावभूमि से परिचित कराने में पूर्णतः स्पष्ट एवं सक्षम हैं।

'झुटपुटा' कहानी के लेखक भीष्म साहनी सांप्रदायिकता को समाप्त कर सद्भाव की स्थापना के लिए 'दूध' को प्रतीक रूप में स्थापित करते दिखाई देते हैं। साहनी जी ने भी सन् 1984 के दंगों को अपनी कहानी के कथानक के लिए चुना है। तब हिंदू-सिख एक-दूसरे के सामने आ डटे। तब वे सद्भाव स्थापित करने के प्रयास किस रूप में करते हैं, द्रष्टव्य है उसकी प्रतीकात्मक रूप में एक छटा—

'सरदार जी, आप कैसे...?'

इस पर सिख ड्राइवर मुस्काया और बोला, 'बीबी, बच्चों ने दूध तो पीना है ना! मैंने कहा, चल मना, देखा जाएगा जो होगा। दूध तो पहुँचा आएँ।'

और क्लीनर को दूध का पाइप लगाने की हिदायत करने लगा।'<sup>54</sup>

कथाकार हृदयेश की कहानी 'अफ़वाहें' में अलगाव एवं आतंकवाद का प्रतीक 'खालिस्तान' है तो सांप्रदायिक तत्त्वों एवं बिना किसी कारण के समाज में अफ़वाहें फैलाने वालों का प्रतीक 'कुत्ता' है। जो बिना किसी कारण भौंकता रहता है।

1984 में सांप्रदायिकता का ज़हर अनेक शहरों में फैला, और इस सीमा तक फैला कि लोगों ने इसकी कल्पना भी नहीं की थी। इसकी व्यापकता को प्रतीकात्मक रूप में कहानीकार राधावल्लभ त्रिपाठी अपनी रचना 'कपर्ण हटने के बाद' में इस प्रकार करते हैं— शाम होती है, तो छत पर चढ़कर हम देखते हैं—कई जगहों से आग उठ रही है। शहर में अँधेरा है, बस आग की लपटों की लाल रोशनी दूर तक फैलती रहती है।'<sup>55</sup>

सांप्रदायिकता की घृणित पशुवृत्ति के शिकार समाज में सभी वर्गों के लोग होते हैं। इस द्वेष-भावना से हज़ारों घर स्याह बन जाते हैं, राख के ढेर में परिवर्तित हो जाते हैं। कथाकार मंजुल भगत ने सांप्रदायिक दंगों के उपरांत का चित्रण अपनी कहानी 'स्याह घर' में किया है। कथाकार ने कहानी नामकरण किया 'स्याह घर', जो प्रतीक रूप में किया है। द्रष्टव्य है कथाकार के द्वारा इसका प्रतीकात्मक प्रयोग— 'अब यह स्याह घर भी देख लो। यहाँ राख के ढेर पर बैठे-बैठे भी मुझे भूख लग आती है।'<sup>56</sup>

इस प्रकार कथाकार द्वारा प्रयुक्त प्रतीक 'स्याह घर' एवं 'राख का ढेर' वास्तव में लकड़ी, सीमेंट ईट आदि के नहीं अपितु उन समस्त मानवमूल्यों, सांस्कृतिक, सामाजिक व राष्ट्रीय मूल्यों पर पुती कालिख है और उनके नष्ट होने की 'राख' के हैं, जो सांप्रदायिक उन्माद ने एकत्रित की है। यह 'स्याह घर' एवं 'राख का ढेर' सांप्रदायिक मानसिकता से भरे मनुष्यों की उस पशुवृत्ति का प्रमाण है, जिसने स्वार्थ और प्रतिशोध की अग्नि में मानवमूल्यों को जलाकर राख के ढेर में परिवर्तित कर दिया है।

इसी प्रकार अन्य रचनाकारों ने भी अपनी कहानियों में सांप्रदायिकता तथा उसके कारण समाप्त होते मानवमूल्यों, सांस्कृतिक, सामाजिक संबंधों, सांप्रदायिक, अलगाववादी भावनाओं, रूढ़िवादी मानसिकता आदि को प्रतिबिंबित करने के लिए अलग-अलग अर्थपूर्ण प्रतीकों का प्रयोग किया है। यथा—'कैलाश तेरी बीबी तो पढ़ लिखकर भी पागल है, निरी पागल। सारे हिंदुस्तान में आग लगी है।'<sup>57</sup> यहाँ पर संपूर्ण राष्ट्र में सांप्रदायिक दंगों के भड़कने के लिए 'आग' का सशक्त प्रतीक रूप में प्रयोग हुआ है।

कथाकार सरोज वशिष्ठ अपनी कहानी 'बसंत लाया जाता है' में कुछ इस प्रकार प्रतीक विधान करते हैं—'मैं किस इंसानियत से संबद्ध इतना दिखाना रही हूँ। मेरे चारों ओर दरिंदे खड़े थे।'<sup>58</sup>

यहाँ पर 'दरिंदे' प्रतीक का प्रयोग उन सांप्रदायिक तत्त्वों के लिए किया गया है, जिनका लक्ष्य समाज में सांप्रदायिकता फैलाना, अथवा वहशीपन करना होता है।

इसी प्रकार— 'सारे मकानों की छतें सूनी-सूनी और अँधेरे में डूबी-डूबी थीं। मुझे तो उस दिन सारे एंटीना प्रेत-से लगे... भौंडे और रक्त के प्यासे प्रेत।'<sup>59</sup> 'सन्नाटे में चीरते हुए कुत्ते भौंक उठे। वह चौंक पड़ी। अशोक अब तक नहीं आया।'<sup>60</sup> 'कहा नहीं था सरदारों का भरोसा

नहीं! आग देखी बाहर?’<sup>61</sup> ‘वह आग की तपिश थी या उसकी अपनी उत्तेजना। भेड़ियों की तरह जीभ लपलपाती भीड़ उसकी तरफ़ दौड़ पड़ी।’<sup>62</sup> ‘मुल्क के लोग उन दिनों पोस्टरवाली महिला से प्रार्थना कर रहे थे कि वह जल्दी ही इस समस्या का कोई समाधान निकाले।’<sup>63</sup>

इस प्रकार नौवें दशक एवं समकालीन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में जहाँ सांप्रदायिक घटनाओं को कथानक का कथ्य बनाया है, वहीं सांप्रदायिक परिवेश को भी चित्रित किया है तथा उस परिवेश को बनानेवालों एवं अन्य कारणों पर सार्थक व्यंग्य भी किए हैं। तत्कालीन रचनाकारों ने समाज की मानसिकता को भी निकट से निरखा-परखा है तो सांप्रदायिकता के पश्चात् की स्थिति का प्रतीकात्मक चित्रण तो किया ही है साथ ही उसकी विकरालता को भी प्रतीकात्मक रूप में चित्रित करने में सफलता प्राप्त की है।

### संकेत

1. दंगे : क्यों और कैसे, सं० निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल, पृ. 79
2. काला नवंबर, पृ. 6
3. वही, पृ. 21
4. दंगे : क्यों और कैसे, पृ. 107
5. वही, पृ. 108-109
6. वही, पृ. 117
7. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 169
8. वही, पृ. 182-83
9. काला नवंबर, पृ. 117
10. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 168
11. वही, पृ. 169
12. काला नवंबर, पृ. 31
13. वही, पृ. 189
14. वही, पृ. 254
15. वही, पृ. 51
16. वही, पृ. 171
17. वही, पृ. 11
18. वही, पृ. 13
19. वही, पृ. 278
20. वही, पृ. 109
21. वही, पृ. 110-111
22. वही, पृ. 291
23. जिज्ञासा, पृ. 139
24. वही, पृ. 144-54
25. काला नवंबर, पृ. 54
26. अंदर धूप बाहर धूप, पृ. 24
27. काला नवंबर, पृ. 184

28. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 170
29. काला नवंबर, पृ. 21
30. वही, पृ. 66-67
31. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 180
32. काला नवंबर, पृ. 275
33. वही, पृ. 90
34. वही, पृ. 91
35. वही, पृ. 275
36. वही, पृ. 209
37. वही, पृ. 209
38. वही, पृ. 187
39. वही, पृ. 188
40. वही, पृ. 190
41. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 35
42. वही, पृ. 33
43. वही, पृ. 55-56
44. अंदर धूप बाहर धूप, पृ. 19
45. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 34
46. काला नवंबर, पृ. 29
47. वही, पृ. 29
48. वही, पृ. 83
49. वही, पृ. 83
50. सांप्रदायिक सद्भाव की कहानियाँ, पृ. 170-71
51. काला नवंबर, पृ. 170
52. वही, पृ. 188
53. वही, पृ. 67
54. वही, पृ. 17
55. वही, पृ. 279
56. वही, पृ. 95
57. वही, पृ. 95
58. वही, पृ. 269
59. वही, पृ. 89
60. वही, पृ. 110
61. वही, पृ. 113
62. वही, पृ. 117
63. वही, पृ. 250

□ 13 शिव मार्केट, मस्जिद मोठ, जंगपुरा भोगल  
नई दिल्ली 110014

## आज के युवा-वर्ग के समक्ष चुनौतियाँ

शशि शोधछात्रा

शंभुदयाल पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज

चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ०प्र०)

डॉ० रोचना मित्तल शोध निर्देशिका

युवा किसी भी देश का भविष्य होते हैं, जो देश की वास्तविक शक्ति बनकर अपने समाज व राज्य को सफलता के चरम शिखर पर पहुँचा सकते हैं और पथभ्रष्ट हो जाएँ व जागरूक न हों तो अपने समाज एवं राष्ट्र के पतन का कारण भी बनते हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि किशोरावस्था में ही राजसत्ता का विशाल उत्तरदायित्व सक्षमता से निभाने वाले अकबर जैसे शासक अपने राज्य एवं समाज का गौरव तो बने ही उनके शासनकाल को भारत के इतिहास का स्वर्णिमकाल भी कहा गया। दूसरी ओर मोहम्मद शाह रंगीला जैसे कर्तव्यविमुख एवं पथभ्रष्ट शासक स्वयं तो विनाश के पथ पर चले ही, अपने समाज व राज्य को भी उन्होंने गुलामी की जंजीरों में जकड़वा दिया।

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई होती है। जिस परिवार के युवा योग्य एवं परिश्रमी होते हैं वह परिवार निरंतर विकास की ओर बढ़ते हुए उन्नति के चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है। जिस परिवार के युवा अयोग्य तथा आलसी होते हैं, संस्कार व नैतिकता के रास्ते से भटके हुए होते हैं, वह परिवार कितना भी ज़मीन, जायदाद व पुश्तैनी संपन्नता से परिपूर्ण क्यों न हो धीरे-धीरे बरबाद होता जाता है। युवावस्था ऊर्जा एवं शक्ति का विशाल भंडार होती है। यदि वह विध्वंसात्मक दिशा में बढ़ जाती है तो पूर्व निर्मित सभी का विनाश हो जाता है। वर्तमान में ऐसा आभास हो रहा है कि हमारे युवाओं के अंदर कुंठा व निराशा भरती जा रही है। उनके अंदर विद्यमान शक्ति व ऊर्जा का प्रयोग समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में नहीं हो पा रहा है और व्यर्थ होती शक्ति विध्वंसकारी कार्यों में लगकर आतंकवाद की समस्या को जन्म दे रही है। नई पीढ़ी में व्याप्त असंतोष, अनैतिकता व अतिभौतिकता की ओर उनका झुकाव, असंयम, उनकी रचनात्मकता का हास कर रहा है। सत्ता व संपत्ति की उथल-पुथल में मानवता कहीं खो गई है। भारत की समृद्ध संस्कृति व परंपराओं से विमुख आज का युवा भटका हुआ-सा लग रहा है। वह युवावस्था में ही क्रियाशीलता से उदासीन हो जाता है। वह हताशा से घिरा हुआ है, व्यष्टि व समिष्टि दोनों के ही भविष्य को अंधकारमय कर रहा है। युवा तो देश का आनेवाला कल होते हैं। भविष्य में किसी देश के विशाल भवन की संकल्पना वर्तमान युवाओं की कार्यप्रणाली पर निर्भर करती है। आज का युवा भविष्य की इमारत के लिए नींव की ईंट होता है। यदि नींव ही

कमजोर होगी तो मजबूत इमारत कैसे बन सकती है। आज भूमंडलीयकरण के युग में विश्व-पटल पर उपस्थित अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को देखते हुए भारत के महाशक्ति बनने का विचार कल्पना मात्र नहीं है, बल्कि साकार हो सकता है। यदि भारतीय समाज अपने राष्ट्र की शक्ति का प्रतीक युवा वर्ग को सही रास्ते पर अग्रसर कर सके व अपने युवाओं की शक्ति को सकारात्मक व रचनात्मक कार्यों में लगा सके। यदि हम राजनीति के क्षेत्र में दृष्टिपात करें तो राजसत्ता नौजवानों के हाथ में दिखाई दे रही है। काँग्रेस की बागडोर राहुल गांधी के हाथ में है, तो जम्मू कश्मीर में अमर अब्दुल्ला का मुख्यमंत्री बनना, इसी दिशा में बढ़े हुए कदमों का प्रमाण है। अमेरिका में ओबामा जैसे युवा का सत्ता में आना तथा बंगलादेश में शेख हसीना में जनता का विश्वास व्यक्त किया जाना युवा वर्ग की जागरूकता का प्रतीक है। ईराक में अमेरिकी नीतियों का विरोध करने के लिए एक युवा पत्रकार पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए बुश पर जूता फेंकता है, जिससे स्पष्ट होता है कि युवा वर्ग के अंदर कितनी ऊर्जा एवं साहस है।

समाज अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त होता है। अपनी युवाशक्ति की ओर उन समस्याओं के समाधान के लिए आशावान होकर देखता है। आज राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद व आर्थिक मंदी की समस्याएँ विशेषरूप से दिखाई दे रही हैं। जो कि समाज के प्रत्येक वर्ग को प्रभावित कर रही हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यही दो समस्याएँ वर्तमान में युवा-वर्ग के समक्ष प्रमुख चुनौतियों के रूप में खड़ी हुई हैं। आज के युवा वर्ग के लिए इन समस्याओं से निपटना अत्यंत आवश्यक हो गया है। 26 नवंबर 2008 को भारत पर आतंकियों का पहला आक्रमण नहीं था, इससे पहले 2001 में भी संसद पर आक्रमण हुआ था। जोकि अकल्पनीय विभीषिका में परिवर्तित हो गया होता, यदि नौ सुरक्षाकर्मियों ने अपना जीवन न्यौछावर करके अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत न किया होता।

अनेक समाजिक समस्याएँ भी युवा-वर्ग के समक्ष चुनौती का रूप लिए खड़ी हैं। हमारी परिवार संस्था जो आज से 30 साल पहले तक भी भावनाओं व संवेगों के बंधनों में गुथी हुई थीं, टूटती जा रही हैं। पहले संयुक्त परिवार एकल परिवार में बदलने शुरू हुए, तत्पश्चात् एकल परिवारों में भी पति-पत्नी के बीच सामंजस्य अभाव के कारण टूटन आने लगी मनुष्य अपने-आपको अकेला खड़ा देख रहा है, जो मनुष्य को सदियों से हुए विकास से पुनः पीछे धकेलकर उस युग में ले जा रही है। जब मनुष्य में मनुष्यता ही नहीं थी और व्यक्ति समाज व राज्य के अभाव में बिल्कुल अकेले हर प्रकार की आपदाओं का सामना करता था। आज भौतिकवादी संस्कृति ने अभिभावकों व बच्चों के बीच प्यार, स्नेह, आदर जैसे सांस्कारिक भावों को खत्म कर दिया है। बच्चों व वातावरण के बीच असंतोष इस हद तक बढ़ गया है कि दोनों एक-दूसरे के पूरक व सहायक न होकर या तो उदासीन हो गए हैं, या एक-दूसरे को किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाने से संकोच नहीं करते हैं। इस गंभीर समस्या का समाधान सुलझाना आज हमारे युवा-वर्ग के सम्मुख बड़ी चुनौती है। सांस्कृतिक आकर्षणों के बँधा मानव आज सामाजिकता को भूल रहा है। मानवाधिकारों का हनन स्वयं मनुष्य के द्वारा किया जा रहा है। जंगल राज-सा व्याप्त होता जा रहा है। मेरा मानना है कि आतंकवाद की समस्या मूलरूप से सामाजिक समस्या है। इसे सामाजिक संगठनों में नैतिकता का संचार करके तथा दया, करुणा, ममता, वात्सल्य जैसे सहज स्वाभाविक मानवीय भावों की पुर्नस्थापना करके ही सुलझाया जा सकता है। आतंकवादी

भी किसी-न-किसी समाज का सदस्य होता है, यदि वह इतने बड़े स्तर पर मुंबई में 26 नवंबर 2008 को हुई आतंकवादी घटनाओं को अंजाम देता है तो कहीं-न-कहीं जिस समाज से वह आया है, वह समाज उसके जैसे व्यक्तित्व को बनाने के लिए उत्तरदायी है।

मानवीय मूल्यों की कमी ने ही समाज में दहेज, वैमनस्य, भ्रष्टाचार, अमानवीयता आदि चुनौतियों को हमारे युवा-वर्ग के समक्ष अनसुलझी समस्याओं के रूप में रख दिया है। सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना से ही हमारा युवा-वर्ग इन चुनौतियों का मुकाबला कर सकता है।

सामाजिक समस्याओं के अतिरिक्त अनेक राजनीतिक समस्याएँ भी आज के युवा-वर्ग के समक्ष चुनौतियों के रूप में खड़ी हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था होने के बावजूद जनसामान्य को लोककल्याणकारी राज्य व प्रशासन नहीं मिल रहा है। क्योंकि राजनीति में सर्वत्र भ्रष्टाचार व्याप्त है। घूसखोरी, दलाली, अवैध वसूली, जनसेवा के प्रत्येक विभाग में मजबूती से अपनी जगह बनाएँ हुए हैं व आम जनता को प्रतिपादित कर रही है। भ्रष्टाचार राजनीतिक हलकों का आज शिष्टाचार बन गया है। जो काम खुद-ब-खुद होना चाहिए उसके लिए आम आदमी को कितनी यातनाएँ झेलनी पड़ती है। जैसे निजी भूमि के खसरे, किशत-बंदी की नकल निकलवानी हो, नई बही बनवानी हो, मृत माता-पिता का नाम कटवाकर संतानों का नाम चढ़वाना हो, रजिस्ट्री के बाद नामांकन करवाना हो, आर०टी०ओ० दफ्तर से डाईविंग लाइसेंस बनवाना हो, राशन कार्ड बनवाना हो, बिजली-संबंधी कोई अनियमितता को ठीक करवाना हो, हर स्थान पर दलालों और बिचौलियों की शरण लेनी पड़ती है। बाबुओं को रिश्वत देनी पड़ती है। न्यायधीश की नाक के नीचे बाबू खुलेआम मुक्किलों व वकीलों से पैसा लेता है। जिसका खामियाजा आम आदमी को ही भुगतना पड़ता है किंतु कोई भी इन परिस्थितियों से निपटने की पहल नहीं करना चाहता। लूट व घूसखोरी के नए तरीके तकनीकी विकास के साथ नौकरशाही में आ रहे हैं। ऐसे भ्रष्टाचार का शिकार युवा-वर्ग की वह ताकत रखता है कि ऐसी समस्याओं व चुनौतियों से सख्ती से निपट सके।

जनभागीदारी, पारदर्शिता, विकेंद्रीकरण, जनशक्तिकरण को सही अर्थों में प्रस्थापित करके ही राजनीतिक व प्रशासनिक विभागों में व्याप्त इन चुनौतियों से युवा-वर्ग निपट सकता है। प्रशासन पर दबाव बनाकर ही आम जन के लिए सही अर्थों में प्रशासन से सुविधा ली जा सकती है। युवा-वर्ग को चाहिए कि सत्ता व प्रशासन का विकेंद्रीकरण करें व जनता को प्रशासन के ज्यादा-से-ज्यादा नजदीक लाए। पिछले कुछ सालों में निजीकरण को इसी समस्या के समाधान के लिए प्रस्तुत किया जाता रहा है। सरकारी तंत्र के कटु अनुभवों से परेशान लोगों को यह लगा भी कि शायद निजीकरण जनहितकारी हो, लेकिन सच तो यह है कि निजी कंपनियाँ या ठेकेदार तो शुद्ध मुनाफे से प्रेरित होते हैं तथा जनता से ज्यादा-से-ज्यादा कमाई करना चाहते हैं। जनमत या जन-आंदोलन से सरकारी तंत्र तो प्रभावित होता है, लेकिन निजी कंपनियाँ नहीं। हाल ही में सत्यम् कंप्यूटर में हुए घोटाले के बाद यह भली-भाँति तय हो गया है कि निजी संस्थाओं में भी भ्रष्टाचार खूब फलीभूत हो रहा है। जिसका खामियाजा आखिरकार जनता को उठाना ही पड़ता है। अतः इस प्रकार की आर्थिक समस्याएँ युवा-वर्ग के समक्ष कड़ी चुनौतियों के रूप में उभर रही हैं।

नेताओं के द्वारा अपनी संपत्ति का स्पष्ट ब्योरा न देना, भाई-भतीजावाद फैलाना, अपने

अहम की संतुष्टि के लिए अधिकारियों की हत्या तक करा देना, जन्मदिवस समारोह के लिए काले धन को सफ़ेद धन में बदलने का उपकरण बनाना ऐसी स्थितियाँ आज के युवा-वर्ग के समक्ष है, जिनके समाधान के लिए जन-समुदाय युवाशक्ति का मुँह देख रहा है।

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक चुनौतियों के अतिरिक्त अनेक शैक्षिक चुनौतियों का भी युवा-वर्ग को सामना करना पड़ रहा है। आज उच्च शिक्षा के लिए महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में जो स्थान है, वह पर्याप्त नहीं है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से इस क्षेत्र में विद्यार्थियों की संख्या दस गुनी अधिक हो गई है किंतु उसी अनुपात में शिक्षा सुविधाएँ एवं प्रदेश सुविधाएँ नहीं बढ़ी है। जिससे युवा-वर्ग उत्तेजित होता है। आज शिक्षा में राष्ट्रीय एकता और संगठनात्मक तत्त्वों का अभाव है। जोकि राष्ट्रीय चरित्र निर्मित करने में पूर्णतया असमर्थ है। भारत लोककल्याणकारी राज्य होने के कारण समान शैक्षिक अवसर के सिद्धांत को अपनाता है, किंतु व्यावहारिक रूप में यह सिद्धांत अपेक्षित है। आज संपन्न व्यक्ति अपने बच्चों को अँग्रेजी माध्यम से शिक्षा दिलवाकर उच्च पदों पर आसीन करने में लगा हुआ है, जबकि गरीब वर्ग शिक्षा में पिछड़ रहा है। लक्ष्यविहीन शिक्षा, आधुनिकता का अभाव, अनुशासनहीनता, दूषित राजनीति का प्रभाव, राष्ट्रीय पाठ्य सामग्री, शिक्षा स्तर में गिरावट आदि कारण आज के घुटन, कुंठा, विक्षोभ और आक्रोश व्याप्त है। जीवन की आशाओं से दीप्त उसके मुख पर सहज ही निराशा दिखाई देने लगती है। अस्मिता के प्रति सचेत वह अपना निश्चित स्थान बना लेने में असमर्थ है। मूलतः वह असुरक्षा के भाव से पीड़ित है। अनाथ का दीप बनना या विद्रोही होना स्वाभाविक है।

निष्कर्षतः बेरोजगारी, दूषित शिक्षा पद्धति, विकास के अवसरों का अभाव, समाज के जड़ बंधन, दूषित राजनीति, लक्ष्यहीन शिक्षा, आध्यात्मिक एवं शारीरिक शक्तियों के विकास का अभाव, संरक्षण एवं नियंत्रण का अभाव, शिक्षकों के कर्तव्य बोध का अभाव आदि ऐसे कारण जिनमें आज का युवा-वर्ग अपने भविष्य को अँधकारमय अनुभव कर रहा है। सरकार विभिन्न रोजगार योजनाओं को चला रही है किंतु समस्याएँ कम नहीं हो रही हैं।



## पेज श्री और चैप्टर श्री : भोगवाद और कर्मयोग

विश्वमोहन तिवारी

एयर वाइस मार्शल (से०नि०)

मैं 1977 से 81 तक ब्रिटेन स्थित भारतीय उच्चायोग में कार्यरत था। उन्हीं दिनों रूपर्ट मडौक के टैब्लॉयट 'सन' ने एक सनसनी फैला दी। उसके संपादक श्री लैंब ने 'सन' के प्रसार बढ़ाने के लिए एक जुआ खेला। पत्र के पूरे पृष्ठ तीन पर प्रतिदिन, एक सुंदर युवती का 'टॉपलैस' (नग्नवक्ष) चित्र, प्रकाशित करना शुरू किया। वैसे देखा जाए तब, श्री लैंब ने 'टॉपलैस' शब्द का चुनाव सोच-समझकर ही किया। क्योंकि ऐसी मॉडलों के लिए 'टॉपलैस' शब्द दोनों अर्थों में सटीक है। उन दिनों 'टॉपलैस' सुंदरियों के चित्र समाचार-पत्र में प्रकाशित करना दुस्साहस का काम था। इसका विरोध हुआ किंतु पत्र के प्रसार में महत्वपूर्ण वृद्धि भी हुई। जब माध्यम वालों के लिए आर्थिक लाभ ही सर्वश्रेष्ठ मूल्य हो तब 'काजी' भी क्या कर सकता है? इस तरह सैक्सी पेज श्री की मुद्रित माध्यम में नई अवधारणा चल पड़ी। उन्होंने पेज श्री ही क्यों चुना? श्री लैंब अपने जुए से डरे हुए थे, अतएव उन्होंने इसे पृष्ठ तीन पर रखा क्योंकि सुंदर युवा कन्या का नग्नवक्ष चित्र मुखपृष्ठ या अंतिम पर अधिक असभ्य लगता, तथा समाचार-पत्र की जो छवि बनती, वह सॉफ्ट पोर्न की होती; और वह अधिक विरोध पैदा कर सकता था। चतुर लैंब ने नग्नता-प्रदर्शन के दुस्साहसी कार्य को सभ्यता का एक आवरण दे दिया, एक छिपा एजेंडा दे दिया।

तभी से 'पेज श्री' मुद्रण माध्यम में आधुनिक जीवन-शैली या भोगवाद का प्रतीक है, उसके प्रसार का सम्मानीय माध्यम है और स्वयं भोग भी रहा है! लगभग सभी माध्यम ऐसे रंगीन चित्र पृष्ठों पर, यदि सभी नहीं तो किसी-न-किसी स्थान पर अवश्य देते हैं, किंतु उसे पेज तीन का कृत्य ही माना जाता है। आज इस पृष्ठ तीन की अवधारणा का विरोध करने की ताकत शायद ही किसी में हो। अब अधिकांशतया सौंदर्य-प्रतियोगियों के, चाहे वे टिम्बकटू के हों, मॉडलों, एक्टरों, एंटरटेनरों, खिलाड़ियों तथा निश्चित ही पत्रकारों और कभी-कभी कुछ लोकप्रिय लेखकों के चित्र तथा सच्चे झूठे कृत्य होते हैं, यदि वे गिलास और चुरट लिए हों तब तो सोने में सुहागा हो जाता है। पेज श्री में प्रकाशित व्यक्ति सैलिब्रिटी अर्थात् विख्यात बनाए जाते हैं; और उनका उत्पादन बरसाती कुकुरमुत्तों की तरह होता है और फिर उनका अवसान भी वैसा ही। इसलिए प्रत्येक तीसरे पृष्ठ द्वारा उत्पन्न सैलिब्रिटी की सबसे बड़ी चिंता उस पृष्ठ पर जीवित रहने की होती है, जिसके लिए वे वस्त्रों के साथ कुछ और भी त्याग करने के लिए तैयार रहते या रहती हैं। यह सब सैलिब्रिटी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे होते हैं, जो आपस में

एक-दूसरे को बढ़ाने में लगे रहते हैं। पेज श्री की कृपा से इन सभी को नाम और दाम का बहुत लाभ होता है। किंतु सबसे ज़्यादा लाभ होता है माध्यम, विज्ञापन-संस्थाओं, प्रौद्योगिकी और उद्योगपतियों को। आवश्यक, अनावश्यक वस्तुओं का उत्पादन और ख़रीददारी बढ़ती है। यह सब लाभ कहाँ से आता है? हमारे जैसे ख़रीददारों से जो माध्यम द्वारा गढ़ी गई रुचि के अनुकूल बेवकूफ़ बनते हैं, और समझते हैं कि आधुनिक बने रहने तथा सुखी होने के लिए यह जीवन शैली आवश्यक है। हम समझते हैं कि जो भी ताज़ा अख़बारों में छपता है, वह ताज़ा है। वह अनुकरणीय है। क्या यह हमारी मूर्खता की निशानी नहीं कि नग्नवक्ष मॉडल विश्वप्रसिद्ध हो जाती हैं! हम क्यों उन 'टॉपलैस' की चर्चा को टॉप पर रखना चाहते हैं! ऐसे चित्रों का प्रातःकाल दर्शन किस तरह की भावनाएँ भड़काएगा! यौन-भावना तो वैसे ही ज़रा-सा मौक़ा पाते ही स्वयं भड़क जाती है, आज इसे भड़काया जा रहा है, जो आग की तरह तेज़ है।

दुखद यह है कि भोगवाद की इस दौड़ के दो भयंकर दुष्परिणाम हैं। एक, यह इस शस्य श्यामला पृथ्वी को मरुस्थल बना रही है और जलवायु को गरमाकर प्रलय ला रही है। दूसरा, यह मनुष्य को स्वकेंद्रित बनाकर जंगली पशु नहीं वरन् राक्षस बनाती है, उसे केवल भोग ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य नज़र आता है। माता-पिता को तो दूर छोड़ें, पति-पत्नी के संबंध भी व्यावसायिक अर्थात् 'तू मेरी इच्छाएँ पूरी कर, मैं तब तेरी' हो जाते हैं। भोगवाद में संबंधों के आधार में से प्रेम का बहिष्कार हो जाता है और केवल शक्ति या भोग या व्यावसायिक आधार बच रहते हैं। बढ़ते तलाकों की संख्या, बूढ़ों को सम्मान न देना, वरन् उन्हें घर बाहर करना, बच्चों को नौकरों के भरोसे छोड़कर पार्टीबाज़ी करना, शिक्षित युवा-वर्ग का अपराधी होना, बलात्कार तथा हत्याओं का बढ़ना आदि इसी भोगवाद के लक्षण तथा परिणाम हैं।

भोगवाद का विषय आज तर्क के परे हो गया है, क्योंकि भोगवाद सैक्सी और लुभावने विज्ञापनों और जिंगलों, सोप नाटकों द्वारा बचपन से ही हृदय में घर किए बैठा होता है, जो बालकों को फंडामेंटलिस्ट बना सकता है! कुछ विवेकशील व्यक्ति ही आज के भोगवाद पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। माध्यम चतुराई से लोगों को गंभीर अध्ययन से हटाकर, उनकी वैचारिक शक्ति को क्षीण कर, उन्हें हलके मनोरंजन में फँसाकर रखता है। नहीं तो क्या बात है कि कोला में अत्यधिक विषैले अवशिष्ट प्रमाणित होने के बाद भी लोग मज़े से कोला पान कर रहे हैं! यदि हम लोगों में सोचने की शक्ति होती तब हम कोला इसलिए क्यों पीते कि ऐश्वर्या राय या तेंदुलकर उसे पीने के लिए कहते हैं? ये एक्टर या खिलाड़ी खानपान के ऐसे आदरणीय विशेषज्ञ कैसे बन गए कि हम वैज्ञानिकों की बात न मानकर इन स्वार्थी भोगवादियों की बात सहर्ष मान रहे हैं! कुछ नितान्त स्वकेंद्रित लोग हमारी क़ीमत पर ऐश्वर्य का भोग कर रहे हैं! वे करोड़पति बन रहे हैं और हम करोड़पति बनने का सपना देख रहे हैं। हम भोगवाद में मस्त हैं।

हमारे अधिकांश राजनीतिज्ञों को भी यही लाभप्रद लगता है; वे भी शिक्षा का स्तर गिराकर विचारशक्ति को कुंद करना चाहते हैं। इसीलिए नियम बन रहे हैं कि अँग्रेज़ी में व्याकरण की ग़लतियों को ग़लती न माना जाए; परीक्षाओं को बंद किया जाए! आख़िर वे इस भोगवाद पर प्रश्नचिह्न क्यों लगाएँ? पिछले दस-पंद्रह वर्षों में जो आर्थिक प्रगति भारत ने (आई एम साँरी, इंडिया ने) की है वह इसी भोगवाद की कृपा से की है! कारों और स्कूटर, रंगीन टी॰वी॰ तथा सैक्सी मनोरंजन गैजेट्स, दूरसंचार साधन, रैफ्रिजरेटर, राजसी महल, सैक्सी कपड़े

और जूते, शानदार पाँच सितारा भोजन तथा फास्टफूड जॉइंट्स आदि आज यही तो प्रगति तथा सुख नापने के मापदंड हो गए हैं, न कि ग़रीबों की उन्नति। ग़रीब बिचारा 'ट्रिकल डाउन एफ़ैक्ट' में मजे ले रहा है। जब भोग ही जीवन का ध्येय है, तब कोई भी इस भोगवाद की प्रशंसा ही करेगा, विरोध क्यों?

यह तो सच है कि भोग जीवन के लिए नितांत आवश्यक है, किंतु कैसा और कितना? भोग तथा भोगवाद में अंदर भी समझना आवश्यक है। भोगवाद अपने आपमें एक जीवन-दृष्टि है, जब भोग ही पूर्ण जीवन-दृष्टि हो जाता है, तब वह भोगवाद हो जाता है। कुछ लोग हैं, जो खाने के लिए जीते हैं, और अन्य जीने के लिए खाते हैं। यहाँ 'खाने' का अर्थ 'भोग' लेने से अंतर समझ में आ जाता है। जब जीवन के लिए केवल आवश्यक भोग ही किया जाए, तब वह वांछनीय और उचित है; किंतु यहाँ पर आवश्यक शब्द ही जटिल अर्थ लिए हैं। इसमें आवश्यक शब्द का सही अर्थ जीवन-दृष्टि पर निर्भर करेगा। भोगवादी तो भोग को ही आवश्यक मानता है। भोग किस तरह किया जाता है, कितना किया जाता है और क्यों किया जाता है, यह प्रश्न विचारणीय हैं। वास्तव में इन प्रश्नों के उत्तर भी मनुष्य की जीवन-दृष्टि पर निर्भर करते हैं।

एक प्रसिद्ध अमरीकी विचारक कैन स्कूलैंड अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ए गाइडिंग प्रिंसिपल ऑफ़ लाइफ़' में पथ-प्रदर्शन करते हुए कहते हैं, '... आपके जीवन-भर की खेती की फ़सल आपकी ज़मीन-जायदाद है। यह आपके कठोर श्रम का फल है, आपके बहुमूल्य समय का प्रतिदान है, आपके समय, ऊर्जा तथा बुद्धि का उत्पाद है।' यह विचारधारा पदार्थवादी है। जबकि भारतीय तो अपनी संतान को अपने जीवन का फल मानते हैं। कंज्यूमरिज्म (भोगवाद) में मनुष्य का सुख, आत्मसम्मान, प्रगति, सफलता और प्रतिष्ठा उसके भोग के संसाधनों से नापी जाती है। भोगवाद पर आज के समाज की, सामाजिक नहीं, आर्थिक प्रगति निर्भर करती है और हम जानते हैं कि अधिक-से-अधिक सुख, वरन् अनंत सुख, तो सभी चाहते हैं, अतः तर्क तो यही सिद्ध करता है कि भोगवाद के साधन जिसके पास अधिकतम हों, वही अधिकतम सुखी हो किंतु भोगवादी हमेशा गाएगा, 'मेरा दिल माँगे 'मोर'। जो माँगे जा रहा है क्या वह सुखी है? वह तो सुख जीतने की घुड़दौड़ में मस्त है, चाहे उसने ग़लत घोड़े पर दाँव लगा दिया हो।

क्या भोगवाद की उत्पत्ति पेज थ्री से हुई है? भोगवाद की उत्पत्ति तो तभी हो गई थी, जब स्वर्ग की कल्पना की गई थी। किंतु उस पर धर्म का कुछ नियंत्रण लगता रहा। एक तो पश्चिम में विज्ञान के आने से धर्म का नियंत्रण कम हुआ तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब प्रौद्योगिकी ने भूखे बाज़ार को बहुल उत्पादन द्वारा भोग्य वस्तुओं से पाट दिया, तब मानो उस स्वयंभू भोगवाद की प्राणशक्ति जाग गई; और इसके जो बीज औद्योगिक उन्नति में अंकुरित और प्रस्फुटित हुए थे, बहुल उत्पादन प्रौद्योगिकी के आते ही पल्लवित और पुष्पित हो गए। तभी आज युवा बारह-बारह घंटे कोल्हू के बैल की तरह जुता रहता है ताकि वह पाँच-दस लाख प्रतिवर्ष की कमाई करे और इन मॉडलों या एक्टरों और माध्यम तथा विज्ञापनबाज़ों आदि द्वारा विज्ञापित वस्तुएँ खरीदे और उन्हें करोड़पति बनाए और खुद करोड़पति बनने का सपना देखे और ये करोड़पति भी और भी एक्सपैसिव मॉडलों और विज्ञापित वस्तुओं का भोग करते हैं। आज सभी मनुष्यों में महँगी वस्तु और मॉडलों के भोग करने की होड़ मची रहती है। इन सबका अर्थात् वस्तुओं और मॉडलों का 'बाज़ार भाव' कौन तय करता है? यही पेज थ्री और उसके बनाने वाले

अर्थात् मॉडल, विज्ञापन, माध्यम और प्रौद्योगिकी और बाज़ार के नियम। मॉडलों का जीवन कोई आठ-दस वर्ष का होता है, उन्हें सारे जीवन के लिए कमाई इन चार दिनों की चाँदनी में करना है, इसलिए वे सब कुछ बेचने के लिए तैयार रहती या रहते हैं। किंतु वह युवा-वर्ग जो इनकी कमाई का स्रोत है, वह 20-25 वर्षों में ही इस जीवन-शैली के परिणामस्वरूप बीमारियों का घर बन जाता है और दुर्भाग्य कि उस घुड़दौड़ में भाग लेने के लिए उसके बच्चे तैयार रहते हैं।

ऐसा नहीं है कि पश्चिम में भोगवाद का विरोध न हुआ हो, कार्ल मार्क्स ने इसका विरोध किया था, किंतु उन्होंने उसे पूँजीवादी भोगवाद कहकर विरोध किया था, वे साम्यवादी अर्थात् नियंत्रित भोगवाद चाहते थे। उन्होंने कहा था कि पूँजीवाद में वस्तु की पूजा होने लगती है, जो सत्य है, किंतु पूँजीवादियों ने इसकी चिंता ही नहीं की। पूँजीवादी भोगवाद में उद्योगपति, माध्यम तथा विज्ञापन और मॉडल भोग का नियंत्रण करते हैं और मज़ा यह कि भोक्ता सोचता है कि वह अपने भोग का नियंत्रण स्वयं कर रहा है। प्रौद्योगिकी द्वारा नियंत्रित, किंतु मुग़ालते में रहने वाले आम आदमी के जगत् को हम यदि मिथ्या कह दें तो बड़ी ग़लती तो नहीं करेंगे! प्रसिद्ध विचारक थार्नस्टाइन वैब्लैन ने 'कॉन्सिप्युअस कंज़म्पशन' कहकर भोगवाद का विरोध किया था, उन्होंने कहा कि माध्यमों द्वारा 'कॉन्सिप्युअस कंज़म्पशन' प्रतिष्ठा से जोड़ दिया गया है। विश्वप्रसिद्ध विचारक हैनरी डेविड थोरो ने भी, जो भारतीय अध्यात्म से प्रभावित थे, सादे जीवन का प्रचार किया था। बीसवीं सदी में भी अर्थशास्त्री राल्फ बौशाख और स्कॉट नियरिंग, नृशास्त्री एवं कवि गैरी स्नाइडर, कथाकार अनैस्ट कैलैनबाख, गांधीवादी रिचर्ड गैग आदि कुछ व्यक्तियों ने भी भोगवाद का विरोध किया। बाद में इस आंदोलन को प्रकृति-संरक्षण आंदोलन से बहुत बल मिला। विज्ञापन को भी नज़रअंदाज़ करने की माँग की गई और यू०एस० में एक-दो ऐसे टी०वी० तथा रेडियो स्टेशन हैं, जो बिलकुल विज्ञापन नहीं देते और वे जनता के सहयोग से ही चलते हैं। यह मार्ग भोगवाद का विरोध करने वालों के लिए अनुकरणीय है। पश्चिम में यह आंदोलन हाशिए पर ही चल रहा है क्योंकि एक तो इस विरोध के मूल में संपुष्ट जीवन-दर्शन नहीं है। भोगवाद के विरोध का विरोध स्वच्छंदतावादियों ने किया। वास्तव में आधुनिक प्रौद्योगिकी के द्वारा बहुल उत्पादन से उपलब्ध भोग-हेतु सस्ती वस्तुओं के कारण भोगवाद विकसित देशों में सैक्सी तथा रंगीन माध्यम के बल पर कुकुरमुत्तों की तरह फूल-फूल रहा है। किंतु कुछ विचारकों ने भी भोगवाद के प्रचार में उद्योगपतियों का साथ देना शुरू कर दिया है, हमें इनसे सावधान रहना चाहिए।

औद्योगिकी तथा पूँजीवाद-प्रेरित भोगवाद ने जीवन की आवश्यकता और विलासिता में भेद मिटाकर विलासिता को ही आवश्यकता बना दिया है। गांधी ने चेतावनी दी थी कि यह पृथ्वी समस्त जीवों की आवश्यकता तो पूरी कर सकती है किंतु एक व्यक्ति का अनियंत्रित भोग पूरा नहीं कर सकती। मुझे अपनी एक कविता प्रासंगिक लगती है, 'जब लोग कंचन मृग का शिकार करेंगे, तब रावण ज़रूर सीता चुराएँगे।' इस पर विचार करने से भोग की अति का दुखद परिणाम तो समझ में आना चाहिए।

जब भोग ही जीवनमूल्य हो तो तब जीवन के सारे संबंध भी भोगवाद द्वारा निर्धारित होंगे, जिसका आधार होता है 'मैं', अर्थात् मनुष्य अपने लिए भोग को सर्वाधिक महत्त्व देता है। उसके लिए प्रकृति तथा समाज भोग के साधन ही हैं। यदि वह नौकरी करता है तो उसका ध्येय

अपने भोग के लिए संसाधन का अर्जन ही है। इसमें पति तथा पत्नी के संबंध भी परस्पर भोग पर आधारित होते हैं; पति अपने वेतन में से एक हिस्सा तथा पत्नी अपने वेतन में से एक हिस्सा परिवार खर्च के लिए रखकर शेष अपने अपने भोग के लिए रखते हैं। यू०एस० में व्यापारियों ने बच्चों के अधिकार के नाम पर आंदोलन चलाया, तब बच्चों के लिए भी एक हिस्सा बनाना पड़ा। दुर्भाग्य कि विकसित देशों में बच्चे अपने अधिकार के लिए पुलिस द्वारा न्यायालय ले जाए जाते हैं। तलाक का एक दुष्परिणाम यह है कि माता-पिता सौतेले बच्चों के साथ अपेक्षित प्रेमपूर्ण व्यवहार न कर पाएँ, किंतु सगे माता-पिता का अपनी संतान से जो प्रेममय संबंध है, इस पर पुलिस की दखल से उसमें भी दरार पड़ गई है। संस्कृति का कार्य संस्कृति को ही करने देना चाहिए।

पाश्चात्य व्यक्तिवाद ने व्यक्ति को समाज की अपेक्षा प्राथमिकता देकर पहिले समाज में ही विघटन डाल दिया था, अब भोगवाद ने परिवार में भी उससे भयंकर विघटन डाल दिया है। इनको जोड़ने का और इनमें सहयोग का सूत्र अब मात्र भोग रह गया है, जो निश्चित ही इसे जोड़ने का नहीं किंतु तोड़ने का काम कर सकता है। भोगवाद में मनुष्य तथा पशु में अंतर मुख्यतया भोगवाद की सामग्री का ही अंतर होता है। मनुष्य तथा पशु में भोग के प्रमुख गुण यथा 'आहर, निद्रा, भय तथा मैथुन' एक समान होते हैं, किंतु उनमें अंतर नैतिकता, प्रेम, त्याग आदि मानवीय गुणों का होता है। जब भोग प्रधान हो गया तब मानवीय गुण गौड़तर होते जाते हैं। अंततः भोगवाद मनुष्य को मनमोहन (ग्लैमरस) पशु बना देता है और अनियंत्रित भोगवाद राक्षस बना देता है। यू०एस० आदि देशों में यह पाशविक व्यवहार सभ्यता की चादर के नीचे चल रहा है। यह राक्षसी व्यवहार हम अब अपने समाज में, विशेषकर महानगरों में देख रहे हैं। तब क्या मानवता बचेगी? अनेक पाश्चात्य विचारकों को इसमें संदेह है, वे भारत की ओर आशा से देख रहे हैं। इसका उत्तर है, चैप्टर श्री में मिलता है।

गीता के पहले दो अध्यायों में कृष्ण विषादयुक्त अर्जुन को न्याय के लिए युद्ध-हेतु प्रेरित करने का प्रयास करते हैं। अर्जुन के युद्ध से विमुख होने के मुख्य कारण तीन हैं—एक, भावात्मक अर्थात् पितामह तथ गुरु को न मारना; दूसरा, हत्या के पाप से बचना तथा तीसरा, युद्धजनित नैतिक पतन से समाज को बचाना ('कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मं नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्माऽभिभवत्युत।' 1.40)। सांख्ययोग के आधार पर आत्मा की अमरता का ज्ञान देते हुए कृष्ण उसे आत्मा का रहस्य समझाते हैं ताकि हत्या के पाप और मृत्यु के भय से मुक्त होकर वह युद्ध करे, 'हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीमा तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः।' यह द्रष्टव्य है कि कृष्ण इस श्लोक में भोगने का आदेश भी दे रहे हैं, चाहे वह युद्ध में मृत्यु उपरांत स्वर्ग में हो या पृथ्वी पर युद्ध जीतने के बाद हो। अर्थात् युद्ध या कर्म का उद्देश्य भोग भी है और अर्जुन कह चुका है कि 'न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।' आत्मज्ञान होना सरल नहीं है, और अर्जुन वह आत्मज्ञान इतने शीघ्र प्राप्त न कर सका। अतः इस प्रयास में असफल होने पर कृष्ण उसे बुद्धियोग (कर्मयोग) के आधार पर 'योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा' (2.48) का उपदेश देते हैं, अर्थात् वह आत्मा के साथ योग में स्थित होकर, तथा कर्म में आसक्त न होकर कर्म करे और साथ ही बुद्धियोग की प्रशंसा भी करते हैं, बुद्धियोग को कर्म से बहुत श्रेष्ठ कहते हैं—

‘दूरेण ह्यबरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।’ (2.49)

इनसे अर्जुन के मन में आशा बँधती है कि बुद्धियोग में जाने से उसे युद्ध जैसा घोर कर्म न करना पड़े, अतः वह युद्ध करे या न करे के विषय में अभी भी भ्रमित है। तृतीय अध्याय इसी प्रश्न से प्रारंभ होता है।

अर्जुन पूछता है—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।

तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव। (3/1)

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।

तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्। (3/2)

‘हे केशव जब आप बुद्धि या ज्ञान को कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ मानते हो तब मुझे युद्ध जैसे घोर कर्म में क्यों लगाना चाहते हो? और आप मिले हुएसे वचनों के द्वारा मेरी बुद्धि को मोहित कर रहे हैं। इसलिए आप वह एक बात निश्चित करके कहिए, जिसके अनुसरण द्वारा मैं श्रेय प्राप्त कर सकूँ।’ वे उसे प्रचलित अर्थों में क्षत्रिय-कर्तव्य तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य समझाकर असफल हो चुके हैं, क्योंकि उनसे उसके उपर्युक्त तीनों कारणों का निराकरण नहीं होता। सांख्ययोग की असफलता के बाद अब कृष्ण अर्जुन को निष्काम कर्मयोग का मार्ग समझाना चाहते हैं। क्यों? क्योंकि उससे अर्जुन के न केवल तीनों कारणों का निराकरण हो सकेगा वरन् उसे सुख और शांति भी प्राप्त हो सकेगी। निष्काम कर्म में कर्ता कर्म में आसक्त नहीं होता, उसका कर्म से राग या द्वेष का संबंध नहीं होता, कर्म के फल के लिए न तो वह कार्य करता है, और न उसमें कर्तापन का अभिमान या भाव ही होता है। यह सब कहना बहुत सरल है, और न केवल इसे अपनाना वरन् इसे अंधविश्वास की तरह न मानकर अपनी बुद्धि द्वारा समझना भी कठिन है। कृष्ण यही समझाने का दुर्लभ कार्य तीसरे अध्याय में करते हैं।

कृष्ण पाँचवें श्लोक में पहले तो कर्म को जीवन के लिए नितांत आवश्यक बतलाते हैं, और समझाते हैं कि जिन कार्यों को हम समझते हैं कि हम करते हैं वह हम स्वतंत्र रूप से नहीं, वरन् हम प्रकृति के वश में होकर करते हैं—

‘न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।’ (3/5)

जरा सोंचे। क्या हमें भूख-प्यास अपनी इच्छा से लगती है? वे शरीर की क्रियाएँ स्वतः हो रही हैं। यदि हम धनार्जन कर रहे हैं तो वह भी शरीर ही तो हमसे अपने लिए करवा रहा है; बस हमारी इच्छा विभिन्न कार्यों के चुनाव में है। गौर करें, कि उनमें भी हम वही चुनते हैं, जो शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक लाभदायक हो। सामाजिक रचना और उनके नियमों की स्वीकृति भी, विवाह इत्यादि कर्म भी ‘हम’ अर्थात् यह शरीर, मन, बुद्धि इसी शरीर के लिए करते हैं। अर्थात् यह शरीर, मन, बुद्धि अपने लिए ही सारे कार्य कर रहे हैं। इसे ही बाद में कहा है, ‘गुणा गुणेषु वर्तन्त’।

यही संदेश वे आगे 27 वें श्लोक में और समझाते हैं—

‘प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।’

हमारे सारे कार्य प्रकृति (से उत्पन्न तीन गुणों, सत्त्व, रज और तम) द्वारा प्रेरित होते हैं और अहंकार से मोहित हम समझते हैं कि हम कर्ता हैं! यह घोर अज्ञान नहीं तो और क्या है कि हम यह भी नहीं जाते कि हम कौन हैं? हम अपने को यह शरीर समझे बैठे हैं और कर्ता समझे बैठे हैं। यदि हम शरीर से पूछें कि क्या वह कार्यों का कर्ता है, तब वह उत्तर देगा कि वह तो प्रकृति के अकाट्य नियमों के अनुसार कार्य कर रहा है।

28 वें श्लोक में कृष्ण कहते हैं—

‘तत्त्ववित्तु महाबाहो गुण कर्म विभागयोः।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।’

आगे वे कहते हैं कि तत्त्वज्ञानी यह जानते हुए, कि यह प्रकृति द्वारा पैदा किए गए गुण हैं, जो आपस में कार्य कर रहे हैं, अतएव ज्ञानीजन अपने शरीर के द्वारा किए गए कर्मों में लिप्त या आसक्त नहीं होते। वे स्वभावतः आशरहित तथा ममतारहित होकर अर्थात् राग-द्वेष से मुक्त होकर कार्य करते हैं, कर्म करने का कोई ज्वर उन्हें नहीं चढ़ता, अर्थात् वे फल की चिंता से मुक्त, शांतभाव से कार्य करते हैं। इस तरह कार्य करने से मनुष्य पूरी क्षमता से कार्य करता है क्योंकि उसमें उसकी आशा, सफलता का दबाव, असफलता का भय, और उसका मोह उसके कार्यों में कोई विघ्न नहीं डालता। इसलिए वे अर्जुन को ‘मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्याध्यात्मयेतसा। निराशीः निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः। (3/29) का आदेश देते हैं। यह शिक्षा ‘इंवाल्व’ होने अर्थात् लिप्त तथा आसक्त होने की आधुनिक शिक्षा के एकदम विपरीत है; ‘डॉट इंवाल्व’ है। भोगवादी इसे समझ ही नहीं सकता। वह तो स्वयं को शरीर, मन, बुद्धि ही मानता है। जब तक हमें सच्चा ज्ञान न प्राप्त हो तब तक हम यह तो माने कि हममें कुछ है, जो शरीर, मन और बुद्धि के ऊपर है और बुद्धि के उपयोग द्वारा हम शरीर का निर्वाह उत्तम शैली में करते हुए शांतिपूर्वक कार्य तो करें।

अर्जुन प्रश्न करते हैं—

‘अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।

अनिच्छन्नपि वाष्ण्य बलादिव नियोजितः।’ (3/36)।

तब यह मनुष्य इच्छा के विरुद्ध भी विवश होकर किसकी प्रेरणा से पापकर्म करता है? अर्जुन का यह प्रश्न गहरा इसलिए है कि जब प्रकृति कर्ता है तो पापकर्ता मनुष्य क्यों उत्तरदायी माना जाता है?

कृष्ण उत्तर देते हैं, ‘मनुष्य कामनाओं और उनसे उत्पन्न क्रोध के वश होकर ऐसे कर्म करता है। यह आग के समान कभी न तृप्त होनेवाली कामनाएँ ही पापी हैं और हमारी शत्रु हैं।’ पाप का अर्थ वे कर्म हैं, जो श्रेय अर्थात् सुख-शांति की ओर न ले जाकर दुख और अशांति की ओर ले जाते हैं। पापकर्म का यह दंड भी प्रकृति ही देती है। ये कामनाएँ तथा क्रोध आदि हमारे ज्ञान को ढककर रखते हैं। ज्ञान वह जो हमें बतलाएँ कि हम कौन हैं; अज्ञान तो बतलाता है कि यह शरीर, मन और बुद्धि ही हम हैं। आप कभी भी अंदर झाँककर देखें, आप पाएँगे कि आपके मन में कामनाएँ, क्रोध, लोभ, मोह, मद या मत्सर-संबंधी विचार ही घूम रहे होते हैं। कोई कामना पूरी नहीं हुई तो क्यों नहीं हुई और हो गई तब दूसरी कामना को कैसे पूरी

करें, इत्यादि। कामनाओं का अंत नहीं होता, इसलिए जो सोचता है कि कामनाएँ पूरी होने से सुख मिलेंगे, वह सुखी हो नहीं सकता।

जब ध्येय निश्चित हो तब उसे पाने में सुख मिलता है, किंतु यह जगत परिवर्तनशील है, मनुष्य का मन उससे ज्यादा चंचल है अतः उसकी इच्छाएँ तथा उसका ध्येय बदलता ही रहता है जिन्हें पाने की घुड़दौड़ में वह हाँफते हुए दौड़ता रहता है; इन सबसे वह तृप्त हो नहीं सकता, तब उसे सुख कैसे मिल सकता है! यह परिवर्तनशील कामनाएँ हमारी इंद्रियों, मन तथा बुद्धि में ही वास करती हैं, और हम पर आधिपत्य जमाए रखती हैं, हम इनके गुलाम रहते हैं, क्या गुलाम कभी सुखी हो सकता है! भोगवादी अपनी इच्छाओं का सच्चा और स्वैच्छिक गुलाम होता है।

कृष्ण आगे कहते (3/41) हैं—

‘तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञान नाशम्।’ (3/41)

‘इसलिए श्रेष्ठ भारतीय अर्जुन तुम अपनी इंद्रियाँ, मन और बुद्धि पर नियंत्रण करो और इस महापापी कामना का, जो कि ज्ञान और विज्ञान दोनों का नाश करने वाली है, अंत करो।’ यह आदेश विचित्र लग सकता है। कामनाओं पर नियंत्रण की बात तो समझ में आती है, किंतु उनका अंत ही करना निश्चित ही विचित्र है। बिना कामनाओं के तो कोई भी व्यक्ति कर्म ही न करेगा। आखिर कर्म किसी कामना की पूर्ति के लिए ही तो किए जाते हैं। यह तो समझा दिया गया है कि कर्म तो प्रकृति ही कर रही है, हम नहीं। और प्रकृति कर्म करती रहेगी। भूख-प्यास तो लगती रहेंगी और शरीर उन्हें तृप्त करने के लिए कर्म करता रहेगा। बुद्धि द्वारा हमें शरीर से वही कर्म कराते रहना है जो जीवन हेतु आवश्यक हैं, सभी के लिए लाभदायक हैं। अर्थात् कर्तव्यों के अतिरिक्त हमें शरीर से कोई और कर्म नहीं करवाना है। जो भी अनावश्यक कर्म हैं उनका त्याग कराते रहना है। आवश्यक और अनावश्यक कर्मों में अंतर बुद्धि में समझने के लिए बुद्धि का विकास कराते रहना है। इस तरह कामनाओं का अंत हो सकता है। जो कर्तव्य हैं, उन्हें करना है, उनमें इच्छा और अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं। यदि भोजन करना है तब पौष्टिक ही करना है, इच्छा से नहीं पूछना है। यदि माता-पिता की सेवा करना हमारा कर्तव्य है तब इच्छा हो या न हो सेवा करना है। परिवार के प्रति कर्तव्य निभाने के लिए नौकरी करना है तो पूरी क्षमता के साथ करना है, ताकि हम सफलता तथा असफलता के बंधन से मुक्त रहें। कामनाओं से मुक्त होने पर ही आत्मज्ञान प्राप्त हो सकता है और तब ज्ञात होता है कि हम तो स्वयं आनंद हैं, अनंत आनंद हैं, हमें कस्तूरी मृग के समान बाहर सुख खोजने की आवश्यकता ही नहीं।

कठोपनिषद् में भी कहा है, कामनाओं से मुक्त हुए और सच्चिदानंद हो गए। यह आनंद भोगवादी को कभी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो इच्छाओं का गुलाम है, वह तो अंततः निश्चित ही दुखी होगा और यह सच्चिदानंद की अवस्था स्वार्थी नहीं है क्योंकि उस अवस्था में उसे समस्त ब्रह्मांड से एकता की अनुभूति होती है, वह अपने में और अन्य में एकत्व ही देखता है, जिसके प्रताप से वह सभी का भला करता है। इसी को आत्मा में स्थित होना कहते हैं। अतएव तृतीय अध्याय के अंतिम श्लोक में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

‘एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।



जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।' (3/43)

इस प्रकार बुद्धि से परे आत्मा को जानकर, आत्मा के प्रयासों द्वारा अपनी आत्मा में स्थिर होकर, हे शक्तिशाली इस दुर्जेय शत्रु कामना का अंत कर। इसका अर्थ है कि जब तू आत्मा में स्थित होता है तब कामनाओं का अंत हो जाता है। द्रष्टव्य है कि अल्पकाल के लिए भी आत्मा में स्थिर हुआ जा सकता है, उसके लिए कामनाओं का पूर्ण अंत होना आवश्यक नहीं। किंतु आत्मा से पूर्ण साक्षात्कार अर्थात् दुखों से पूर्ण मुक्ति के लिए कामनाओं का पूर्ण अंत आवश्यक है जो ध्यान की अवस्था में पुनः-पुनः जाने से हो सकता है। इस तरह कामनाओं का अंत ही वास्तव में भोगवाद का अंत है, और कर्मयोग की चरम उपलब्धि है। निष्काम कर्मयोग केवल भोग का अंत नहीं वरन जीवन में अनंत सुखी होने का मार्ग है। जीवन सुचारू रूप से चलाने के लिए भोग अत्यंत आवश्यक है। गीता का चैप्टर श्री अर्थात् कर्मयोग इस तरही पेज श्री अर्थात् भोगवाद के दुष्प्रभाव से हमें बचाने के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान में तथा प्रौद्योगिकी में प्रगति कराते हुए भारत को विश्व में सम्मान सहित ऐतिहासिक स्थान दे सकता है। साथ ही विश्व के प्रसिद्ध इतिहासकार टायनबी, फ्रांस के पूर्व संस्कृति मंत्री आंद्रे मालरो आदि अनेक विद्वानों की घोषणाओं का कार्यान्वयन कर विश्व की रक्षा भी कर सकता है। हम अपनी संस्कृति भूल रहे हैं क्योंकि हम विदेशी भाषा अँग्रेजी में अपना जीवन जी रहे हैं। अपनी भाषाओं में शिक्षा लेने तथा जीवन जीने से हमारी संस्कृति अपने आप हममें संस्कारित हो जाएगी। हमारे बच्चे हमारी भाषा में शिक्षा ग्रहण करें, इसके लिए हमें आंदोलन करना होगा, अन्यथा हम गुलामों की तरह नकल ही करते रहेंगे, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में पिछड़े रहेंगे और दुखी रहेंगे। यह द्रष्टव्य है कि भोगवाद पर विजय न केवल भारत को वरन विश्व को मरुस्थल बनने से तथा प्रलय से बचाएगी।

यह भी द्रष्टव्य है कि श्री लैंब ने अपनी मृत्यु के पूर्व पेज श्री प्रारंभ करने के लिए खेद प्रकट करते हुए कहा था कि काश उन्होंने ऐसा न किया होता। पर भोगवाद का पैग शराब के पैग से ज्यादा नशीला होता है।

मुझे बिहारी का दोहा याद आ रहा है :

‘कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।

वह खाए बौरात है यह पाए बौरात।’

भोगवाद में तो ‘कनकछरी सी कामिनी’ सहित तीनों कनक मौजूद हैं।

अब मैं इकबाल से क्षमा-याचना सहित कुछ कहना चाहता हूँ :

‘यू०एस०ए० और यूरो सब छा गए जहाँ पर,

कुछ बात है कि हस्ती मिट रही है हमारी!’

□ ई 143, सेक्टर 21

नोएडा 201301 (उ०प्र०)

## हिंदी प्रबंधकाव्यों में मानवता-संबंधी नैतिक मूल्य

डॉ० उर्मिला राव

हिंदी विभागाध्यक्ष

आर०डी०एस० पब्लिक गर्ल्स कॉलेज

रेवाड़ी (हरियाणा)

मानवता का नाम धर्म है। स्वामी विवेकानंद जी ने भी कहा है कि 'मनुष्य में जो स्वाभाविक बल है, उसकी अभिव्यक्ति ही धर्म है।' और इस धर्म में निहित आदर्श ही नैतिक मूल्य है। जन्म लेने के पश्चात् मानव में मानवता नैतिक मूल्यों द्वारा ही आती है। नैतिकता कहें अथवा नैतिक मूल्य दोनों ही शब्दों का सीधा संबंध मानवता से है। नैतिक शब्द नीति शब्द से बना है। नीति का अर्थ है समाज, धर्म और राष्ट्र द्वारा बनाए नियमों के प्रति अनुकूल रहना और उन नियमों के अनुकूल मनोवृत्तियों से संबंधित मूल्य ही नैतिक मूल्य कहलाते हैं। इस प्रकार यह कहना सर्वथा उचित होगा कि दया, त्याग, अहिंसा, पवित्रता, धर्म, सत्य आदि सर्वत्र मान्य नैतिक मूल्य हैं।

प्राचीन युग से मानवता की भावना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। पुरातन युग के समान ही मध्यकाल में भी व्यापक मानवता का प्रसार हुआ था। फ्रेंच राज्य-क्रांति के स्वातंत्र्य, समता एवं विश्वबंधुत्व तत्त्वों ने विश्व को प्रभावित किया है। प्रारंभ में आधुनिक मानवतावाद मानवता के शोषण और बंधन से मुक्त करने के बड़े महान और उदार आदर्शों से चालित हुआ था। हिंदी के प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य रचयिताओं ने मानवता का खूब चित्रण किया है।

मानवीय सभ्यता का संबंध किसी जाति विशेष से नहीं है बल्कि वह तो नवीन जीवन संदर्भों को उद्घाटित करने वाला तत्त्व है। मानव में सर्वोच्च गुण मानवता का ही है, जिसके कारण वह पशु की अपेक्षा मानव की श्रेणी में है। इसी मानवता को बनाए रखने के लिए आज तक हमारे धर्मग्रंथ, संत तथा विभिन्न पंथ निरंतर प्रयत्न करते रहे हैं। किंतु फिर भी मानवता निरंतर पतन की ओर है। परिणामस्वरूप हमारा देश जिस संक्रमणकाल से गुजर रहा है, जिस तरह की अपसंस्कृति और मूल्यहीनता का शिकार होकर निरंतर हीन बल्कि निकृष्टतम मानवीय मनोवृत्तियों का अखाड़ा बनकर रह गया है, इससे मानवता-संबंधी नैतिक मूल्यों की आवश्यकता और भी बढ़ गई है। मानवता और नैतिक मूल्यों की आड़ में अनैतिकता और अनाचार का पोषण कर उसे बढ़ावा दिया जा रहा है। इसका भयानक रूप यह बना कि सहज मानवीय संबंधों में दरारें पड़ती जा रही हैं। वे संबंध भरभराकर टूटकर गिरने को उतावले हैं। इन्हीं मानवीय नैतिक मूल्यों के हास की गूँज प्रबंधकाव्यों में स्पष्ट सुनाई पड़ती है। यही संत्रास रांगेय राघव के

‘मेधावी’ को दिखाई पड़ा है—

आज मैं देख रहा हूँ मौन, युगांतर से मानवता त्रस्त  
द्रोपदी सी लुटती असहाय, शक्तिशाली पांडव हो मूक  
मूर्ख है महापाश में बद्ध, अंध है स्वार्थ भरा वह न्याय  
और दुःशासन करते गरज, चीर हरने का निष्ठुर कार्य।<sup>1</sup>

इस विज्ञान के युग में मानव, मानव न रह सका। रांगेय राघव ने अपने प्रबंधकाव्य ‘मेधावी’ में विश्व के भौतिक दुष्परिणामों की ओर संकेत किया है। नरेंद्र शर्मा ने कहा कि शक्तिबल, दाँव-पेंच, कूटनीति के विषय में आदर्श और मानवता लुप्त हो रही है। किंतु रक्तपात से मानवता की गति नहीं रुकेगी, मानवता ही धरा को सुखी कर सकेगी। दिनकर जी के अनुसार यह मानवता तब तक विवश और दुर्बल रहेगी जब तक—‘मानव को न्यायोचित सुख सुलभ नहीं है और मानव मन को धरती पर शांति नहीं है।’<sup>2</sup>

दुख तो तब होता है जब हम देखते हैं कि पाश्चात्य प्रभावों, पश्चिम की अंधी नकल और जूठन खाने-भोगने की हमारी आदत ने हमें परोपकार जैसी अपनी उदात्त सांस्कृतिक चेतनाओं से विमुख कर दिया है। हमें घोर स्वार्थी तथा मात्र आत्मजीवी बना दिया है। अनेक प्रकार से घातक रूपों में इसका परिणाम हमारे सामने आ रहा है। लूट-खसोट, अन्याय, अत्याचार और विलास वासनापूर्ति की अंधी दौड़ में सभी शामिल हो रहे हैं। चारों ओर नज़र घुमाने पर एक कोलाहल-सा सुनाई पड़ता है क्योंकि मानव संघर्ष, पारस्परिक कलह और युद्ध से संतप्त है। इन सब विकट परिस्थितियों से मानव को मानवता ही उभार सकती है। गुप्त जी के ‘जयभारत’ में युधिष्ठिर द्वारा दिए प्रेरक मानवीय उद्गार युगानुकूल हैं—

हे देव, जन के रक्त से रंजित न जग के हाथ हों  
मधु-मूर्ति बालक और बंधुए व्यर्थ हों न अनाथ हों  
पाते यहाँ तुच्छ तृण भी गैर रहने के लिए  
तो भी रहे अक्षत हमारा स्वत्व कहने के लिए  
करना न मेरा धर्म मुझको बाध्य लड़ने के लिए  
तो क्या समन्वय योग्य हम सब हैं झगड़ने के लिए  
ममता कहाँ जावे हमारी हम भले ही खिन्न हों।<sup>3</sup>

यही भावना लक्ष्मीनारायण मिश्र के प्रबंधकाव्य ‘सेनापति कर्ण’ में भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कर्ण में सच्ची मानवता दिखाई देती है। तभी तो ‘कर्ण युद्ध नहीं करना चाहता क्योंकि वह नहीं चाहता कि युद्ध के माध्यम से वीरों का संहार हो। महाविग्रह की अनिच्छा से युद्ध में सहायता देने आए राजाओं को वह लौटा देना चाहता है और पार्थ के साथ स्वयं युद्ध करके विजय का निर्णय करना चाहता है।’<sup>4</sup>

मानवता-संबंधी सर्वश्रेष्ठ नैतिक गुण है जीवों पर दया करना। हमारी भारतीय संस्कृति स्वयं कष्ट उठाकर भी दूसरों को सुख देने की प्रेरणा देती है। यही जीव सुख की भावना गुप्त जी के ‘जयभारत’ में तब दृष्टिगत होती है जब इंद्र का सारथी मातलि युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए आता है, किंतु युधिष्ठिर अपनी शरण में आए कुत्ते को भी स्वर्ग ले जाना चाहते हैं। सारथी द्वारा मना किए जाने पर वे स्वयं भी स्वर्ग जाने के लिए अनिच्छा प्रकट करते हैं—

तुम जाओ मेरा भाग्य नहीं  
जो मैं सुदेव के दर्शन पाऊँ,  
शरणागत अनुजाधिक सहचर  
यह श्वान छोड़ क्योंकर जाऊँ? <sup>5</sup>

वैदिक मंत्र द्रष्टाओं तक ने परोपकार को महत्त्व देते हुए समय-समय पर उद्घोष किए हैं कि सभी सुखी रहें, स्वस्थ रहें तथा सभी का कल्याण हो। ऐसी घोषणाएँ वही सभ्यता संस्कृति कर सकती है, जो मानवता से युक्त हो, जो अपने जन्मकाल से ही उदार हो, पर-पीड़ा को समझकर परहित परायण हो। 'जयभारत' प्रबंधकाव्य में भी यही मानवतावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है जहाँ पर युधिष्ठिर सभी जीवों के प्रति मंगलमयी तथा कल्याणकारी भावना रखते हैं, सभी के सुख की चिंता करते हैं—

सब सुख भोगें सब रोग से रहित हों,  
सब सुख पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी। <sup>6</sup>

मानव में मानवतावादी नैतिक गुण तभी संभव है, जब उसमें त्याग की भावना हो। सृष्टि के कल्याण के लिए सभी में मानवता का होना अनिवार्य है। इसके लिए मनुष्य को अपने सुख की भूख की अपेक्षा दूसरों को सुख देने का प्रयत्न करना होगा। कवि दिनकर जी 'कुरुक्षेत्र' में कहते हैं कि—

मन का होगा आधिपत्य  
जिस दिन मनुष्य के तन पर  
होगा त्याग अधिष्ठित जिस दिन  
भोग लिप्त जीवन पर  
केंचन को नर साध्य नहीं  
साधन जिस दिन जावेगा  
जिस दिन सम्यक् रूप मनुज का  
मानव पहचानेगा। <sup>7</sup>

मानवतावादी नैतिक मूल्यों के गिरते स्तर का मुख्य कारण यह भी है कि आज का मानव केवल सत्ता लोलुपता एवं धन लोलुपता की ओर ही दृष्टि रखता है वह मानवीय गुणों, संवेदनाओं की ओर न तो झाँकना ही चाहता है और न ही इन तत्त्वों को जानने की चेष्टा करना चाहता है। इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकवादी मूल्यों को मानव-जीवन में स्वीकृति है। वह अपनी सुख-समृद्धि के ही अधीन होकर रह गया है। इतना अधीन कि अपने सुख के लिए दूसरों को कष्ट पहुँचाने में भी कदाचित् संकोच नहीं करता। 'रश्मिरथी' के कवि ने बहुत सुंदर शब्दों में लिखा है—

होकर समृद्धि सुख के अधीन,  
मानव होता नित तपः क्षीण।  
सत्ता, किरिट, मणिमय आसन,  
करते मनुष्य का तेज हरण  
नर विभव हेतु ललचाता है

पर वही मनुज को खाता है।<sup>8</sup>

मनुष्य में कर्म करने की शक्ति है इसलिए निरंतर कर्म करते रहना उसका उद्देश्य होना चाहिए। निष्कर्म होने पर मनुष्य के हाथ दुख ही लगता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कर्म की साधना करने वाला व्यक्ति ही सुख प्राप्त करता है। भारतीय जीवन में परहित साधन को सदैव शुभ कर्म, परम धर्म और परम कर्तव्य माना जाता रहा है। वहाँ जो यज्ञ का विज्ञान मिलता है इसके मूल में देवी-देवताओं को प्रसन्न करने की भावना के साथ-साथ जनकल्याण तथा परोपकार की भावना भी निहित होती है। हिंसा और घृणा तो राक्षस अथवा तामसिक व्यक्ति के प्रति भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे स्वयं की अशांति तो बढ़ती ही है बल्कि कलक का वातावरण भी निर्मित होता है। प्रेम और सत्वबल से ही दैत्य पर विजय प्राप्त करने की बात 'तारक वध' में भी कही गई है—

मानव हो जब सबल, देव को भोग दे  
आराधना में हवन यज्ञ में योग दे  
दैत्य वृंद पर विजय सत्य बल से करे  
द्वेष घृणा की प्रगति सहज ही रोक दे।<sup>9</sup>

यद्यपि दया, सहनशीलता, क्षमा, अहिंसा, सत्यबल आदि गुणों को जब तक मानव अपनाता है उसका आत्मिक बल बढ़ने के साथ-साथ सुख शांति बनी रहती है। परंतु जब कभी शत्रु द्वारा उसके मान-सम्मान, यश, नारी तथा संपत्ति आदि तत्त्वों का अपहरण कर लिया जाता है। उस समय इन सात्त्विक तत्त्वों का सहारा लेने वाले मनुष्य को कायर माना जाता है और अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए ऐसे अत्याचारी से युद्ध करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि ऐसे समय में युद्ध करना ही मानवता की सुरक्षा है—

कर्म के प्रति का पुरुषता नहीं है यह  
कीर्ति, यश, नारी, धरा  
जय, लक्ष्मी  
ये नहीं है कृपा  
या अनुदान  
मेरे पुत्र!  
भिक्षा से नहीं  
वर्चस्व से अर्जित हुए हैं आज तक।<sup>10</sup>

यही विचार केदारनाथ 'प्रभात' कृत 'कैकेयी' में द्रष्टव्य है। इस काव्य में समय के अनुसार मूल्यों के परिवर्तन की बात कहीं गई है। काव्य की नायिका कैकेयी के अनुसार 'शांति का ही वरण करना चाहिए किंतु शांति जब कायरता का प्रतीक बन जाए तब वह त्याज्य हो जाती है।' <sup>11</sup>

'कैकेयी' प्रबंधकाव्य में कैकेयी ने मानव कल्याण के लिए स्वयं तिरस्कार और घृणा तक को अपने लिए चुन लिया। कैकेयी दशरथ से अपने दो वर माँगकर राम को वन में भेजने का जो कार्य करती है, वह दानवों को नष्ट कर मानव के सुख की कामना तथा रक्षा के लिए करती है—

वन की ओर राम का जाना मानवता की जय है  
आर्य सभ्यता की, चिर मानव स्वतंत्रता की जय है।<sup>12</sup>

गुप्त जी की 'यशोधरा' में यशोधरा महात्मा बुद्ध को विश्वकल्याण की भावना के कारण हमेशा के लिए अपने से दूर भेज देती है। वह अपने दुख की चिंता नहीं करती। क्योंकि उन्हें लगता है कि मुझ एक के दुख में असंख्य लोगों का कल्याण और सुख छिपा है। इसी कारण विश्व में मानवता के संदेश के प्रचार के लिए अपने पति महात्मा बुद्ध को भेजती है—

मेरे दुख में भरा विश्व सुख  
क्यों न भरूँ फिर मैं हामी।<sup>13</sup>

सहनशीलता का मानवीय गुण मनुष्य को कितनी ऊँचाइयों तक पहुँचा देता है, यह बात डॉ॰ रामकुमार वर्मा कृत 'एकलव्य' में स्पष्ट होती है। इस काव्य में लेखक ने बताया है कि लक्ष्य के प्रति तन्मयता तथा निष्ठा, निरंतर साधना, गुरु के प्रति समर्पण और नैतिक प्रबुद्धता आदि मानवीय गुण व्यक्ति को आदर्श बना देते हैं। कवि ने एकलव्य की ओर उन्मुख होकर कहा है कि 'वह मानवता का शृंगार है ... वह अनार्य नहीं आर्य है क्योंकि उसमें शील का प्रधान्य है ...।' <sup>14</sup>

परमेश्वर द्विरेफ कृत 'मीरा' काव्य में भी अहिंसा, आत्मसंयम, सभी मनुष्यों के प्रति सहानुभूति, दया, सेवा आदि मानवीयता से युक्त नैतिक मूल्यों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार बिखरे मानवतावादी नैतिक मूल्यों को स्वयं मानव को ही सँवारना होगा। उसे अपने भाग्य पर आधारित रहने की अपेक्षा स्वयं ही प्रयत्न करना होगा। स्वयं ही जागरूक, कर्मण्य तथा स्वावलंबी बनना होगा। प्रसाद जी ने भी यही बात कही है—

सो रहे तुम न भाग्य सोता है  
आप बिगड़ी तुम्हीं सँवारोगे।<sup>15</sup>

हिंदी कवियों ने वंश, जाति, संप्रदाय, धर्म, वर्ण, राष्ट्र, शोषण, हिंसा, बर्बरता, छल, कपट आदि से मानव को ऊपर उठाकर मानवता को पहचानने का संदेश दिया है।

मानवता युक्त नैतिक मूल्य की भावना बड़ी व्यापक है और प्रबंधकाव्यों में यह भावना स्पष्टतः परिलक्षित होती है।

### संदर्भ

1. रांगेय राघव, मेधावी, सर्ग 10, पृ० 162
2. दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ० 101
3. मैथिलीशरण गुप्त, जयभारत, पृ० 313
4. लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेनापति कर्ण, पृ० 42-43
5. मैथिलीशरण गुप्त, जयभारत, पृ० 447
6. मैथिलीशरण गुप्त, जयभारत, पृ० 410
7. रामधारी सिंह दिनकर, कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ० 143
8. रामधारी सिंह दिनकर, रश्मिस्थी, तृतीय सर्ग, पृ० 54
9. गिरिजादत्त शुक्ल, तारक वध, पृ० 499

10. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ० 56
11. केदारनाथ 'प्रभात', कैकेयी, भूमिका, पृ० 33
12. केदारनाथ 'प्रभात', कैकेयी, भूमिका, पृ० 184
13. मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ० 208
14. डॉ० रामकुमार वर्मा, एकलव्य, पृ० 2
15. जयशंकर प्रसाद, स्कंदगुप्त विक्रमादित्य, पृ० 158

## वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में पारिवारिक समस्या का निरूपण

कमलेशकुमारी

अध्यक्ष हिंदी विभाग,  
अहीर कॉलेज, रिवाड़ी (हरियाणा)

व्यक्ति परिवार की एक इकाई है। जबकि परिवार समाज की इकाई है। अर्थात् व्यक्तियों से परिवार बनता है और परिवारों से समाज का निर्माण होता है। परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनमें आपस में खून का रिश्ता होता है तथा प्रत्येक सदस्य किसी न किसी पारिवारिक सूत्र अथवा रिश्तों के कारण एक-दूसरे से बँधा रहता है। समाज का हर व्यक्ति किसी-न-किसी परिवार का सदस्य होता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति संस्कार ग्रहण करता है, उसे समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का बोध होता है। परिवार राष्ट्र की समृद्धि में सहायक होता है तथा राष्ट्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 'मानव समाज का इतिहास परिवार का ही इतिहास है, क्योंकि मानव-जीवन के प्रारंभ से ही परिवार उनके साथ है और किसी-न-किसी रूप में यह सांस्कृतिक विकास के सभी स्तरों पर पाया जाता है। इतना ही नहीं श्री चार्ल्स कूले ने भी परिवार को ऐसा प्राथमिक समूह माना है, जिसमें बच्चे के सामाजिक जीवन व आदर्शों का निर्माण होता है। इस रूप में परिवार व्यक्ति के सामाजिकरण का एक प्रमुख साधन भी है। इसके अतिरिक्त परिवार ही समाज की प्रारंभिक इकाई है। परिवार के बिना समाज की निरंतरता संभव नहीं, क्योंकि परिवार ही नए बच्चों को उत्पन्न करता है, जो लोगों का रिक्त स्थान भर देते हैं, जो मर गए हैं। इस प्रकार परिवार द्वारा मृत्यु और अमरत्व दो विरोधी अवस्थाओं का सुंदर समन्वय हुआ है। स्पष्ट है कि परिवार सामाजिक जीवन की एक प्रमुख संस्था है।<sup>1</sup> परिवार के सदस्य एक दूसरे के सुख-दुख, हर्ष-शोक में भागीदार रहते हैं। प्राचीनकाल में संयुक्त परिवार की परंपरा थी, क्योंकि संयुक्त परिवार के सदस्य व्यक्तिगत इच्छाओं और स्वार्थों को महत्त्व न देकर अन्य सदस्यों के लिए उन्हें त्याग देने के लिए प्रस्तुत रहते थे। करुणा प्रेम और संतोष के कारण परिवार का प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के साथ जुड़ा रहता था। 'परिवार में हर सदस्य का एक विशेष पद होता है और उससे उसके पद के अनुरूप कुछ विशेष दायित्व निबाहने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रकार परिवार के सभी सदस्यों में उनके पदों और कार्यों का एक संतुलित ढंग से विभाजन रहता है। इसके अलावा परिवार के लिए त्याग की भावना, विचार-विनिमय, आय का आवश्यकतानुसार वितरण नैतिक मान्यताओं



में विश्वास, गृहपति के आदेशों का पालन अन्य विशेष महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जो परिवार के संगठन में सहायक होते हैं।<sup>2</sup> किंतु वर्तमान युग में उपर्युक्त व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न हो रहा है। भौतिकतावादी, पूँजीवादी युग में त्याग का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है और व्यक्ति महत्त्वाकांक्षी हो गया है। वह अपनी इच्छाओं को ही अधिक महत्त्व देता है तथा बुद्धि-प्रधान बनकर परिवार के अन्य सदस्यों की उपेक्षा करता है, उनसे अलग होकर अपना विकास करने की भी कोशिश करता है। यही कारण है कि परिवार विघटित होते जा रहे हैं और एकाकी परिवार की परंपरा बल पकड़ती जा रही है। पारिवारिक विघटन एवं भौतिकवादी मानसिकता के कारण विभिन्न पारिवारिक समस्याएँ उत्पन्न होती जा रही है।

### संयुक्त परिवार का विघटन

हिंदी शब्दसागर में संयुक्त परिवार को इस प्रकार परिभाषित किया है। 'वह कुटुंब जिसमें परिवार के सभी लोग साथ मिलकर रहते हैं।'<sup>3</sup>

'सामान्यतः संयुक्त परिवार संयुक्त संगठन के आधार पर निकट के नाते रिश्तेदारों की एक सहयोगी व्यवस्था है, जिसमें सम्मिलित वास अधिकारों एवं कर्तव्यों का समावेश होता है। हिंदू कानून के अनुसार एक संयुक्त परिवार के अंदर वे सब व्यक्ति आते हैं, जो एक सामान्य पूर्वज के वंशज हैं। इनमें उनकी पत्नियाँ और आविवाहित लड़कियाँ भी शामिल हैं और उन्हें संयुक्त परिवार का अंग तब तक माना जाएगा जब तक परिवार के सदस्य विभाजित न हो जाएँ।<sup>4</sup> आई० पी० देसाई के अनुसार, 'हम ऐसे घराने को संयुक्त परिवार कहते हैं, जिसमें पीढ़ी की गहराई परिवार की अपेक्षा अधिक लंबी होती है तथा जिसके सदस्य एक-दूसरे से संपत्ति, आय एवं पारिवारिक अधिकारों एवं दायित्वों के आधार पर संबंधित होते हैं।' हेनरी मेन के अनुसार, 'हिंदू संयुक्त परिवार का एक समूह है, जिसमें जीवित पूर्वज एवं पुत्र तथा विवाह द्वारा इन पुत्रों से संबंधित रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं।'<sup>5</sup>

भौतिकतावादी मानसिकता एवं औद्योगिक क्रांति के कारण संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। के० एम० संबसिन के शब्दों में, 'औद्योगिकरण ने परिवार को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप बहुत-सी गाँठें, जो कृषक-समाज में परिवार के सभी सदस्यों को एक-दूसरे से बाँधती थीं ढीली पड़ने लगीं। पुनः मजदूर भी कारखानों के जीवन तथा कार्यप्रणाली से अनभ्यस्त होने के कारण टूट जाता है और ऐसी दशा में वह परिवार का आनंद नहीं उठा पाता। यह दशा उसके मन पर भी प्रभाव डालती है और वह वेश्या तथा मदिरा आदि अप्राकृतिक साधनों द्वारा आनंद खोजने के लिए प्रेरित होता है। कारखाना-व्यवस्था ने एक ही परिवार के सदस्यों को आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र बना दिया है। संयुक्त परिवार प्रथा जो भारत में सामान्य रूप से प्रचलित थी, धीरे-धीरे लुप्त हो रही है।'<sup>6</sup>

उपन्यासकार वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन पर चिंता व्यक्त की गई है। यद्यपि परिवार का मुखिया अपनी सारी इच्छाओं का दमन कर भावावेश में बहकर अपने पुत्रों का लालन-पालन करता है क्योंकि वह यशकामी है, परंपराओं एवं मर्यादाओं से डरता है। घर को एक सूत्र में बाँधे रखने को ही वह अपना लक्ष्य मानता है। किंतु उसी के पुत्र लालची, स्वार्थी धनप्रिय एवं बुद्धिवादी बन चुके हैं। उनके लिए परंपराओं और मर्यादाओं का कोई महत्त्व नहीं है। 'पंचनामा' उपन्यास में लेखक ने इस तथ्य को नन्ना के माध्यम से स्पष्ट किया है।

नन्ना की बेटी का विवाह है और उसके पुत्रों को भय सता रहा है कि उनके हिस्से का धन बहन की शादी में खर्च हो जाएगा। इसलिए वे अपने पिता की इच्छाओं का सम्मान न करके अलग-अलग होने की बात करते हैं।

व्यक्तिवादिता एवं अस्मिता के कारण ही परिवार को एक सूत्र में बाँधनेवाली स्थितियाँ तथा क्रियाएँ शिथिल पड़ चुकी हैं। इस प्रकार के असंतुलन का परिणाम परिवार का विघटन हुआ। 'पंचनामा' उपन्यास में संयुक्त परिवार के विघटन का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है—'नन्ना तुरंत चेतें। न चेतते तो हाथ मलते रह गए होते। अलबत्ता चेतने के बाद भी नन्ना ने बउआ की पूरी सलाह नहीं मानी। उन्हें सबक तो नहीं सिखाया, न्यारा कर दिया ताकि भगवान् के सिरझाए हलके नन्ना फिर कोई ऊँच-नीच, दाँव-पेंच न कर पाएँ।'<sup>7</sup>

वर्तमान युग में पंच सरपंच भी स्वार्थी हो गए हैं। वे पंच परमेश्वर के रूप में न रहकर पक्षपात करते हुए ही निर्णय देने लगे हैं। उनका उत्तरदायित्व तो है विघटित होते परिवार को बचाना, किंतु वे इसके विपरीत परिवारों को तोड़ने में आनंद लेते हैं। उन्हें पता है कि परिवार बिखरेगा तो बड़ा या मँझला कोई-न-कोई तो उनके आश्रय में आएगा ही और उसी से अपना उल्लू सीधा कर लेंगे। उपन्यासकार ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है—'पंच यह मानकर चलते हैं कि बड़ा बड़े दिनों से पूरे कारोबार पर काबिज है, उसने तो जितना हम पंचों के सामने बँटवारा करने के लिए रखा गया है उससे कहीं अधिक यहाँ-वहाँ दुका-दबा रखा होगा। ऐसे अवसर पर पंच परमेश्वर की नहीं हलके, मँझले, सँझले या जो भी कारोबार के प्रति उदासीन आँखें मूँदे रहे होते हैं, उनके तरफदार की भूमिका अदा करते आए हैं।

नन्ना अपने अनुभव से जानते हैं कि जो बड़ा पंचों के अन्याय को न्याय नहीं मानता, वह धन के साथ-साथ अपना यश भी गँवाता है। बटवारे के समय का मनमुटाव हलके को स्थायी रूप से पंचों की शतरंज का मोहरा बना देता है। फिर पंच हलके, मँझले या बड़े जो भी उन्हें अपना तरफदार मान लें, उसे तब तक शह देते हैं। जब तक सब भेद उजागर न हो ले।<sup>8</sup>

लेखक की मान्यता है कि जब संयुक्त परिवार बिखरता है तो एक ही परिवार के सगे भाई एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हो जाते हैं, 'नन्ना ने ऐसे अवसर पर बेसब्र बेकाबू होनेवाले सगे भाइयों को बाद में एक-दूसरे के खून का प्यासा होते देखा है। एक-दूसरे को राख में मिलाने की जुगत लगाते देखा है। एक-दूसरे का प्रबल शत्रु बनते देखा है। पूरी बिरादरी के सामने अपने वंश की खानदान की इज्जत का तमाशा बनाने के बाद इसी बिरादरी से मुँह छुपाकर पलायन करते देखा है।<sup>9</sup>

प्रस्तुत उपन्यास में नन्ना के तीनों बेटे बड़े, मँझले और हलके पिता पर न्यारा करने का दबाव डालते हैं। अपने बेटों की बात सुनने के बाद नन्ना उन्हें समझाते हैं—'कायदे से तो बँटवारे के समय पाँच-पंच बुलाने चाहिएँ। तीन समाज के दो रिश्ते के लेकिन हम एक भले घर में बिटिया के रिश्ते का वचन दे आए हैं, इसलिए हम नहीं चाहते कि किसी को कानोंकान भी खबर लगे कि बिटिया के विवाह का सवाल उठते ही हमारे बेटे किनारा कर गए...सो हमने किसी को इत्तला नहीं दी। अलबत्ता तुम दोनों की उतावली को ध्यान में रखकर हमने तय किया है कि हम अपनी जमीन जायदाद का मौखिक बँटवारा अभी कर लें और पंचनामा बिटिया का

विवाह हो जाने के बाद कर लेंगे।'<sup>10</sup>

नन्ना ने अपने दिए हुए वचन के अनुसार अपनी बेटी के विवाह के तुरंत बाद अलग-अलग करने का फैसला कर दिया—'शादी के बाद, 'नन्ना ने बँटवारा करने में विलंब नहीं किया। बिरादरी के तीन और रिश्ते के दो मँझले और हलकाई के ससुर को पंच बनाकर जमीन जायदाद का, खेत-खलिहान का, बाखर-टपरा का बर्तन-भाँडों का, गाय-भैंसों का, बही-खातों का बँटवारा करवा दिया।'<sup>11</sup>

### नारी विषयक समस्याएँ

परिवार में पति-पत्नी अथवा नर और नारी का समान अधिकार है तथा दोनों ही परिवार की महत्वपूर्ण इकाईयाँ हैं। किंतु पुरुष-प्रधान भारतीय समाज में नारी शोषित एवं दलित होती रही है। यद्यपि 'यत्र पूज्यन्ते नार्यस्तु रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसे शाब्दिक सम्मान तो दिया गया किंतु उसके शोषित जीवन में कोई अंतर नहीं आया। शास्त्रों में तो यहाँ तक कह दिया गया 'न स्वातंत्र्यम् अर्हति नारी।' यही कारण है कि नारी को ही विभिन्न प्रकार के सामाजिक, धार्मिक नियमों के बंधनों में जकड़ा गया। समय परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा से वंचित नारी शिक्षा पाने लगी। अपने शोषण के विरुद्ध उसके मन में आक्रोश पनपा एवं वह स्वावलंबन और स्वातंत्र्यता पाने की चाह रखने लगी। उसने दासत्व से पल्ला झाड़ सहभागिनी बनने का प्रयास किया है। आज वह पुरुष की वस्तु मात्र नहीं है, अपितु उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वह अपनी अस्मिता एवं आत्मसम्मान को बचाने के लिए संघर्ष कर रही है। आज की नारी प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रही है। कुछ क्षेत्रों में तो वह पुरुष से भी आगे निकल गई है। डा० आनंदकुमार ने आज की नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है— 'आज भारतीय स्त्रियाँ पुरुष की दासी मात्र नहीं रह गई हैं, उनका कार्यक्षेत्र घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रह गया वरन् उन्हें पुरुषों की भाँति जीवन के सभी क्षेत्रों में समान अधिकार व सुविधाएँ उपलब्ध हैं।'<sup>12</sup>

उपन्यासकार वीरेंद्र जैन ने जहाँ एक ओर नारी के शोषित, दलित जीवन का चित्रण किया है, वहीं उसकी स्थिति में आए परिवर्तन को भी रेखांकित किया है। उनके द्वारा लिखित उपन्यास 'पार' में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। कबीले का नियम रहा है कि जो औरत लड़के को (मौढा) को जन्म देगी, वही मौढा कबीले का नया मुखिया बनेगा किंतु उसे और संतान उत्पन्न करने की इजाजत नहीं होगी। मुहिया को मौढा पैदा हुआ। वह मुखिया माई बन गई। परंतु अतृप्त वासना की शिकार भी हो गई तथा वासना के अतिरेक के कारण उसे कबीला छोड़ना पड़ा।

आदिवासी कबीलों में तो नारी को पशुओं की भाँति अपनी संपत्ति ही समझा जा रहा है। परंतु अब वे मात्र कोई वस्तु अथवा पशु के समान नहीं हैं। उनकी भी अस्मिता है तथा उन्हें भी कबीलों के रीति-रिवाजों के अनुसार मान-सम्मान प्राप्त है। लेखक की धारणा है—'एक जमाना था जब मवेशी के बदले मौढी कि मौढी के बदले मवेशी लेते-देते रहे हमारी बिरादरी में। पर कब? जब इक्का-दुक्का डेरा डालकर रहते रहे, तब। अब यह मुमकिन नहीं। अब नहीं लेखते हम अपनी मौढी के मवेशी बिरोबर अब इक्का-दुक्का नहीं, हम इक्कठे रहते हैं खेरा बसा कर। ये खेरा हमारा कुनबा है। कुनबे की परवरिश, आदमियों की नाई जीने का ढंग सीख

रहे हैं। आदमी बनना है तो उनके नेक नियम धरम अपनाने होंगे कि नहीं।<sup>13</sup>

वीरेंद्र जैन ने सांकेतिक रूप में बहुपति प्रथा का उल्लेख कर नारी के दैहिक शोषण का भी चित्रण किया है—‘तुमरी जरूरत हम न पूर सकेंगे। दूसरे खेरे में जनी कि मौढ़ी पठैने का चलन नहीं हमारे खेरे में। तुम हमरे संग पठैने का तो सीधा मतलब है पनी जनी को पने हाथों खाई-खंदक में धकेलना। सैकड़ों बरस पीछे की जिंदगानी जीने को लाचार करना। है कि नहीं? उस जीवन में, जिसमें एक ही जनी के कई-कई जन होते रहे।<sup>14</sup>

जब नारी पर मुसीबत आती है तो वह अबला से सबला बनकर अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश करती है—‘चिरौंजी दरती हैं। तैंदू बीनती है। गाद सुखाती है। गाँव-गाँव में इन्हें बेचने जाती है। और बेचने जाती है राउतों के हाथों बनाई गई चामरे की पनैयाँ, जूतियाँ। साझी खेती में मुइया की हिस्सेदारी नहीं है। अपने सामान के बदले गाँव वालों से जो पाती है, उसी से गुजारा करती है।<sup>15</sup> आज पुरुष के रहमोकर्म पर जीना स्त्री अपने लिए धिक्कार समझती है। विधवा स्त्री भी या तो खुद अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है अथवा किसी की पत्नी बनकर जीवन व्यतीत करना चाहती है। वह यह कदापि नहीं चाहती कि पुरुष समाज की आँखों में धूल झोंककर उसे अपनी रखैल बनाकर रखे। वह तो खुलेआम उसकी पत्नी बनकर जीना चाहती है। नारी की परिवर्तित सोच, जीवन-शैली और आक्रोश के कारण अहं प्रधान पुरुष के अहं को ठेस पहुँचती है और उसका पिलपिला अहं बिलबिलाने लगता है। अपने अहं की संतुष्टि के लिए वह अपनी संपत्ति रूपी नारी को पुनः दबाने की चेष्टा करता है, जो उसकी पहुँच से बाहर हो चुकी है। ऐसे में बाह्य एवं आंतरिक संघर्ष प्रारंभ होता है जिसकी परिणति कभी-कभी तो अत्यंत भयानक रूप में दिखाई देती है। इसका परिवार पर कदाचित्त विपरीत एवं अवांछित प्रभाव पड़ता है, जिससे एक विकराल पारिवारिक एवं सामाजिक समस्या उत्पन्न हो जाती है।

### **नारी का मानसिक एवं दैहिक शोषण**

घर की चारदीवारी के भीतर तथा बाहर नारी का दैहिक एवं मानसिक शोषण एक सामान्य सी बात हो गई है। शारीरिक रूप से एवं आर्थिक रूप से निर्बल स्त्री जाति का पुरुष समाज द्वारा शोषण घर, दफ्तर या अन्य स्थानों पर होता रहा है। यद्यपि आर्थिक स्तर पर आज नारी पुरुष के समकक्ष आ गई है। फिर भी घर में पति उसकी इच्छा के विपरीत दैहिक शोषण करता है तो कार्यालयों में पुरुष सहकर्मी, अधिकारी किसी-न-किसी बहाने से उसका शोषण करने से नहीं चूकते। दैहिक शोषण के साथ-साथ उसका मानसिक शोषण भी होता रहा है। क्योंकि उस पर इच्छापूर्ति के लिए दबाव बनाया जाता है। इस दबाव के चलते वह तनावग्रस्त रहती है, यही तनाव उसका मानसिक शोषण बनता है। पुरुष उसे अपनी वासना का शिकार बनाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के भय, प्रलोभन देता रहता है। इस प्रकार भय और लोभ के नैरन्तर्य से कभी-कभी तो वह अपना मानसिक संतुलन भी खो बैठती है। इस संदर्भ में डा० नीलम गोयल के विचार देखे जा सकते हैं— ‘घर और बाहर नारी का दैहिक शोषण एक सामान्य बात हो गई है। कहीं कोई चाचा, मामा अथवा परिवार का कोई सदस्य भोली-भाली और अविकसित आयु की अबोध बालिका का दैहिक शोषण करता है तो कहीं विवाह-योग्य कुँवारी लड़की अपने ही संरक्षकों और अभिभावकों की वासना का शिकार बनती है। कहीं नारी पति

पुरुष की क्रूरता और पाशविकता का शिकार है, वह अपनी स्वार्थसिद्धि पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी को दूसरों के आगे पेश करता है। यदि नारी विरोध करती है तो उसका परगामी पति उसे मानसिक तौर पर शरीर की यातनाएँ देकर उसे विक्षिप्त बना देता है। कहीं नारी अपने से दुगुनी आयु के पुरुष को पति के रूप में स्वीकार करती है तो वह पति अपनी उपस्थिति में अपने ही मित्र द्वारा उसका बलात्कार करवाता है। वह बेचारी अपने ही पति की अमानुषिकता का शिकार होकर रखैल की जिंदगी जीने पर विवश हो जाती है।<sup>16</sup> पुरुष अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए सदा नारी को मोहरा बनाता है। वह हर स्थिति में नारी से उसके शारीरिक समर्पण की कामना करता है। इस प्रकार पुरुष नारी का शारीरिक रूप से शोषण करता ही है, साथ उसको मानसिक रूप से विक्षिप्त भी करता है।

‘सुरेखा-पर्व’ उपन्यास का नायक विनय स्त्री के दैहिक शोषण की कहानी स्वयं अपने मुँह से सुनाता है, ‘मैं एक गाँव में अपने कपड़े बेचने गया था। सब लोग मुझे अच्छी तरह जानने लगे थे। एक घर में मुझे कपड़ों का नाप लेने जाना पड़ा। जब मैं वहाँ पहुँचा घर में सिवाय एक लड़की के कोई नहीं था। उसके पिता ने मुझे रास्ते में ही ताकीद कर दी थी कि मैं उनकी लड़की के लिए दो ब्लाउज सिल दूँ। उसको अकेला घर में पाकर मैं रोमांचित हो आया। कपड़ों का नाप लेने के लिए मैं फीता कम ही इस्तेमाल करता था। ज्यादातर तो आदमियों को देखकर अंदाज से नाप लिख लेता था पर इसे मैंने फीते से नाप देने के फायदे समझाए और नाप लेने लगा। मेरा मन जो चाह रहा था उस हालात को लाने के लिए मैंने दसियों तरह से नापा काफी देर लगी उस लड़की को राजी करने में।

तब मकान में किसी के आने की आवाज सुनाई दी। मैं झट सँभलना चाह रहा था पर इच्छा तृप्ति हम दोनों की ही नहीं हुई थी और इस तरह हम पकड़े गए।’<sup>17</sup>

‘सबसे बड़ा सिपहिया’ उपन्यास में पुलिस द्वारा नारी के दैहिक एवं मानसिक शोषण को व्यक्त किया गया है। थाने में एक प्रौढ़ महिला आकर थानेदार को बताती है कि कल किसी गुंडे शराबी ने इस जवान महिला से चाकू दिखाकर बलात्कार करने का प्रयास किया। परंतु उस औरत के वहाँ पहुँच जाने पर युवती की इज्जत बच गई। वह युवती सुंदर और जवान थी। थाने में पुलिस के डी०ओ० बड़ी ललचाई नज़रों से देख रहे थे। उस युवती से घटना की जानकारी लेते हुए पुलिस अधिकारी ने उसका भरपूर दैहिक एवं मानसिक शोषण किया। उपन्यासकार ने इस घटनाक्रम को इन शब्दों में व्यक्त किया—

डी०ओ० क्षणभर को अकबकाए। फिर थोड़ा झुककर उसे दोनों बाँहों में भरकर उठाने लगे उसके शरीर का स्पर्श पाते ही डी०ओ० का चेहरा प्रसन्नता और आश्चर्य से खुला का खुला रह गया। अपनी प्रसन्नता को बरबस छुपाकर उसके गदराएँ बदन को हाथों में दबाते हुए बोले, ‘घबराओ नहीं, हम तुम्हारी मदद जरूर करेंगे।’ और उसे वापस बेंच पर बिठा दिया।

यह सब लिखकर डी०ओ० ने आनंद को बेंच पर से उठाया और युवती से बोला, ‘अब तुम इस बेंच पर उसी तरह लेट जाओ जैसे कल रात अपने घर में चारपाई पर लेटी थी, और तब बताओ कि उस कमीने, हरामजादे ने कैसे और क्या छोड़छाड़ की तुम्हारे साथ।’

युवती क्षणभर को ठिठकी। उसने ताई को देखा। ताई ने आँखों-ही-आँखों में हँस कहा। तब लाचार होकर बहुत सहमते-सकुचाते हुए बेंच पर चित लेट गई। उसके लेटते ही वहाँ मौजूद

सभी पुलिसकर्मी चौकन्ने हो गए। वे एकटक उसके उभारों और सुगठित शरीर को आँखों-ही आँखों में पीने लगे। अपनी तरफ उठी इतनी बेशर्म निगाहों ने उस युवती को और भी संकुचित कर दिया। सबसे नजरें बचाने के फेर में उसने अपनी आँखें मूँद ली।<sup>18</sup>

इसी प्रकार 'व्यथाकथा' उपन्यास में थानेदार कर्ण को बेरहम होकर पीटता है तो लाजवंती हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है कि इन्हें मत मारिये, छोड़ दीजिए। आपको जो सजा देनी है मुझे दीजिए। लाजवंती के शब्दों में, 'मैंने देखा, अचानक थानेदार का ध्यान पूरी तरह मुझ पर केंद्रित हो गया है। उसका हाथ रुक गया। उसकी आँखों में चमक आ गई। उसके मुँह से लार टपकने लगी। मैं बार-बार वही वाक्य दोहराती-तिहराती-चोहराती रही। थानेदार देर तक एकटक मुझे देखता रहा। जैसे मेरी याचना पर विचार कर रहा हो। मुझे होश ही न था कि कब मेरा आँचल जमीन पर जा पड़ा था आपाधापी में मेरे उरोज प्रायः पूरे ही ब्लाउज से बाहर आ पड़ने को थे, बिल्कुल हाथों की तरह नमन मुद्रा में, पर मेरा ध्यान इस ओर नहीं था। मैं तो थानेदार के चेहरे की बदलती भाव-भंगिमा देख रही थी अपलक।<sup>19</sup>

थानेदार लाजवंती की विनती सुनकर तथा उस पर दया करने का अभिनय करने लगा। वह उसे पिछले कमरे में ले जाता है और कमरे के बाहर खड़े नकुल नाम के सिपाही से कहता है कि मुझे इस औरत से जरूरी बातचीत करनी है। जब तक ये बाहर न निकले, किसी को भीतर न आने देना। उपन्यास की नायिका के शब्दों में, 'तकरीबन आधा घंटा बाद मैं जब बाहर आई, नकुल नाम का वह सिपाही मुझे देखकर मुस्कराने लगा। इस आधा घंटा थानेदार ने जैसी भी बन पड़ा, मुझसे जरूरी बात कर ली। मुझे तो केवल इतना भर याद है कि जब मेरी गर्दन की खाल का अगला हिस्सा पिछले से सटने लगा, मैं बेसुध-सी होकर गिर पड़ी। उस समय तक मेरे बदन पर कपड़ा नाम की चीज बाकी नहीं रह गई थी। थानेदार का एक हाथ मेरी गर्दन में लिपटता जा रहा था और दूसरा मेरे कपड़े उतारता जा रहा था।

फिर कुछ देर के लिए एक ऐसी लौह दीवार मेरे ऊपर आ गिरी जिसने मुझे मारा नहीं कुचल दिया लहलुहान नहीं किया बेआबरू कर दिया।<sup>20</sup>

### नारी का आक्रोश/ प्रतिशोध :

धीरे-धीरे अपनी शक्ति और सामर्थ्य के प्रति आश्वस्त होती जा रही नारी ने यह भी महसूस कर लिया है कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुष की तुलना में हेय नहीं है फिर क्यों वह पुरुष स्वामित्व की बर्बरता सहे। समाज द्वारा स्थापित कठोर रीति-रिवाजों का पालन करे तथा अपने अयोग्य पति को देवता-तुल्य मानकर दासी बनी रहे।<sup>21</sup>

नारी पुरुष की अमानवीयता के विरोध में उठ खड़ी होती है तथा समय आने पर बदला लेने से भी पीछे नहीं हटती। इस स्थिति में नारी का आक्रामक दृष्टिकोण सामने आता है। पुरुष नारी का हर प्रकार से शोषण करता आया है, चाहे शोषण शारीरिक हो या मानसिक। लेकिन स्त्री तब प्रतिशोध पर आती है तो चंडी बन जाती है। 'व्यथा कथा' उपन्यास में नकुल नामक सिपाही लाजवंती का दैहिक शोषण करने के लिए उसके घर में घुसता है। नायिका के शब्दों में, 'मेरे हाथ में अपनी खुरपी लगी लाठी देखकर नकुल घबरा गया। उसने बचाना चाहा पर मेरा निशाना अचूक था। मैं लगातार उस पर बार करती जा रही थी। और हर बार के साथ

मुझे कहीं से कर्ण की वह आवाज और वे शब्द सुनाई देते रहे जो वह टेनिस कोर्ट में कहा करता था, 'लाजो क्या लवली शाट दिया है, वाह क्या प्लेस किया है।' अचानक नकुल ने मुझे झटक ली। शायद उसमें अभी हिम्मत बाकी थी या मैं ही कर्ण की आवाज में गुम हो गई थी। उसने खुरपी का एक तेज प्रहार मेरे पेट पर किया। इधर खुरपी मेरे पेट का बायाँ किनारा छीलती दूर जाकर गिरी उधर नकुल चारों खाने चित गिर गया।'

### वैवाहिक समस्याएँ

विवाह एक सामाजिक समझौता है, जिसमें पति-पत्नी पारस्परिक यौन-संबंधों को स्थापित कर संतानोत्पत्ति करते हैं। भारतीय समाज में पतिव्रत्य तथा एक पत्नीव्रत को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। प्राचीनकाल में पत्नी पूर्णरूपेण समर्पित होकर पति को ही परमेश्वर मानती थी। उसकी सेवा, इच्छापूर्ति ही उसके जीवन का उद्देश्य होता था। वह अपनी भावनाओं, इच्छाओं को महत्त्व न देते हुए, पति की इच्छाओं एवं भावनाओं को ही सर्वोपरि मानती थी। क्योंकि वह अपने अधिकारों से अनभिज्ञ थी। ऐसी ही स्त्री को पतिव्रता स्त्री कहा जाता था तथा उसे ही समाज में अत्यधिक सम्मान एवं गौरव प्राप्त था। नारी के लिए अनुसूया, सावित्री, सीता आदि के आदर्श प्रस्तुत किए जाते थे। इस प्रकार वैवाहिक जीवन सुचारू रूप से चलता था। किंतु आज नारी जागरूक होकर अपने अधिकारों को समझने लगी है। अपनी भावनाओं, इच्छाओं का दमन न करके उनके अनुरूप जीवन जीने लगी है। अब उसके लिए पति परमेश्वर न रहकर जीवनसाथी बन चुका है, जिसका उसके प्रति भी कर्तव्य बनता है। किंतु पुरुष का अहं इसे स्वीकार नहीं कर पाता। यही कारण है कि आज वैवाहिक जीवन में विभिन्न समस्याएँ पनपने लगी हैं।

### अंतर्जातीय विवाह की समस्या

मनु स्मृति में सामाजिक ढाँचे को बनाए रखने के लिए समाज को चार वर्णों में बाँटा गया। ये वर्ण कर्मानुसार थे न कि जन्मानुसार। इन्हीं वर्णों से शनैः-शनैः जातियाँ एवं उपजातियाँ विकसित होती गईं, धर्म एवं समाज के ठेकेदारों ने जातीय बंधनों पर अधिक बल दिया तथा जातीय-व्यवस्था का आधार कर्म न होकर जन्म बन गया। अपने हितों की रक्षा के लिए इन्हीं ठेकेदारों ने जातीय विवाह पर बल दिया। ब्राह्मण के लड़के की शादी ब्राह्मण की लड़की से तथा राजपूत के लड़के की शादी राजपूत की लड़की से आदि इसी प्रकार निश्चित की गई। इस परंपरा का पालन न कर दूसरी जाति के लड़के या लड़की से किए गए विवाह को अंतर्जातीय विवाह कहा जाता है। यद्यपि प्राचीनकाल में राजपूतों में यह परंपरा थी क्योंकि वे युद्ध में शत्रु कन्या को जीतकर उसके साथ विवाह किया करते थे अथवा अपहरण कर उसके साथ विवाह कर लेते थे। ऐसी में परिस्थिति में लड़की की जाति का कोई ख्याल नहीं किया जाता था। किंतु अन्य जातियों में जातीय बंधन कड़े थे। आज भी अंतर्जातीय विवाहों को न तो पूर्ण संरक्षण मिला है और न ही मान्यता। आनंदकुमार ने 'समाजशास्त्र का परिचय' में अंतर्जातीय विवाह को इस प्रकार परिभाषित किया है—

'हिंदुओं में अनेक उपजातियाँ हैं। उपजाति में विवाह करने को अंतर्विवाह कहते हैं और बाहर विवाह किया जाए तो उसे अंतर्जातीय विवाह कहा जाता है।'<sup>22</sup> इस प्रकार अनतराजातीय

विवाहों के कारण पारस्परिक वैमनस्य बढ़ता है तो साथ ही साथ लड़के-लड़की को हेय दृष्टि से देखा जाता है। समाज के भय से माता-पिता अपने बच्चों की खुशी एवं भावनाओं का ध्यान न रखते हुए, उन्हें अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति प्रदान नहीं करते। यदि बच्चे इस प्रकार के कदम उठाते हैं। तो सबसे पहले इस अंतर्जातीय विवाह का गहरा सदमा माता-पिता को लगता है तथा मानसिक आघात तो परिवार के प्रत्येक सदस्य को लगता है। 'उनके हिस्से का विश्वास' में कबीर और कविता का विवाह अंतर्जातीय से इस बात को उजागर करवाया है कि कविता और कबीर का विवाह प्रेम विवाह है—'किस बात को लेकर हम इतने खुश थे अब तक? किसलिए मदद करना चाहते थे इसकी, क्या सिर्फ इसलिए कि इसने अंतर्जातीय, रुढ़िहीन, प्रेम विवाह किया था? तो क्या बहुत अच्छा काम किया था यह? क्या अब भी यह सोचने पर मैं दकियानूस ही समझा जाऊँ कि कविता ने भूल की? आखिर कबीर का इरादा क्या है? क्या योजना है इनकी?' <sup>23</sup>

#### पति-पत्नी के अन्तः संबंधों की समस्या :

वर्तमान समय में दांपत्य संबंधों के परंपरागत प्रतिमान में बहुत बदलाव आया है। प्राचीनकाल में पति एक पत्नीव्रत का पालन करता था तथा पत्नी भी केवल अपने पति को ही परमेश्वर मानती थी एवं सतीत्व धर्म का पालन करती हुई जीवन-निर्वाह करती थी। यदि पति किसी स्त्री के प्रति आसक्त हो सकता है तो पत्नी क्यों नहीं? अगर पति एक पत्नी निष्ठ नहीं है तो स्त्री एक पति के प्रति कैसे समर्पित रह सकती है? प्रस्तुत प्रश्न नारी के लिए अनिवार्य रूप से चिंतन का विषय बन गए हैं। पति-पत्नी के यौन-संबंधों की पवित्रता का गहरा रंग फीका पड़ चुका है। विवाह को एक समझौता मात्र समझा जा रहा है। विवाह यौन पिपासा को शांत करने का पर्याय नहीं रहा। अतः विवाहेतर यौन-संबंधों का प्रचलन सामान्य होता जा रहा है। इस प्रकार परंपरागत निष्ठा और आस्था का अंत लगभग समीप है। परंतु इन विवाहेतर यौन-संबंधों में पवित्रता नहीं है क्योंकि एक से अधिक यौन-संबंध स्थापित होने की स्थिति भी प्रायः बनी रहती है। आज नारी और पुरुष दोनों के मध्य सदाचार, पतिव्रत्य, एक पत्नीत्व आदि की परंपरागत नैतिक मान्यताएँ अस्तित्वहीन होती जा रही हैं और विवाह की अनिवार्यता भी प्रश्नचिह्न बनती जा रही है। ऐसी मर्यादाहीन स्थिति ने समाज से मुक्त यौन-संबंधों ने समाज को विकृत यौन-संबंधों को एवं अतियौनाचार को बढ़ावा दिया है। <sup>24</sup>

यौन-तृप्ति मानव जाति की प्राकृतिक आवश्यकता है। परंतु इस स्वाभाविक तृप्ति को शांत करने के लिए पारिवारिक तथा सामाजिक मर्यादाओं का पालन किया जाता है। पुरुष स्वाभाविक तौर पर एक से अधिक स्त्रियों से यौन-संबंध स्थापित करने की चेष्टा करता है। 'सुरेखा पर्व' उपन्यास में विनय और उसकी पत्नी विद्या की माँ के यौन-संबंध स्थापित हो जाते हैं। विद्या के गर्भवती होने के उपरांत उसकी माँ दामाद को प्रसन्न रखने के बहाने से अपनी अतृप्त और सुसुप्त वासना को शांत करती है। उपन्यास की नायिका के शब्दों में—एक दिन मैं विनय और मम्मी को कमरे में देखकर बाहर बरामदे में आ खड़ी हुई। मैंने उन्हें जिस हालत में देखा था उसे बयान नहीं कर सकती। मैं वह दृश्य देखने के लिए वहाँ न रुक सकी। <sup>25</sup>

विनय और उसकी सास के संबंधों में प्रगाढ़ता आ रही थी। सास अक्सर विनय को



आकर्षित करने के लिए छेड़छाड़ करने लगी। उपन्यास के नायक विनय के शब्दों में, 'इन बातों से मैं विद्या के प्रति उदासीन हो आया, साथ ही उसकी माँ के प्रति आकर्षित भी। उन्होंने भी अपनी तरफ से इसमें पूरा-पूरा सहयोग दिया। वे अक्सर मेरे साथ छेड़छाड़ करने लगीं। मैंने उनके साथ दो-चार बार एकाकार होने पर यह संदेह प्रकट किया कि विद्या वाला हाल हो गया तब क्या करेंगी। उन्होंने मुझे निश्चित कर दिया, यह कहकर कि उन्होंने ऑपरेशन कराया हुआ है और इसके बाद भी यदि कुछ हो जाए तो दस-बीस-बार यही प्रक्रिया करने से गर्भ अपने आप गिर जाता है। मैं आश्वस्त हो गया और उसके बाद दिन-ब-दिन मैं उनके प्रति अधिक आकर्षित हो गया।'<sup>26</sup>

उपन्यासकार वीरेन्द्र जैन स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि विवाहेतर यौन-संबंध पारिवारिक समस्या का एक प्रमुख कारण हैं। क्योंकि ऐसे संबंधों के कारण पत्नी अतृप्त और उपेक्षिता रह जाती है, जिसके फलस्वरूप उसमें कुंठा, वितृष्णा, जाग्रत होती है और पुरुष को उसकी प्रताड़ना भी झेलनी पड़ती है। प्रताड़ित पुरुष या स्त्री प्रतिशोध की भावना में बहकर अपनी गृहस्थी को नष्ट कर लेते हैं।

#### **विवाह-पूर्व यौन-संबंध :**

सामाजिक दृष्टि से विवाह की पवित्र रस्म संपन्न कर यौन-संबंध स्थापित करने को ही मान्यता मिलती है। किंतु विवाह-पूर्व स्थापित होनेवाले यौन-संबंध जहाँ सामाजिक विकृति का कारण बनते हैं, वही नारी के लिए बहुत भारी समस्या भी बन जाते हैं। विवाह-पूर्व यौन-संबंधों के अनेक कारण हैं, किशोरावस्था में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण, यौन-शिक्षा का अभाव, सह-शिक्षण संस्थानों में उच्च अध्ययन, कार्यालयों एवं प्रतिष्ठानों में स्त्री-पुरुष का साथ-साथ नौकरी करना आदि। भारतीय परिवारों में विवाह से पूर्व यौन-संबंधों का वर्जन है। यदि कहीं यही संबंध स्थापित हो जाते थे तो घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, परंतु वर्तमान में ये सभी धारणाएँ निर्मूल हो चुकी हैं। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप तो गर्लफ्रेंड एवं निर्मूल हो चुकी हैं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप तो गर्लफ्रेंड एवं ब्यायफ्रेंड का फैशन-सा चल पड़ा है। डा० रमेश देशमुख की धारणा है, 'नारी जागरण की प्रेरणा ने भी नारियों से स्वतंत्र एवं उन्मुक्त आचरण का मार्ग प्रशस्त किया है।'<sup>27</sup> इस प्रकार बननेवाले यौन-संबंध कभी-कभी नारी के लिए घातक सिद्ध होते हैं। विशेषकर उस अवस्था में जब वह गर्भ धारण कर लेती है। ऐसी स्थिति में या तो उसे घर से भागना पड़ता है या फिर आत्महत्या तक के लिए विवश होना पड़ता है। परिणामस्वरूप इन घटनाओं से संबंधित परिवारों में तनाव एवं विघटन की समस्या उत्पन्न होती है।

'व्यथा-कथा' उपन्यास की नायिका के शब्दों में, 'और पता नहीं कब यह गुनगुनाहट गीत बनकर मेरे होठों से फूट पड़ी। मैं गाती रहीं। कर्ण सामने बैठकर हथेली पर अपना चेहरा टिकाए मेरी ओर टकटकी लगाए देखता रहा और गीत सुनता रहा। जब वापस घर की तरफ चले तब मैं वो लाजवंती नहीं रह गई थी, जो कुछ देर पहले कर्ण के साथ यहाँ आई थी। मैं नहीं समझ पा रही थी कि यह अच्छा हुआ या बुरा। सच तो यह है कि मैं इसमें बुरा कुछ भी नहीं समझ पा रही थी।'<sup>28</sup>

विवाह-पूर्व बननेवाले यौन-संबंधों को सामाजिक मान्यता तो मिलती नहीं बल्कि ऐसे संबंधों के कारण स्त्री को कदम-कदम पर कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। विवाह-पूर्व यौन-संबंध प्रायः किशोरावस्था में पनपते हैं। किशोरावस्था में न तो विचारों की परिपक्वता होती है और न ही परिणामों की चिंता। किशोरावस्था में स्थापित हुए यौन-संबंध कभी-कभी प्रेम-विवाह में परिवर्तित हो जाते हैं किंतु ऐसे विवाहों को सामाजिक मान्यता न मिलने के कारण लड़के लड़की को कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। प्रायः देखा जाता है कि आर्थिक एवं मानसिक कठिनाइयों के चलते युवक, युवती को अकेला छोड़ भाग खड़ा होता है और उस बेचारी अभागिन को या तो मिलता है चकलाघर का रास्ता या फिर आत्महत्या का। वेश्याओं से जुड़ी सामाजिक समस्या का एक प्रमुख कारण इसी प्रकार के यौन-संबंध हैं।

‘परिवारवालों’ के उपायों पर अमलीजामें से और तो कुछ हासिल न हुआ एक बात जो अब तक परिवार के सब लोगों को ही मालूम थी अब जग-जाहिर हो गई। मेरा घर से बाहर निकलना दूभर हो गया और इन सबका नतीजा यह निकला कि एक तरफ तो मैं किसी भी तरह की मुक्ति पाने की मियाद से बाहर हो गई, दूसरी तरफ लोगों के ताने सुन-सुनकर मेरा भाई अनूप विक्षिप्त-सा हो गया। वह हरदम चिड़िचिड़ा रहने लगा। चाहे जिससे उलझने लगा। हमारे घर के चारों तरफ आवारा किस्म के लोग मडराने लगे। गोया यहाँ कोई चकला खुल गया हो। पहले तो अनूप उनसे लड़ता-झगड़ता रहा। पर फिर न जाने उनके तानों का असर हुआ या उनसे निबटने की मन-ही-मन कोई योजना बना ली थी कि वह उनकी संगत में जा मिला। वह उनसे निबट तो नहीं पाया, अलबत्ता मेरे देखते-देखते मेरा प्यारा-सा नाजुक-सा अनूप, इलाके के दरिंदे, समाज के नासूर गुंडों की पंक्ति में गिना जाने लगा।<sup>29</sup>

उपन्यासकार ने विवाह-पूर्व स्थापित यौन-संबंधों को अनेक सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं का कारण माना है। जैसे ‘व्यथा कथा’ उपन्यास की नायिका लाजवंती का भाई अनूप अपनी बहन के विवाहोपरांत के गुंडों से मिल जाता है और असामाजिक तत्त्वों का साथ देने लग जाता है। एक होनहार युवा समाज के लिए नासूर बन जाता है।

### विवाहेत्तर यौन-संबंध :

विवाह एक सामाजिक समझौता है, जो पति-पत्नी दोनों के विश्वास पर टिका रहता है। भारतीय समाज में पतिव्रत्य तथा एक पत्नीव्रत को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। पतिव्रत धर्म को तोड़कर पर-पुरुष-संबंध रखनेवाली महिला को तथा घर में पत्नी के रहते परस्त्री से संबंध रखने वाले पुरुष को सामाजिक अथवा नैतिक दृष्टि से हेय माना जाता है। विवाहेत्तर यौन-संबंध स्थापित करने के अनेक कारण हैं, जिनमें प्रमुख कारण नौकरीपेशा पति या पत्नी का लंबे समय तक दूर रहना, पति या पत्नी से अतृप्त रहना या प्रलोभन अथवा महत्वाकांक्षाएँ आदि। विवाहेत्तर यौन-संबंधों के कारण नारी को ही अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, क्योंकि पर पुरुष से संबंध स्थापित करनेवाली नारी के सामने कारण कुछ भी रहा हो, परंतु समाज उसे ही दोषी ठहराता है।

वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं, जो विवाहेत्तर यौन-संबंध को दर्शाते हैं। ‘सुरेखा पर्व’ उपन्यास में विद्या और विनय पति-पत्नी है। यती विनय

का मित्र है, जो विद्या पर आसक्त है तथा उनके यौन-संबंध भी स्थापित होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका के शब्दों में एक दिन मैं सीढ़ियों पर लुढ़क गई। मुँह से जोर से चीख निकली। यती घर में ही थे। वे दौड़े-दौड़े सीढ़ियाँ उतरकर आए। बिना मुझे उठने का मौका दिए गोद में उठा लिया और जाकर बिस्तर पर लिटा दिया। मुझे बड़ा संकोच अनुभव हो रहा था। चोट ज्यादा नहीं आई थी। घुटनों के बल गिरने से दोनों टखनों पर दर्द महसूस हो रहा था। वे तुरंत आयोडेक्स ले आए। मेरी साड़ी को उपर उठाकर एकचित हो पैर पर मलने लगे।

विद्या और यती के यौन-संबंध स्थापित होने के पश्चात् विद्या गर्भवती हो जाती है। परंतु विद्या विनय के भय से यती के सहयोग से गर्भपात करवा देती है। यती के शब्दों में, 'अगले दिन विद्या मेरे दफ्तर में आ पहुँची। उसने मुझे बताया कि उसके पेट में एक और जीव है, पर वह उसे जन्म नहीं देना चाहती। वह इस भ्रूण हत्या में मेरा सहयोग चाहती थी। उसे डर था कि गर हालात यही रहे और उसके कोई बच्चा हुआ तो कल को विनय और उसके घरवाले तरह-तरह की बातें बनाने से बाज नहीं आएँगे। मैं उनके सहयोग के लिए तैयार हो गया। अपने एक परिचित डाक्टर को मैंने पूरा किस्सा सुनाया। उन्होंने परिस्थिति को देखते हुए विद्या का गर्भपात करा दिया।

प्रस्तुत उपन्यास में विद्या अपने दांपत्य संबंधों के प्रतिमानों को अपनी विवशता और बेबसी के कारण परिवर्तित करती चित्रित की गई है।

'पार' उपन्यास में आदिवासी जीवन की कहानी है और इन आदिवासियों में विवाहेत्तर यौन-संबंध सामान्य-सी बात है। मुखिया की माँ अपने संबंध में और मुखिया के विवाहेत्तर यौन-संबंध के बारे में कहती है, 'देह की मंशा पूरी करती है तो मुखिया-माई की आसन डोल उठेगा। मुखिया के खेरे के कोप का भोग बनेगी। बिरादरी बाहर कर दी जाएगी।

यह सब मंजूर देह की ताप मिले तो

संकट यह कि ऐसा करेगा कौन? देह का ताप हरेगा कौन?

कौन है इस खेरे में ऐसा जन, जो उपतकर तपाए मुइया का तन मन।

ताप की चाह की मारी मुइया की देह जुड़ा-जुड़ा जाती है। हाड़-हाड़ काँपता है, अपना जन साथ दे तो चुपके से कोई उपाय भी करे। जड़ी-बूटी खाकर जनने से बचने और देह को ताप देने का जतन करे मुइया। जैसा वे करती हैं जिनका जन सिधार गया है कि जिन्हें किसी ने फिर से अपनी जनी नहीं बनाया।<sup>31</sup>

डा० वीरेंद्र सक्सेना ने विवाह पूर्व अथवा विवाहोत्तर यौन की अनुपयुक्तता सिद्ध करते हुए लिखा है, 'पति या पत्नी के काम संबंध यदि विवाह से पहले किसी से रह चुके हों अथवा विवाह के बाद किसी अन्य से विकसित हो जाते हैं यह स्थिति पति-पत्नी के संबंधों के लिए बड़ी घातक सिद्ध होती है।'<sup>32</sup>

विवाहेत्तर यौन-संबंध पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं के प्रमुख कारणों में से एक है। इस प्रकार के संबंधों को स्थापित करनेवाले विवाहित स्त्री अथवा पुरुष दो भागों में बँट जाते हैं। एक ओर उनका अपने परिवार के प्रति कर्तव्य होता है तो दूसरी ओर अपने साथी के प्रति। इस प्रकार वे किसी भी एक कर्तव्य का पालन करने में समर्थ नहीं हो पाते। साथ-ही-साथ लज्जा, सामाजिक अवेहलना का भय, परिवार के सदस्यों का भय उन्हें सामान्य

नहीं होने देता और असामान्य व्यक्ति दूसरों के लिए सामान्य कैसे हो सकता है। इस प्रकार उनके परिवार में उसकी असामान्य स्थिति के कारण तनाव तो बना ही रहेगा, जिसका परिणाम पूरे परिवार को भोगना पड़ता है।

#### निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि वीरेंद्र जैन एक यथार्थवादी लेखक हैं। उन्होंने यथार्थ के आइने से ही समाज को देखा है। लेखक जिस समाज में रहता है, उससे असंपृक्त नहीं रह सकता और विशेषकर यथार्थवादी लेखक। साहित्यकार साहित्य के माध्यम से ही विभिन्न समस्याओं यथा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि का चित्रण करता है। साहित्य का न केवल समाज से अपितु व्यक्ति के जीवन की समस्याओं से भी गहरा संबंध होता है। वीरेंद्र जैन ने भी अपने उपन्यासों में समाज में फैली समस्याओं—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक आदि का सजीव चित्रण किया है। उन्होंने परिवार को समाज की एक इकाई माना है तथा पारिवारिक समस्याओं को समाज की प्रमुख समस्या। भारतीय परिवारों के प्राचीन प्रतिमान बदल चुके हैं। परिवर्तनशीलता के फलस्वरूप पारिवारिक समस्याओं के अंतर्गत विघटन की समस्या प्रमुख समस्या है। कदाचित वृद्धाश्रम पारिवारिक विघटन की ही देन है। पारिवारिक समस्याओं के अंतर्गत नारी-विषयक समस्याएँ—जैसे नारी की स्थिति में परिवर्तन के कारण उत्पन्न पारिवारिक समस्याएँ नारी के मानसिक एवं दैहिक शोषण का परिवार पर प्रभाव तथा नारी के प्रतिशोध एवं आक्रोश से उत्पन्न पारिवारिक समस्या। इसी प्रकार पति-पत्नी के अंतःसंबंधों के बदलते प्रतिमानों से उत्पन्न समस्याएँ एवं विवाह-पूर्व अथवा विवाहेत्तर यौन-संबंधों के माध्यम से पति-पत्नी के पावन रिश्तों में पड़ी दरार से जन्मी पारिवारिक समस्याएँ अथवा विवाह से जुड़ी भिन्न-भिन्न पारिवारिक समस्याएँ आदि का निरूपण वीरेंद्र जैन के उपन्यासों में हुआ है।

पाश्चात्य भोगवादी, भौतिकवादी संस्कृति ने भारतीय परिवारों को झकझोर दिया है, क्योंकि आज न तो मर्यादाओं का महत्त्व रह गया है और न ही पारिवारिक रिश्तों तथा रिश्तों की पवित्रता का। इसी कारण भिन्न-भिन्न पारिवारिक विकृति सिर उठाएँ समाज की ओर लालायित नेत्रों से निहार रही हैं।

#### संदर्भ

1. रवींद्रनाथ मुकर्जी, समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ० 182
2. डा० धमेंद्र श्रीवास्तव, हिंदी उपन्यासों में सामाजिक विघटन, पृ० 11-12
3. हिंदी शब्द सागर, सं० श्यामसुंदर दास, पृ० 4880
4. सत्येंद्र त्रिपाठी, सामाजिक विघटन, पृ० 210
5. विद्याभूषण डी० आर० सचदेव, समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ० 272
6. विद्याभूषण, समाजशास्त्र के सिद्धांत, पृ० 272
7. पंचनामा, पृ० 17
8. वही, पृ० 17
9. वही पृ० 17
10. वही, पृ० 37

11. वही, पृ० 41
12. डा० आनंदकुमार, भारतीय समाज व संस्कृति, पृ० 138
13. पार, पृ० 13
14. वही, पृ० 13
15. वही, पृ० 19
16. डा० नीलम गोयल, स्वतंत्र्योत्तर हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव, पृ० 146
17. सुरेखा पर्व, पृ० 51
18. सबसे बड़ा सिपहिया, पृ० 24
19. पहला सप्तक, पृ० 166
20. वही, पृ० 167
21. डा० नीलम गोयल, स्वतंत्र्योत्तर हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव, पृ० 158
22. डा० आनंदकुमार, समाजशास्त्र का परिचय, पृ० 130
23. पहला सप्तक, पृ० 236
24. डा० नीलम गोयल, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी लेखिकाओं के उपन्यासों में अलगाव, पृ० 210
25. सुरेखा पर्व, पृ० 33
26. वही, पृ० 37
27. डा० रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिंदी कहानी में जीवन-मूल्य, पृ० 75
28. पहला सप्तक, पृ० 160
29. वही, पृ० 160
30. पार, पृ० 10
31. डा० वीरेंद्र सक्सेना, काम-संबंधों का यथार्थ और समकालीन हिंदी कहानी।

## भारतीय राजनीति में दलित चेतना

चंद्रप्रकाश शोधार्थी

एन०एम०एस०एन० दास कालेज, बदायूँ (उ०प्र०)

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ और ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया’ सरीखे उदात्त मानवीय एवं आदर्शवादी मूल्यों के उद्घोषक देश भारत और उसके समाज का विशाल हिस्सा सदियों तक अमानवीय भावनाओं, वर्णगत और जातिगत ऊँच या नीच की भावना, जातीय अहंकार और नियोग्यताओं के पाश में जकड़ा रहा है। कथित धर्मशास्त्रों तथा सामाजिक धार्मिक मान्यताओं के आधार पर उक्त अमानवीय मूल्यों को धर्मसम्मत एवं विधिसम्मत ठहराया जाता रहा है। मानवीय मूल्यों के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार के पक्षधर देश में ऐसे अमानवीय मूल्यों का निरंतर अस्तित्व में रहना, भारतीय समाज की विसंगतियों को उजागर करना है। जाति-प्रथा का विकास कब हुआ, इसकी कोई निश्चित एवं प्रामाणिक जानकारी नहीं है। ‘मनुस्मृति’ में जाति-प्रथा को संहिताबद्ध किया गया है। उस समय के समाज ने जाति-प्रथा को संस्थाबद्ध स्वरूप प्रदान किया। समय के प्रवाह के साथ यह भारतीय समाज में एक संस्कार के रूप में रच-बस गई।<sup>1</sup>

‘जिन जातियों के लोग सामाजिक असमानता, दमन और शोषण के शिकार हैं, वे दलित हैं।’<sup>2</sup> कहा जाता है कि ‘दलित’ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डॉ० अंबेडकर ने किया, परंतु वे पददलित शब्द का प्रयोग भी करते हैं।<sup>3</sup> शब्दकोश के अनुसार दलित का आशय है—दल + क्त = दलित अर्थात् टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ और दूसरा अर्थ खुला हुआ अर्थात् फैलाया हुआ।<sup>4</sup>

हट्टन ने इन्हें ‘एक्सटीरियर कास्ट्स’ (बाहरी जातियाँ) कहा है।<sup>5</sup> सन् 1891 में संपन्न जनगणना में ब्रिटिश हुकूमत ने अस्पृश्य जातियों के लिए सरकारी तौर पर ‘डिप्रेस्ड क्लासेज’ शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>6</sup> डॉ० अंबेडकर ने भी इन अशक्त जातियों के लिए इसी नाम का इस्तेमाल किया।<sup>7</sup> साइमन कमीशन के प्रतिवेदन 1931 की जनगणना और भारत शासन अधिनियम, 1935 में इन जातियों के लिए ‘शेड्यूलड कास्ट’ शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>8</sup> तदनुसार 1950 में लागू भारत के संविधान में उक्त नामकरण का ही समावेश किया गया है।<sup>9</sup> गांधी जी ने उक्त जातियों को ‘हरिजन’ नाम से संबोधित किया है।<sup>10</sup>

भारतवासियों को परास्त करने के लिए कितने ही विदेशी आक्रमण हुए, जैसे तुर्क, मंगोल, मुगल, हूण, अँग्रेज़, पारसी व फ्रांसीसी आदि। वे अपने रीति-रिवाजों को किसी ग़रीब दलित, आदिवासी पर लागू नहीं कर सके और ये लोग अपनी आन और मर्यादा पर मिटने को तैयार रहे, लेकिन झुके नहीं।

इतिहास का कोई युग ऐसा नहीं हुआ, जब इस व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष न हुआ हो। इस अर्थ में भगवान बुद्ध पहले महान क्रांतिकारी थे, जिन्होंने कुछ सीमा तक ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने एक सीधे-सरल धर्म की शिक्षा, जिसमें आचरण की शुद्धता पर बल दिया।<sup>11</sup>

‘बौद्धधर्म ने एक नवीन समाज-सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उसके समाज-दर्शन में स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के मूल्यों को सर्वोच्च स्थान दिया गया। बौद्धधर्म ने समतावादी, जनतांत्रिक समाज-व्यवस्था की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाया। उसने मानवतावादी आध्यात्मवाद का प्रचार किया और सामाजिक गत्यात्मवाद के दर्शन के तत्त्वों को पूर्ण मान्यता दी।’<sup>12</sup> आधुनिक युग में दलित चेतना के सशक्त प्रहरी डॉ॰ अंबेडकर ने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित त्रिसिद्धांत को बौद्धधर्म से ही ग्रहण किया था। इस प्रकार एक विषमतामूलक धर्म के प्रतिवाद में समतामूलक बौद्धधर्म की स्थापना अपने वास्तविक अर्थों में दलितचेतना के उद्भव की दिशा में मील का पत्थर है।

दलित-चेतना की दिशा में प्रयासरत समाज-सुधारकों को ईसाई मिशनरियों से अत्यधिक प्रेरणा मिली। दलित-चेतना की दिशा में न केवल दलित-समुदाय के नायकों ने ही योग दिया है, वरन् 18 वीं व 19 वीं सदी के महान सुधारक राजा राममोहन राय, आर्यसमाज के प्रवर्तक व स्वराज्य के सर्वप्रथम उद्घोषक स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद और बीसवीं सदी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी रचनात्मक क्रांतिकारी पहल की है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वर्ण-व्यवस्था पर अनेक जातियों और उपजातियों में विभाजित हिंदू-समाज को पुनः संगठित करने का प्रयास किया। आर्यसमाज ने ‘शुद्धि आंदोलन’ के माध्यम से पूर्व में मुसलमान और ईसाई बन गए दलितों को पुनः हिंदूधर्म में प्रवेश दिलाया। आर्यसमाज ने दलितों में चेतना जाग्रत करने का उल्लेखनीय कार्य किया। ‘आर्यसमाज ने हिंदूधर्म को उत्तरकालीन भ्रष्ट तत्त्वों से मुक्त कराते हुए तथा वेदों को अत्यंत उदारता से ग्रहण करके उनकी ओर पुनः लौटते हुए हिंदूधर्म को सुधारने का प्रयास किया तथा उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।’<sup>13</sup>

महात्मा ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की, जिसके द्वारा उन्होंने बालिका शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया और बालिका विद्यालयों की स्थापना की। उन्होंने जाति-प्रथा और अस्पृश्यता का विरोध करके दलितों में राजनीतिक चेतना जाग्रत की। इस दलित-चेतना के परिणामस्वरूप ही ब्रिटिश शासन ने भी सन् 1833 में दास-प्रथा को एक अधिनियम द्वारा समाप्त कर दिया था, सन् 1943 में पूरे भारत में दासता को अवैध घोषित कर दिया, क्योंकि ब्रिटिश शासन भी किसी संभावित खतरे को मोल लेना नहीं चाहता था।

दलित जातियाँ, जिन्हें तब ‘डिप्रेस्ट क्लासेज’ नाम से संबोधित किया जाता था, राजनीतिक शक्ति के रूप में 1930 ई॰ में डॉ॰ अंबेडकर के नेतृत्व में उभरकर सामने आईं, जो हिंदूवाद एवं ब्राह्मणवाद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने यह महसूस किया कि दलित जातियाँ अपनी नियोग्यताओं से छुटकारा केवल हिंदुओं के समान अधिकार प्राप्त होने पर ही पा सकती हैं। अंबेडकर इन जातियों को मुख्यतः राजनीतिक शक्ति प्रदान करने के पक्ष में थे, इसी वजह से पूना पैक्ट में इन जातियों की जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित रखने का प्रावधान किया गया।<sup>14</sup>

डॉ० अंबेडकर ने अपने अनुभव में यह पाया कि आज हर क्षेत्र की धुरी राजनीति बन गई है। प्रायः जो जाति, वर्ग परिवार और व्यक्ति किसी भी प्रकार से राजनीतिक रूप से एक बार तनिक सा भी आगे बढ़ जाता है तो फिर उसकी पृष्ठभूमि स्वतः सुदृढ़ हो जाती है। यह पहचानकर ही डॉ० अंबेडकर ने दलितों में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के लिए दलितों का नेतृत्व किया और वोट के मूल्य को पहचानते हुए दलितों को संगठित बनने की सलाह भी दी। इस संदर्भ में डॉ० अंबेडकर ने अँग्रेज़ सरकार से आवास योग्य भूमि लेकर दलितों को टुकड़ों में रहने के बजाय एक साथ बसने, समूह में रहने की सलाह दी थी।<sup>15</sup>

बाबू जगजीवनराम जी का कहना था कि 'स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद मैंने सोचा था कि देश में एक सामाजिक क्रांति होगी, लेकिन इस क्रांति में केवल कुर्सी पर बैठने वाले बदले गए, उनके नाम बदल गए। कहीं उदारवादी और कहीं उग्रवादी भारतीय इन विचारों से सहमत हैं परंतु उनमें से अधिकतर अपना चित्र उभारने की कोशिशों में लगे हैं या केवल अपने को लाभ पहुँचाने के फेर में हैं। मैं समझता हूँ कि निर्धनों, श्रमिकों और अछूतों की उपेक्षा अधिक दिनों तक नहीं की जा सकती है। हम यह दावा नहीं करते कि हिंदूधर्म व संस्कृति के एकमात्र संरक्षक हम ही हैं। हम तो केवल उतनी आशा करते हैं कि नगरों और गाँवों में हमारे साथ न्याय किया जाएगा। शिक्षा के प्रसार के बाद हमारी जनता अधिक जागरूक हो जाएगी। और उसे अपने अधिकारों का भी ज्ञान हो जाएगा। अपनी मान-मर्यादा के लिए यह बलिदान को भी तैयार है।' <sup>16</sup>

यद्यपि दलितों की राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में दलितों का जो उदय वर्तमान राजनीति को प्रभावित कर रहा है, उसका श्रेय संविधान के प्रावधानों को ही दिया जाएगा। यह दूसरी बात है कि आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सशक्त तथा वर्चस्व-प्राप्त जातियाँ किसी भी नैतिक अथवा अनैतिक प्रकार से दलितों के राजनीतिक वर्चस्व को तोड़ने में लगी हैं। उनकी कारगुजारियाँ आज भी इन सशक्तों की मानसिक विकृति को ही चिह्नित करती हैं।

अंबेडकर दलितों के मसीहा माने जाते थे और उनकी विरासत को आज्ञाद भारत में यदि किसी ने सार्थक मुकान तक पहुँचाया है तो वह बेशक काशीराम ही हैं। काशीराम ने अंबेडकर के मिशन को आगे चलाते हुए राजनीतिक सत्ता पर अपना ध्यान केंद्रित किया। दलित-आंदोलन ने उनके नेतृत्व में सीधे जुड़कर अपनी नई भूमिका तैयार की।<sup>17</sup>

काशीराम की कुछ बातें जो उनकी सामाजिक सोच का पता देती हैं, हमेशा याद रहेंगी। जैसे आरक्षण लेने वाले नहीं, बल्कि देने वाले बनो। उन्होंने दलित होने में गर्व व स्वाभिमान की भूमि की भी तलाश की। यह काशीराम की ही सोच का नतीजा है कि आज राजनीति सत्ता के लिए ब्राह्मण व अन्य वर्ग बहुजन समाज से सहयोग व सामंजस्य का आकांक्षी है। दलित समाज की यात्रा अब गुमनामों की ढलावदार घाटियों से निकलकर पठार की समतल ज़मीन पर आ चुकी है। ज्योतिबाफुले, डॉ० अंबेडकर व काशीराम की बदौलत दलित समाज यह कहने की स्थिति में तो आ गया है कि हक जितना तुम्हारा है, उतना ही हमारा है। अंबेडकर एक विजनरी थे। भारतीय राजनीति के ऐसे विचारक जिन्होंने दलितों के अतीत और भविष्य को लेकर काफ़ी सोचा-विचार था। काशीराम उस विजन से आगे जाकर उसे कार्यरूप में परिणत करने वाले सिद्ध हुए। अगर डॉ० अंबेडकर मार्क्स हैं तो काशीराम लेनिन हैं। डॉ०



अंबेडकर व काशीराम दलितों के वे प्रकाश-स्तंभ हैं, जिनकी रोशनी में इस आंदोलन को वहाँ तक जाना है, जहाँ उनके समाज का दलित होना इतिहास की बात हो जाए।<sup>18</sup>

आज स्थिति कतई बदल गई है। दलित समाज में आई राजनीतिक चेतना के बूते नित नए समीकरण बनते जा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण दलितों में शिक्षा, जागरूकता और राजनीतिक चेतना में बढ़ोत्तरी है, साथ ही संविधान के 73 वें संशोधन द्वारा स्थानीय निकायों में दलित ग्राम-प्रधानों से लेकर जिला पंचायत सदस्य तक हुए और उनमें एक उभार आया। उनके राजनीतिक स्तर का ग्राफ तेजी से ऊपर की ओर बढ़ा है। निश्चित रूप से यह ग्राफ ही दलित राजनीति के सुनहरे भविष्य की ओर संकेत कर रहा है।

आज के समय में दलित राजनीति सत्ता-समुदाय की सर्वाधिक ठोस और दृश्यमान अभिव्यक्ति है। जिस प्रदेश को भारत के प्रधानमंत्रियों की जननी कहा जाता रहा है, आज उसी प्रदेश में संवैधानिक पद पर दलित समुदाय की एक महिला का तीसरी बार मुख्यमंत्री पद पर आसीन होना बदले हुए दलित राजनीतिक चेतना के परिदृश्य का सूचक है। देश की आजादी के बाद दलित-चेतना का ऐसा प्रदर्शन इससे पहले नहीं हुआ था। दलित राजनीति जिसका प्रारंभ डॉ॰ अंबेडकर में दिखाई देता है, आज एक नए दौर में पहुँच चुका है। आज कोई भी वर्ग अथवा राजनीतिक दल खुले तौर पर उपेक्षा नहीं कर सकता है।

#### संदर्भ

1. संदीपसिंह चौहान : भारत में दलित चेतना—गांधी और अंबेडकर, भूमिका से, पृ० 1
2. जयप्रकाश कर्दम : हम दलित, सोशल एक्शन ट्रस्ट, पृ० 39
3. डॉ॰ चंद्रकुमार बरठे : दलित साहित्य आंदोलन, पृ० 68
4. वही, पृ० 67
5. जे॰एच॰ हर्टन : कास्ट इन इंडिया, पृ० 7
6. डॉ॰ पूर्णमल : अस्पृश्यता एवं दलितचेतना, पृ० 121
7. वही, पृ० 121
8. वही, पृ० 121
9. एस॰ रंगनाथ : कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, पृ० 166
10. हरिभाऊ उपाध्याय : बापू कथा (1920-48), पृ० 126, 127
11. पी॰वी॰ काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 12
12. डी॰आर॰ जाटव : भारतीय समाज एवं विचारधाराएँ, पृ० 67
13. ए॰एल॰ वाशम : अद्भुत भारत, पृ० 354
14. जी॰ डब्लू ब्रिग : द चमार लंदन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1920
15. डॉ॰ के॰के॰ रत्नू : जातिवादी और संवैधानिक संरचना, पृ० 284
16. आज के प्रश्न : राजकिशोर, भूमिका से
17. दैनिक जागरण, 6 दिसंबर 2006
18. वही, 6 दिसंबर 2006

□ ग्राम रज्जाकपुर  
पोस्ट अमरोहा ( जे॰पी॰ नगर )

## विवेकीराय के उपन्यासों में गाँव

डॉ० चंद्रशेखर तिवारी

प्रवक्ता हिंदी विभाग

अवधूत भगवान राम स्नातकोत्तर महाविद्यालय

अनपरा (सोनभद्र) उ०प्र०

ग्राम-जीवन के समर्पित लेखक डॉ० विवेकीराय के उपन्यासों में गाज़ीपुर जनपद के पूर्वी भाग, जिसे 'करइल' कहते हैं, की प्रस्तुति विविध कोणों से हुई है। उसके सालों-साल बदलते सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों को डॉ० राय ने अपने उपन्यासों में जीवंत बना दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् ग्राम-जीवन की रंगीनी एवं उसकी उठापटक को अंचल-विशेष के संदर्भ में प्रस्तुत कर फणीश्वरनाथ रेणु ने जिस सघन आंचलिकता को प्रस्तुत किया, उसे आगे चलकर डॉ० विवेकीराय ने और व्यापक आयाम दिया। ग्राम-स्वराज, पंचायत-चुनाव, चकबंदी, बिजली, सड़क, स्कूल, शिक्षा, अस्पताल, विकास की हकीकत आदि के सहज साक्षी उनके उपन्यास हैं। दलितों के चिर उपेक्षित जीवन को आधार बनाकर डायरी एवं रिपोर्टाज शैली में सन् 1967 में लिखे गए उनके प्रथम उपन्यास 'बबूल' से लेकर वर्ष 2003 में लिखी गई अधुनातन कृति 'देहरी के पार', जो शुद्ध आत्मकथात्मक शैली में लिखी गई है अर्थात् इस कृति में लेखक की आपबीती का ही प्रस्फुटन हुआ है, तक में 'गाँव' लेखक के हाथ से किसी भी दशा में छूटने नहीं पाया है। उसकी मजबूत डोर लेखक से सदैव बँधकर रहती है, जिसे वह क्षणभर के लिए भी असंपृक्त नहीं कर सका है। गाँव के प्रति कथाकार का यह लगाव, यह मोह उसके द्वारा सृजित हर उपन्यास में किसी-न-किसी रूप में अवश्यमेव देखने को मिलता है।

वैसे तो इन उपन्यासों में चित्रित गाँव वे कुछ खास गाँव, जिन्हें कथाकार ने गहराई से देखा, जीया एवं भोगा है, होते हुए भी अपने लक्ष्य-विस्तार के साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत के समग्र गाँवों का दिग्दर्शन कराते हैं। स्पष्ट है कि डॉ० राय ग्रामभित्तिक कथाकार हैं। एक ओर उन्होंने प्रेमचंद के ग्रामजीवन की परंपरा को आगे बढ़ाया तो दूसरी ओर 'करइल' अंचल की भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश को जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। यह आंचलिकता कथा-साहित्य में एक फैशन न होकर विशिष्ट पहचान और स्वतंत्र वस्तु एवं शिल्प के रूप में हिंदी-उपन्यासों में विकसित हुई है। इस अंचल की मिट्टी काली है। पानी पड़ने पर वह गीली और स्निग्ध व सोंधी हो जाती है। बाढ़ इस अंचल की त्रासदी एवं जीवन दोनों है। बीच-बीच में सूखे की मार भी झेलनी पड़ती है। अर्थात् इस क्षेत्र के रहने वाले लोग प्रायः अतिवृष्टि, अनावृष्टि और असमयवृष्टि का शिकार हुआ करते हैं। यह क्षेत्र प्रायः अर्सिचित है,

जिससे यहाँ के लोग सभ्यता व विकास की इस इक्कीसवीं सदी में भी आकाश की ओर देखने के लिए मजबूर हैं। बरसात के चार महीनों में यहाँ आवागमन के साधनों का अभाव रहता है। सड़कें, रास्ते, पगडंडियाँ सब जलमग्न हो जाते हैं। ऐसे में इन गाँवों का संपर्क बाहर की दुनिया से पूरे चार महीने के लिए कट जाता है। स्पष्ट है कि विकास की भाग-दौड़ में सड़कों की कमी के चलते यह क्षेत्र काफी पिछड़ गया है। लेकिन यह ध्रुव सत्य है कि विकास की दौड़ में यह क्षेत्र जितना ही पीछे रहा है स्वतंत्रता के लिए अपनी सर्वस्व आहुति देने में, अपना बलिदान देने में उतना ही आगे रहा है।

यहाँ का अभावग्रस्त सामंती जीवन, पिछड़ापन, दुख-दर्द, खेत-खलिहान, सभी विविध कोणों से जीवंत रूप में प्रस्तुत हुए हैं। चुनावी हिंसा, बदलते सामाजिक संबंध, उत्साहरहित पर्वोत्सव, मृतप्राय परंपरागत मान्यताएँ, लुप्त होती पुरानी खेती, नई खेती, राजनीतिक दलबंदी, विकास के नाम पर किसानों पर बढ़ता कर्ज तथा ग्राम-संस्कृति पर भारी पड़ती नगर-सभ्यता, उनके उपन्यासों में बहुत ढंग के साथ प्रस्तुत हुई है। अभाव और संघर्ष की भट्टी में तपना जैसे यहाँ के लोगों की नियति बन चुकी है और उस नियति का प्रदर्शन करना डॉ॰ राय का अभीष्ट। यदि यह कहा जाए कि डॉ॰ राय के उपन्यासों में करइल अंचल का दिल धड़कता है तो शायद कोई अत्युक्ति नहीं होगी और न ही कुछ अनुचित। स्पष्ट है कि डॉ॰ राय की कृतियों में निकट से देखा हुआ एवं भोगा हुआ सत्य अर्थात् स्वानुभूत सत्य ही अपने पूरे अनुभव व प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। डॉ॰ राय की रचनाओं में कहीं से कोई बनावट, काट-छाँट या दिखावट नहीं है। सब कुछ यथार्थ, हू-ब-हू एवं अनगढ़ है। यही कारण है कि आपकी रचनाएँ पाठक के मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में पूर्णतः सफल हैं।

गाँव की रग-रग से परिचित डॉ॰ राय के उपन्यासों में चूँकि करीब से देखी हुई एवं भोगी हुई स्थितियाँ ही अपनी संपूर्णता के साथ चित्रित हुई हैं, फलतः उनकी रचनाएँ, यथार्थ के धरातल के अत्यधिक सन्निकट होने के कारण, एक विशिष्ट रंग-गंध व स्वाद का बोध कराती हैं। इन गाँवों के ब्याज से कथाकार ने संपूर्ण भारत के स्वातंत्र्योत्तर गाँवों का दर्शन कराया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में 'करइल' अंचल स्थिति गाँवों के एक-एक कण को उसकी समग्रता के साथ अर्थात् उसके सुंदर एवं असुंदर दोनों रूपों को हू-ब-हू प्रस्तुत किया है। यानी वे उसकी दुर्बलताओं एवं सबलताओं (दोनों) को समान रूप से वर्णित करते हैं।

डॉ॰ राय ने कल्पना-लोक एवं हवाई वीथियों में विचरण करने वाले उन साहित्यकारों को जो गाँव से काफी दूर किसी बड़े शहर, नगर या महानगर में बैठकर अपने पुराने संस्कारों वश व अपने स्मृति-पटल को खंगालते हुए उससे निकले अवशिष्ट स्मरण के बल पर गाँव की एवं गाँवई जीवन की गाथा को गाने का असफल प्रयास करते हैं एवं अपनी संकुचित दृष्टि से गाँव का समग्र चित्रण न कर उसके किसी एक पक्ष को ही आधार बनाकर गाँव के वर्तमान स्वरूप के संदर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हैं और गाँव के (काल्पनिक) यथार्थ से लोगों को अवगत कराते हैं— गाँव के असली सत्य का दर्शन कराया है। चूँकि शहरों में बैठकर गाँव के ऊपर लेखनी चलाने वालों की दृष्टि एकांगी होती है, इसलिए उनके द्वारा किया गया गाँव का वर्णन भी एकपक्षीय होता है। ऐसी स्थिति में किसी को गाँव कुरूप, भद्दा व भद्दे दिखाई देता है अर्थात् उसका वीभत्स रूप ही केवल उन्हें दिखाई देता है, जिससे वे गाँव की अच्छाइयों

को नहीं देख पाते। फलतः गाँव उन्हें 'असभ्य' और भलेमानुष लोगों के न रहने लायक 'नरक' के रूप में दिखाई देता है। तो किसी को गाँव स्वर्ग से भी सुंदर दीखता है। ऐसे लोग गाँव की शस्य-श्यामला धरती, उसकी हरीतिमा, अमराइयों, गहन कुंजों, बाग-बगीचों, खेत-खलिहानों, सांस्कृतिक स्वरूप-मेलों, पर्वों, उत्सवों, त्योहारों आदि के रूप में उसे शिवत्व के करीब ले जाकर केवल उसके सुंदर पक्ष को ही देख पाते हैं और इस प्रकार की एकांगी दृष्टि के चलते उन्हें भी गाँवों का क्रूर रूप अर्थात् भयावह यथार्थ नहीं दीखता। ऐसे लोगों को इन ग्रामों में रहने वाले लोगों की भयावह गरीबी, अधनंगे, फटे चिथड़ों में लिपटे मांस के लोथड़ों, इकहरी हड्डी के ढाँचों, दुबली-पतली काया वाले जर्जर शरीरों, अन्न के अभाव में दम तोड़ते अर्थात् दाने-दाने के लिए मोहताज अन्नदाता (किसान), भूख से बिलबिलाते लोग, मजदूरों, श्रमिकों, शोषितों, दलितों व सदियों से पददलित, उपेक्षित व पग-पग पर लौंछित होने वाली नारी जाति के ऊपर हो रहे अत्याचारों, हिंसक वृत्ति के लोगों द्वारा इस वर्ग पर ढाए जा रहे जुल्मों, हताशा, कुंठा एवं हीन मनोग्रंथि के शिकार लोगों द्वारा आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध या ग़लत कार्यों, बुरी प्रवृत्तियों एवं नशे की तरफ तेजी से अग्रसर युवक-युवतियों, ग्रामीण समाज की भद्दगियों व कुरूपताओं, गाँव में निर्भय व स्वच्छंद विचरण कर रहे हिंसक मनोवृत्ति के नर-पिशाचों, चुनाव व चकबंदी की लपटों में जलते रिशतों, शिक्षा में बढ़ते माफियाओं के वर्चस्व, अस्पताल, बिजली, सड़क, स्कूल आदि की दुर्दशा, नगर सभ्यता के दुर्निवार आक्रमण की चपेट में मृतप्राय गाँवों की अस्मिता व सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप; यांत्रिक (नई) खेती के श्रमसाध्य व व्ययशील मकड़जाल में छटपटाते किसानों, सामंतवादी एवं शोषक मनोवृत्ति के लोगों द्वारा सताए जा रहे गरीबों, किसानों, मजलूम, बेबसों, बेसहारों, शोषितों की दारुण दशा, ख़तरे में पड़ी उनकी अस्मिता, उनकी बहू-बेटियों की आबरू (इज़्ज़त) के साथ हो रहे खिलवाड़; सफ़ेदपोशों व संभ्रांत लोगों के घृणित चेहरों, चोरी, डकैती, हिंसा, राहजनी, नकबजनी, उठाईगिरी, लंपटगिरि, पाँकटमारी, नंगई, हत्या, पेशे पर हत्या, स्मगलिंग, जुआ, शराब, गाँजा, अफीम, हीरोइन, ड्रग्स, चरस आदि में लिप्त लोगों; पुरानी पीढ़ी के लोगों की नई पीढ़ी के लोगों द्वारा अवज्ञा व उपेक्षा, गाँव के दमघोटू (गलाघोटू) वातावरण, लोगों के बीच बढ़ते स्वार्थ, ईर्ष्या, डाह, जलन आदि का स्वभाव; सुरसा की तरह मुँह फैलाए बेकारी, भोजन, वस्त्र, दवा, आवास जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जूझते लोग; रक्तबीज व बरसाती घास की तरह किसानों पर बढ़ते तमाम सरकारी व प्राइवेट कर्ज; बढ़ते लोग, सोसाइटी का ऋण, लगान, उनकी वसूली का दरिंदगीभरा तरीका, बढ़ते ब्याज, ब्लाक द्वारा किसानों के विकास-ट्यूबवैल, भैंस आदि-के नाम पर मिला हुआ धन और देने के नायाब तरीकों में पिसते ग्रामीण, मजदूर, किसान; अर्थाभाव में त्योहार न मनाने वाले लोगों की मजबूरी; दहेज न दे पाने की वजह से सुयोग्य व सुपात्र कन्या को किसी आवारा, कुपात्र या हमउम्र व्यक्ति के गले मढ़ने की पिता की विवशता; रात-दिन के कलहपूर्ण वातावरण; बात-बात में लाठी-डंडे की जगह निकलते कट्टे, बम व पिस्तौल आदि; लड़ाई-झगड़ा, मारपीट व फौजदारी आदि की बढ़ती प्रवृत्ति आदि हज़ारो-लाखों अन्यान्य समस्याओं को देखने की क्षमता नहीं होती और ऐसे ग्राम-मोहासक्त लेखक किसान को अन्नदाता एवं धरती को धरित्री के रूप में स्वीकार कर प्रणाम करते हैं तथा ग्रामों में रहने वाले लोगों को ग्रामदेवता एवं कलही (कहल मिजाज़) स्त्रियों को; उनकी

रोज-रोज की उबाऊ कच-कच को न देखकर मात्र त्याग व बलिदान की मूर्ति के रूप में यादकर; देवी की संज्ञा देते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि शहर में बैठकर गाँवों के ऊपर लेखनी चलानेवाले इन दोनों प्रकार के रचनाकारों की दृष्टि चूँकि एकांगी है, इसलिए इनमें से किसी की भी रचना में गाँव का समग्र चित्रण नहीं होता है। यही यह भी उल्लेखनीय है कि यथार्थ से परे, कल्पना एवं स्मृतियों पर आधारित होने के कारण इस तरह के रचनाकारों की कृतियाँ प्रामाणिकता व विश्वसनीयता से कोसों दूर होती हैं। फलतः उनकी रचनाएँ उस हद तक संस्पर्शी, हृदय-संप्रेष्य, प्रभावशाली, प्रामाणिक व विश्वसनीय नहीं बन पाती हैं। जिस हद तक डॉ॰ विवेकीराय की रचनाएँ बन सकी हैं। क्योंकि डॉ॰ राय ने गाँव के पक्ष-विपक्ष (भले-बुरे) दोनों रूपों को देखा है एवं उन्हीं (अनुभूत) सत्यों को अपने उपन्यासों में पूरी संजीदगी के साथ उकेरने का काम किया है। चूँकि डॉ॰ राय की रचनाएँ कल्पना-प्रसूत न होकर अनुभवजनित हैं। अर्थात् उन्होंने अपने उपन्यासों में उन्हीं घटनाओं को अपना वर्ण्य-विषय बनाया है, जिन्हें उन्होंने गहराई से देखा, जीया, भोगा एवं महसूस किया है। इसलिए यथार्थ के धरातल पर स्थापित होने व सत्य के अत्यधिक सन्निकट होने के कारण इनके उपन्यास अत्यधिक प्रामाणिक व विश्वसनीय बन पड़े हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ॰ राय और उनकी कृतियाँ (दोनों) अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करने में पूर्णतः सफल हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्राम जीवन को उसकी समग्रता के साथ यथार्थ के धरातल पर हू-ब-हू चित्रित करने के संदर्भ में प्रख्यात कथाकार डॉ॰ विवेकीराय का अवतरण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा-साहित्य में, सही मायनों में, एक युगांतर उपस्थित करता है। कहना असंगत नहीं होगा कि स्वातंत्र्योत्तर भारतीय ग्राम जीवन का यथार्थ रूप उनके उपन्यासों में उत्तरोत्तर निखार पर है, जिसके लिए हिंदी साहित्य उनका चिरऋणी है।

## महात्मा बुद्ध : विश्वशांति और मानवता की साक्षात् प्रतिमूर्ति

डॉ० रश्मि चतुर्वेदी

वरिष्ठ प्रवक्ता हिंदी विभाग  
महिला महाविद्यालय (परा०) किदवई नगर  
कानपुर (उ०प्र०)

अमन के अग्रदूत, शांति की प्रतिमूर्ति, मानवीय संवेदना के महामानव ऐसे प्रबुद्ध तथागत बुद्ध को मैं प्रणाम करती हूँ। कहते हैं कि सितारों के आगे जहाँ और भी हैं; तो आइए चलते हैं महात्मा बुद्ध की दुनिया में ... तो बात कहाँ से शुरू करूँ! पूर्णिमा से! सिद्धार्थ से! बुद्ध से! तथागत से! या फेंगुसई के लाफिंग बुद्धा से! बुद्धा गार्डन से! या फिर पोखरन के उस सफल परमाणु विस्फोट के गुप्त कूट कोड से जो परीक्षण के बाद पी०एम० को फोन पर संदेश रूप में कहा जाता है कि बुद्ध मुस्कराए। या फिर बुद्ध शरणं गच्छामि।

खैर, बुद्ध! जिसने बोध को प्राप्त कर लिया, जो ज्ञानवान, प्रज्ञावान हो गया, जिसका चैतन्य जाग्रत हो गया, जो प्रबुद्ध हो गया, जिसने वैराग्य की तुरिया अवस्था को प्राप्त कर लिया, जिसने राग-द्वेष, तृष्णा का अंत कर दिया ... वो है बुद्ध! जो दूसरों की चेतना को जाग्रत कर दे, प्रदीप्त कर दे, जो मार्गदर्शक हो, पथ-प्रदर्शक हो, जिसमें आत्मसाक्षात्कार कराने और करने की क्षमता हो, वह है बुद्ध यानी 'आत्मदीपोभव'! फिर आप उसे महात्मा कहें, महामानव कहें, युगपुरुष या धर्म प्रवर्तक कहें, या कोई भी नाम दें! वो है बुद्ध।

'बुद्धं शरणं गच्छामि।' महज एक वाक्य या कोई मुहावरा नहीं, अपितु विश्वशांति का शाश्वत संदेश व सूत्र है, जिसकी वर्तमान 21वीं सदी के ग्लोबलाइजेशन के दौर में सर्वाधिक प्रासंगिकता है। आज व्यक्ति की अपनी पहचान अस्मिता खोती जा रही है। आज मानव-समाज विज्ञान और तकनीक उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच चुका है और इस विकास ने मानव की दुरभिसंधियों को कुछ इस तरह से सुलझाया कि क्लोन से एक प्रतिरूप बनाते-बनाते, अमेरिका के ट्रांसजेंडर थामस बी०टी० ने एक कन्या को जन्म दे डाला। मंगलग्रह के रहस्यों को उन्मोचित करते-करते 'नासा' ने जीवन के लिए जल ढूँढ ही लिया। चाँद पर प्रॉपर्टी की खरीद-फरोख्त शुरू हो गई। संचार-क्रांति के तूफान ने सूचना के सारे तटबंध तोड़ दिए और इन सबके बीच में मानवीय संवेदना ने दम तोड़ दिया। दादा-दादी की कहानियों की जगह 'हैरी पॉटर' ने ले ली और देखते ही देखते 'ओल्ड हाउसिस' की संख्या में गुणात्मक वृद्धि हो गई। सिर्फ मोबाइल रिवोल्यूशन और डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू डॉट कॉम से ही नहीं बात बनती है। आज दुनिया

तालिबानी आतंकवाद से भयाक्रांत है, राष्ट्र युद्धरत होने को उन्मत्त हैं। परमाणु अस्त्रों की बाढ़ मानवता के विरुद्ध फिर से हिरोशिमा और नागासाकी दोहराने को खड़ी है। भौतिकता की अंधी दौड़ और भोगवादी संस्कृति का हिस्सा होने को मानव आज विवश है। इन परिस्थितियों में मानवीय संवेदना और मानव के जीवंत-जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखने का एक मात्र फार्मूला है—‘बुद्धिज्म’।

भय दुनिया के मिटने या माया संस्कृति के कलैंडर के खत्म हो जाने का नहीं, भय आतंक का है, जो दरवाजे पर आ खड़ा है। ऐसे भयाक्रांत रेगिस्तानी माहौल में शार्दूल भूमि की भाँति शांति प्रदान करता है— ‘बुद्धिज्म’। ‘ग्लोबल विलेज’ के अस्फुट छटपटाते विश्वबंधुत्व के स्वप्न को साकार रूप केवल और केवल बुद्ध की अहिंसा से उपजी शांति ही दे सकती है। वास्तव में निर्वाण का मंत्र है बुद्धिज्म। एक तरह का मूल्यबोध है। जीवन बोध है। एक पद्धति है। एक शैली है। एक लाइफ़ स्टाइल है। एक संस्कृति है। एक धर्म है। एक संकल्प है। एक दृष्टि है—बुद्धिज्म।

‘बुद्धिज्म’ एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है, जहाँ सबके लिए शांति हो, स्वतंत्रता हो, समानता हो और सम्मान से जीने की सुविधा हो। जहाँ हिंसा, उत्पीड़न, अत्याचार, आर्थिक व सामाजिक विषमता का कोई अर्थ नहीं होता, जहाँ मनुष्य होना ही पर्याप्त है। जो वर्ग, नस्ल, जाति, रंग, राष्ट्र की संकुचित सीमाओं से परे हो। जहाँ मानवता की जय हो। मानव की श्रेष्ठता व अनुगुँज हो। वो है बुद्धिज्म। ऋग्वेद में भी यही कहा गया है कि ‘नाहि मानुषातः श्रेष्ठतरः हि किंचित’ यानी मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

यूँ तो इकबाल ने कहा है कि ‘सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ता हमारा’<sup>1</sup> लेकिन ‘बुद्धिज्म’ की अपनी विशेषताएँ हैं और उन्हीं के कारण बौद्धधर्म भारत की सीमाओं में आबद्ध नहीं रहा, अपितु वह मध्य एशिया, उत्तर एशिया तथा दक्षिण एशिया को पार करके संपूर्ण विश्वपटल पर अपना प्रभाव छोड़ सका। आज उसी का परिणाम है कि बर्मा, थाईलैंड, श्रीलंका, चीन, जापान, इंडोनेशिया आदि में वह धर्म जीवित है, मान्य है और अधिसंख्य लोगों का स्वीकार्य धर्म है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका<sup>2</sup> द्वारा प्रदत्त तालिका के अनुसार बर्मा में 90 प्रतिशत, थाईलैंड में 79 प्रतिशत, सीलोन में 60 प्रतिशत, जापान में 62 प्रतिशत और चीन में 17 प्रतिशत लोगों का मान्य धर्म बौद्धधर्म है।

महात्मा बुद्ध के श्रीमुख से निकला एक-एक शब्द बुद्धिज्म के सिद्धांत रूप में परिवर्तित हो गया, उनके दिए हुए संदेश, आचरण और नियम बन पड़े और वे सिद्धांत आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व के मानव के लिए जितने उपादेय थे, व्यावहारिक थे, कल्याणकर तथा प्रासंगिक थे, आज 21वीं सदी के विकसित वैज्ञानिक-तकनीकी दृष्टि से उन्नत तथापि सामाजिक विषमताओं से विशृंखलित, भौतिक चकाचौंध से भ्रांत, विसंगतियों से आक्रांत मानवीय संवेदनाओं से प्रायः रिक्त हुए संसार के लिए भी उतने ही उपयोगी, लाभप्रद हैं। इसका मूल कारण यह है कि बुद्ध ने अपने चिंतन का केंद्र मानव को ही बनाया, वे उसी के दुखों से विचलित हुए, उसी के दुखों के कारण का अन्वेषण किया और उसी के दुख के निवारण का मार्ग खोज निकाला।

बुद्ध के सिद्धांतों की जो मूल संवेदना है, चेतना है, वह मानव-जाति के लिए

अत्यधिक व्यावहारिक होने के साथ-साथ संतुलित भी है। (बैलेंस ऑफ़ लाइफ़) एक मध्यम मार्ग। एक सरल सहज मार्ग। न लेफ़्ट, न राइट। न तो दक्षिणपंथियों की तरह एक्स्ट्रीम व्यू और न वामचेतना की तरह डल। केवल मध्यम मार्ग। इसका मुख्य कारण शायद यह था कि बुद्ध के पूर्व जो दो प्रमुख मार्ग प्रचलित थे ब्राह्मण व जैन धर्म। ये दोनों ही आत्मसंयम, आत्मनिग्रह, तप, जप, उपवास आदि को अत्यधिक रूप से अनुकरणीय मानते थे, जबकि दूसरा मार्ग चार्वाक का भौतिकवादी था, जिसमें खाओ, पीओ और सुख से जिओ। (ईट, ड्रिंक एंड बी मैरी) 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्'।<sup>3</sup> चार्वाक भौतिक सुख-भोग को ही जीवन का परम लक्ष्य स्वीकारते थे। महात्मा बुद्ध ने इन दोनों पंथों की अतिवादी सोच को नकार दिया और एक सामंजस्य रूप में मध्यम मार्ग को स्वीकार किया।

आप सभी जानते होंगे कि महात्मा बुद्ध के सिद्धांतों का संपूर्ण ताना-बाना चार आर्य सत्य में है— 1. दुख, 2. दुख का कारण, 3. दुख-निरोध, 4. दुख-निरोध-गामिनी प्रतिपदा। दुख—जन्म दुखकारक है, ज़रा दुखकारक है, व्याधि दुखकारक है। मरण दुखकारक है, वियोग दुखकारक है। दुखों का कारण है तृष्णा पुनः पुनः उत्पन्न होने वाली और अनेक विषयों में रमने वाली तृष्णा (जिसे बुद्ध कामतृष्णा, भावतृष्णा और विनाश तृष्णा कहते हैं) 'जिस प्रकार चाहें, कितनी भी जलधाराएँ आकर सागर में मिलती रहें, परंतु सागर कभी तृप्त नहीं होता, उसी भाँति विषय-भोग के द्वारा इंद्रियों की भी कभी संतुष्टि नहीं होती है।' <sup>4</sup> दुख निरोध—वैराग्य से उस तृष्णा का पूर्ण निरोध करना, त्याग करना उससे मुक्ति पाना ही दुख-निरोध है। बुद्ध की विशेषता यह है कि उन्होंने दुख उत्पन्न होने का कारण आत्मा अथवा प्रकृति को स्वीकार नहीं किया। अपितु, उनकी दृष्टि में तृष्णा ही समस्त दुखों के मूल में होती है, इसलिए उस तृष्णा को मूलतः उखाड़ फेंकने से ही दुख से मुक्ति संभव है। उस तृष्णा को नष्ट करने का उपाय ही 'अष्टांगिक मार्ग' ही दुख निरोधगामिनी प्रतिपदा नाम का चौथा आर्यसत्य है। दरअसल बुद्ध ने तृष्णा को दुख का मूल कारण माना है, जो निर्वाण में बाधक है, और जन्म के लिए उत्तरदायी।

'पुनरपि मरणं पुनरपि जन्मम् पुनरपि जननी जठरे शयनम्'

इस क्रम को, इस साइकिल को, जन्म-मरण के चक्र को तोड़ने के लिए तृष्णा के विनाश और निर्वाण-प्राप्ति में सहायक के रूप में उन्होंने अष्टांगिक मार्ग का विधान प्रस्तुत किया। अष्टांगिक मार्ग यानी सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। सम्यक् माने पूर्ण। व्यक्ति द्वारा इनका आचरण करने पर मानव पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

महात्मा बुद्ध जब सम्यक् दृष्टि, संकल्प और वचन की बात करते हैं तो इसका आशय उस दूरदृष्टि से है, जो प्रज्ञा का निर्माण करती है। अर्थात् विशुद्ध बुद्धि ही प्रज्ञा है, जो सम्यक् संकल्प लेने पर चेतना को प्रदीप्त करती है और अंततः चेतना ही कर्मबंधन से मुक्ति का मार्ग खोलती है। यानी मन, वचन और कर्म की त्रिविध प्रज्ञा ही, सम्यक् दृष्टि के साथ होने पर दुखों को नष्ट करती है। वर्तमान संदर्भ में सम्यक् दृष्टि से आशय मेरे अनुसार 'क्लीयर विज़न' से है यानी किसी भी घटना-प्रघटना पर अथवा मुद्दे पर आपकी स्पष्ट दृष्टि हो अर्थात् किसी भी निर्णय से पूर्व उसे तर्क-वितर्क की कसौटी पर कसा जाए और उसके पश्चात् कोई निर्णय या मत दिया जाए। जहाँ तक सम्यक् संकल्प की बात है, तो इसका अर्थ अपने लक्ष्य की प्राप्ति



से लिया जा सकता है जैसे अर्जुन को केवल मछली की आँख दिखाई दे रही थी। यानी 'उत्तिष्ठ! जाग्रत! प्राप्यवरान्निबोधत्' <sup>5</sup> कठोपनिषद् के इस वाक्य को विवेकानंद ने भी स्वीकार किया था। उठो! जागो! और लक्ष्य प्राप्त होने तक मत रुको। सम्यक् वाक् का अर्थ मिथ्या संभाषण से बचना है, क्योंकि अनर्गल बोलने वाला लोगों की श्रद्धा का पात्र न होकर महज वाचाल हो जाता है। 'बहुभाषिणः न श्रद्धदधाति लोकः' <sup>6</sup> अर्थात् जो बोलें उसे तोलकर सटीक बोलें! बुद्ध भी मृदु वचनों के हिमायती थे, क्योंकि कटुवचनों को भी हिंसा की श्रेणी में मानते थे। 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' <sup>7</sup> या 'ऐसी वाणी बोलिए मन का आपा खोय औरन को शीतल करे आपहुँ शीतल होय' <sup>8</sup> सम्यक् कर्म का अर्थ निष्काम कर्म से है, जिसमें कोई फल की इच्छा निहित न हो, क्योंकि इच्छा ही तृष्णा को जन्म देती है। कृष्ण ने भी गीता में निष्काम कर्म की बात की है, जैसा आप सभी को विदित है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचनः' <sup>9</sup>

सम्यक् आजीविका का अर्थ आज के संदर्भ में भले ही अकूत धन-संपदा से लोग जोड़ लें, या गिरते बढ़ते सेंसेक्स से जोड़ लें लेकिन काला धन काला ही होता है। बुद्ध के लिए सम्यक् आजीविका का अर्थ सिर्फ जीवन-यापन करने योग्य धन से था। उन्हें अवगत था कि अधिक धन वैराग्य के मार्ग को दुष्कर बनाता है। 'धनम मदाय' <sup>10</sup> देता है। अतः शुद्ध चित्त और श्रेष्ठ कर्म से जो प्राप्त हो, उतना ही पर्याप्त है—

साई इतना दीजिए जामे कुटुम समाय,  
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाए।

बुद्ध के लिए सम्यक् व्यायाम का अत्यधिक महत्त्व था। आज संपूर्ण संसार बहुत ही, हेल्थ कांसिअस है। फिटनेस के नए-नए फंडे प्रयोग में लाए जाते हैं। रामदेव के कपालभांटी और भ्रामरी प्राणायाम से लगाकर सिर्फ लंदन में ही योगा के चालीस स्कूल हैं। बुद्ध के सम्यक् व्यायाम को स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि उनका सम्यक् व्यायाम पतंजलि के कठिनतम योगसूत्र से न जुड़कर सहज मध्यममार्गी था, जिसमें खान-पान की शुचिता तक समाहित थी उन्हें मालूम था कि 'शरीर माध्यम, खलु, धर्म, साधनम्', <sup>12</sup> इसलिए उन्होंने बोधिवृक्ष के नीचे सुजाता से खीर खा ली थी, अत्यधिक तप और व्रत उनके सम्यक् व्यायाम के विपरीत था।

सम्यक् स्मृति का संबंध के लिए चित्त की एकाग्रता से है, क्योंकि मन बहुत चंचल होता है। वह बार-बार तृष्णा और मोह के कारण अस्थिर होकर इंद्रियों के वशीभूत हो जाता है। आधुनिक संसार में आज इतना तनाव और अवसाद व्याप्त है कि सभी साधु-संतों, बाबाओं, मठों, अखाड़ों में ध्यान बिक रहा है। बुद्ध की विपश्यना आज सर्वाधिक कारगर उपाय है। मनोरोगियों को ठीक करने में, बुद्ध का भावातीत प्रयोग सच्चे अर्थों में मानसिक विकारों से मुक्ति का माध्यम है। बुद्ध की सम्यक् समाधि की विशेषता यह है कि जब अष्टांगिक मार्ग के अन्य विषयों का निरंतर अभ्यास आचरण में उतरेगा तो वह वैराग्य की समाधि स्वयं लगेगी। ध्यान स्वयं घटता है। वह लगाया नहीं जा सकता और अंततः वह निर्वाण के मार्ग को खोलेगा। परंतु यह संपूर्ण प्रक्रिया सहज जीवन जीते हुए ही, विकारों से मुक्त होकर संभव है। 'साधो सहज समाधि-भली' <sup>13</sup> इस प्रकार अष्टांगिक मार्ग पर चलने से मन की जो संतुलित स्थिति

पैदा होती है, वही निर्वाण है। यानी राग-द्वेष से मुक्ति विकारों का अंत। स्थिर, समाधिस्थ।

बुद्ध का अति चर्चित 'पंचशील का सिद्धांत' <sup>14</sup> 'बुद्धिज्म' को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आज भी प्रासंगिक व समीचीन बनाए हुए है। यह सिद्धांत किसी धर्म, संप्रदाय, जाति, देश-काल के लिए निर्धारित नहीं है, वह तो सर्वकालिक, सर्वभौमिक, सर्वव्यापी है, जिसके मूल में 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' <sup>15</sup> की भावना विद्यमान है। शील का अर्थ है-आचरण। इसलिए बुद्ध ने आचरण की शुद्धता पर बल दिया है। आचरण निरंतर अभ्यास से ही संभव है और यही परिष्कृत सदाचरण ही अनुकरणीय हो जाते हैं। वर्तमान विश्व-पटल पर यदि सच्चे मायने में बुद्ध को फॉलो किया जाए तथा उनके दिखाए मार्ग व सिद्धांतों पर चला जाए तो निश्चित रूप से एक अकल्पनीय विश्व का निर्माण हो सकता है। 'विश्व मानुष' <sup>16</sup> यानी ग्लोबल मैन की कल्पना को मूर्तरूप में साकार करने की क्षमता सिर्फ बुद्धिज्म में है। सहज शब्दों में तो पंचशील हिंसा, अस्तेय (चोरी न करना) मिथ्या संभाषण, व्यभिचार और प्रमाद करनेवाले पदार्थों का निषेध मात्र है। परंतु 'वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति' <sup>17</sup> का शंखनाद करने वाली वैदिक ब्राह्मण पुरोहित धर्म संस्कृति के विपरीत, 'अहिंसा परमो धर्मः' <sup>18</sup> का विकल्प लेकर आए बुद्ध। शांति और करुणा के अग्रदूत तथागत ने जीवहत्या, पशुबलि, नरबलि का विरोध करते हुए 'जियो और जीने दो' <sup>19</sup> का संदेश लोककल्याण के लिए प्रस्तुत किया। (Live and Let others live) हिंसा-प्रतिहिंसा के समक्ष अहिंसा। कबीर में भी बुद्ध का इन प्रिंट देखा जा सकता है-

बकरी पाती खात है ताकी मोटी खाल।

जो नर बकरी खात हैं ताको कौन हवाला। <sup>20</sup>

बुद्ध का बड़ा ही चामत्कारिक व्यक्तित्व और आचरण था, इसीलिए मनुष्यों की हत्या कर उनकी उँगली काटकर माला पहनने वाला अँगुलीमाल जैसा भयाभय दस्यु भी उनकी करुणा-दृष्टि से सिंचित हुआ। <sup>21</sup> इसी प्रकार सम्राट अशोक का धम्म में यू-टर्न। हर्ष, कनिष्क और मिल्दिद की नीतियाँ, अकबर का दीन-ए-इलाही और सुलहकुल। बुद्ध की अहिंसा का अर्थ मनसा, वाचा, कर्मणा है। आज संपूर्ण विश्व में 'वाइल्ड लाइफ़ प्रोटेक्शन' का अभियान चल रहा है। दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण के लिए नित नए क़ानून बन रहे हैं। जिस संदेश को बुद्ध ने 2500 वर्ष पूर्व ही दे दिया था। गांधी ने बुद्ध के पंचशील को सही अर्थों में आत्मसात किया था। उनकी अहिंसा में एक मच्छर को मारना भी अपराध था, गोवध तो बहुत दूर की बात है। क्योंकि एक मच्छर आदमी को ... हिंसक बना देता है। फिर काले हिरण चिकारा को मारने का क्या अर्थ है? महज स्वाद के लिए।

आज विश्व में परमाणु अप्रसार (सी०टी०बी०टी०) निशस्त्रीकरण पर चर्चा हो रही है। यही तो बुद्ध का संदेश है, जिसकी आज आवश्यकता है। दलाई लामा के ग्लोबल पीस विज़न में भी बुद्ध ही समाहित हैं। तालिबानी आतंकवाद का सही तोड़ भी बुद्धिज्म है। बुद्धिज्म अपने-आपमें स्वयं सिद्ध हथियार है। एक क्रांति है। इसलिए बुद्ध शांति के अग्रदूत हैं, प्रतिमूर्ति हैं।

फ्रेंच रिवोल्यूशन (1789) का उद्घोष स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व में भी बुद्ध का ही संदेश झलकता है। अब बात चाहे अंबेडकर की दलित चेतना की हो या अब्राहम लिंकन की 'वाई द पीपुल्स, ऑफ़ दी पीपुल्स, फॉर दी पीपुल्स' की सोच या पं० नेहरू के पंचशील के सहअस्तित्व की, या गोर्वाचौव के ग्लासनोत्स और पेरिसत्रोइका की अथवा नेल्सन मंडेला

की अश्वेत क्रांति की या अश्वेत ओबामा के लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पण की। इन सभी में कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में बुद्ध और बुद्धिज्म की अस्फुट झलक दिखती है। इस प्रकार सच्चे अर्थों में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' की स्थापना बुद्धिज्म में समाहित है।

दार्शनिक रूसों का कथन 'Man is born free' की कल्पना बुद्ध ने बहुत पहले की थी। वह एक ऐसे विश्व मानुष की स्थापना करना चाहते थे, जो मिथ्या कर्मकांड, अंधविश्वासों, झूठी मान्यताओं और थोपी हुई वर्जनाओं की जंजीरों से मुक्त और स्वतंत्र हो। आज वर्तमान विश्व-पटल पर जिस ह्यूमन राइट्स की चर्चा जोरों पर है, उसकी बुनियाद भी बुद्ध ने ही रखी थी। वह शोषण, दमन, उत्पीड़न के सर्वथा विरुद्ध थे, उनके दरवाजे छोटे-बड़े, अमीर-गरीब और सभी जातियों के लिख खुले थे।

'दि फ्रीमेल यूनेक' की लेखिका जर्मन ग्रीयर लिखती हैं कि 'संसार की ज़्यादातर औरतें अब भी डरी हुई हैं, अब भी भूखी हैं, अब भी गूँगी हैं और धर्म द्वारा तमाम तरह की बेड़ियों में जकड़ी हैं, उनके चेहरे पर नकाबें हैं, मुँह में गुहारें। उनके अंग-भंग हैं, वे पिटी हुई हैं'<sup>22</sup> आधी आबादी का सच, अबला, नारी तुम केवल श्रद्धा हो, कहलाने वाली स्त्री आदि भी त्रसित है। उसके मानव-अधिकारों का सबसे अधिक उल्लंघन होता है, जबकि बुद्ध ने नारी को सम्मान, आदर और उसे संघ में नेतृत्व दिया था। बुद्ध ने अपनी माता गौतमी को भी संन्यास-मार्ग में दीक्षित किया'<sup>24</sup> (बुद्ध चरित्रम् 20/65) यशोधरा 'भिक्षुणी संघ की प्रधान बनी'<sup>25</sup> वैशाली की नगर वधू आम्रपाली पर भी बुद्ध की असीम कृपा हुई<sup>26</sup> (सेक्रेट बुक्स ऑफ़ द ईस्ट वाल्यूम 12)

इस प्रकार शांति के प्रतीक बुद्ध और बुद्धिज्म आज भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान भूमंडलीय विश्व में फैली हुई तमाम विसंगतियों और विभ्रान्तियों का अंत सिर्फ बुद्धिज्म में है। दरअसल, बुद्ध पर संगोष्ठी, वाद-विवाद, सेमीनार, चिंतन करना शायद बहुत ही आसान है। लेकिन बुद्ध के दर्शन, धर्म, उनकी शिक्षाओं और उनके आचरण को आत्मसात करना शायद उतना ही कठिन। बुद्धिज्म को सही अर्थों में समझकर अपने में उतारना है। ये सही है कि 'रोम वाज नाट बिल्ट इन ए डे' लेकिन विश्वशांति के लिए वह सुबह कभी तो आएगी, यह मानकर एक प्रयास तो किया जा सकता है। 'बुद्धः शरणं गच्छामि'।

## संदर्भ

1. इकबाल
2. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका भाग 10, पृ० 36
3. चार्वाक दर्शन, पृ० 4/17
4. अश्वघोष, सौंदरानंद 3/30
5. कठोपनिषद्
6. कालिदास (मेघदूत)
7. वही
8. कबीर (साखी)

9. गीता
10. संस्कृत वाङ्मय
11. संतवाणी
12. वही
13. कबीर ग्रंथावली
14. पी०वी० बापट (बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष)
15. वही
16. ऋग्वेद (अष्टमंडल)
17. वेद
18. बौद्धदर्शन
19. वही
20. कबीर वाणी (साखी)
21. सेक्रेटस बुक्स ऑफ़ ईस्ट वाल्यूम 13, पृ० 113
22. जर्मन ग्रीयर, दी फ़ीमेल यूनेक हिंदी अनुवाद, माधवी जोशी, राजकमल प्रकाशन, पृ० 10
23. प्रसाद
24. बुद्धचरित्रम् (20/65)
25. एनसाइक्लोपीडिया एशियाटिका वाल्यूम 2, पृ० 492
26. सेक्रेट बुक्स ऑफ़ द ईस्ट वैल्यूम 12, पृ० 32-33

## रामायण में प्रतिपादित इक्ष्वाकुवंश का इतिहास

डॉ० चित्रा जैन

संस्कृत विभाग

जे०वी० जैन कॉलेज, सहारनपुर (उ०प्र०)

रामायण में प्रतिपादित इक्ष्वाकुवंश के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है—

इक्ष्वाकुवंशी राम का इतिहासवृत्त रामायण में बड़े विस्तार के साथ वर्णित है। 'वाल्मीकि रामायण' की रामकथा भारत में सर्वविदित है। अनेक पाश्चात्य विद्वानों के मत में रामायण की रामकथा एक वास्तविक घटना न होकर रूपमात्र है, उसमें आर्यजाति द्वारा दक्षिण भारत की विजय का रूपकात्मक वर्णन किया गया है। कुछ विद्वानों का ऐसा भी मत रहा है कि राम और रावण के युद्ध का वर्णन वैदिक साहित्य के इंद्र और वृत्त के युद्ध वर्णन का ही एक नया रूप है। पर पाश्चात्य विद्वानों का यह मत अब पुराना पड़ गया है। अयोध्या के इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की सत्ता के संबंध में ऐतिहासिकों में मतभेद नहीं रहा है और प्रायः सभी इतिहासकार राम की कथा की सत्यता को स्वीकार करने लग गए हैं।<sup>1</sup>

वाल्मीकि रामायण में निबद्ध इक्ष्वाकुवंश के इतिहास को इतिहास न मानने की पाश्चात्य प्रवृत्ति कोई अनहोनी घटना नहीं है। परंतु ऐसा भी नहीं है कि सभी पाश्चात्य इतिहासकार हमारी परंपरा के अंधविरोधी ही रहे हों, कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने हमारी इतिहास-परंपरा को गहराई से सोचने की कोशिश की है और उसमें निहित इतिहास का सम्मान भी किया है। इसके साथ यह भी सब है कि हमारे इतिहास के बिखरे सूत्रों को बटोरने में जो एक अंध आस्था लेकर हम चल सकते हैं, वैसी आस्था की हम विदेशी लोगों से आशा नहीं कर सकते। किसी भी उलझनपूर्ण गुत्थी से वे कुछ ऐसे भी अटपटे निष्कर्ष निकाल सकते हैं, जिनकी हमारी इतिहास-परंपरा में कहीं कोई संभावना ही नहीं है।

इस तरह की इतिहास गुत्थियों से भटकाव होना एक पक्ष है, परंतु इतिहास के बिखरे हुए पन्नों को काल्पनिक कथाओं के जाल से निकालकर इतिहास का रूप देना दूसरा पक्ष है। मानव-जाति के इतिहास के प्रति लगाव रखने वाले पश्चिमी विद्वानों ने इस दिशा में साहसपूर्ण कदम बढ़ाए और इससे हम भारतीयों में भी राष्ट्रीय इतिहास चेतना जाग्रत हुई। वाल्मीकि रामायण में वर्णित सूर्यवंश की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए 'जीन फिजियोजैट' ने लिखा है—

भारतीय परंपरा प्राचीन राजवंशों में दो वंशों को सर्वोपरि मान्यता देती है—'सूर्यवंश' और 'सोमवंश'। 'विबस्वान्' के पत्र मनुर्वेवस्वत को सूर्यवंश का आदिपुरुष माना जाता है। इस वंश

में इक्ष्वाकु, निमि, सगर, अंशुमत्, भागीरथ, सुदास, दिलीप, रघु, अज, दशरथ और प्रमुख राजाओं की परंपरा मिलती है। राम रामायण का इतिहास नायक है, जो संभवतः ऋग्वेद कालीन 'सुदास' से ग्यारह पीढ़ी बाद अर्थात् लगभग 300 वर्षों के बाद हुआ।<sup>2</sup>

वाल्मीकि रामायण में वैवस्तु मनु के वंश की पूरी परंपरा का इतिहास तो नहीं मिलता है, केवल राम के इतिहास को ही प्रधानता दी गई है। परंतु प्रासंगिक रूप से रामायण में मनु से लेकर राम तक सूर्यवंश के राजाओं की वंशावली अवश्य रामविवाह के अवसर पर प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार की वंशावलियाँ हमारे अनेक पुराणग्रंथों तथा महाभारत में भी मिलती हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि इन वंशावलियों के नामों में कुछ अंतर भी मिल जाता है और कभी-कभी एक दो नामों की आवृत्ति भी। हम समझते हैं कि सहस्राब्दियों पुराने इतिहास की सभी पीढ़ियों के नामों को सुरक्षित रख पाना और उन्हें निश्चित कालतिथियों में बाँट पाना सर्वथा असंभव कार्य ही कहा जा सकता है। भारत जैसी प्राचीन सभ्यता वाले देश के राष्ट्रीय इतिहास के निर्माण में इतिहास भी इस तरह के मूल्यहीन ठठोरियों से चिपटकर काम चलने वाला नहीं है। यहाँ तो एक उदार दृष्टि से इतिहास को ऐसे रूप से सँजोना होगा, जिसमें राष्ट्रीय परंपराओं का विश्वसनीय पौर्वापर्य बना रहे और जिन राष्ट्र पुरुषों के ऐतिहासिक कार्य हमारे ग्रंथों में वर्णित हैं, उनका इतिहास में संग्रह किया जाए और वंशावलियों के शेष भाग को इतिहास के अवशेषों की तरह सुरक्षित कर दिया जाए। राष्ट्रीय इतिहास में उन्हीं की विस्तार से चर्चाएँ संभव हो पाती हैं, जिनके कुछ महान कार्य होते हैं। शेष नाम तो वंशावलियों में स्मृतिचिह्न की तरह से ही नत्थी रहते हैं।

वाल्मीकि रामायण में वैवस्तु मनु के वंश के राजाओं की सूची इस प्रकार मिलती है—

तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः,  
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुवैवस्वतः स्मृतः।  
मनुः प्राजपतिः पूर्वमिक्ष्वाकूच मनोः सुतः,  
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्।  
इक्ष्वाकोस्तु सुतः श्रीमान् कुक्षिरित्येव विश्रुतः,  
कुक्षेरथात्मजः श्रीमान् विकुक्षिरुदपद्यत।  
विकुक्षेस्तु महातेजा बाणः पुत्रः प्रतापवान्,  
बाणस्य तु महातेजा अनरण्यः प्रतापवान्।  
अनरण्यात् पृथुर्जज्ञे त्रिशंकुस्तु पुथोरपि,  
त्रिशंकोरभवत् पुत्रो धुन्धुमारो महायशाः।  
धुन्धुमारान्महातेजा युवनाश्वो महारथः,  
युवनाश्वसुतश्चासीन्मान्धाता पृथिवीपतिः।  
मान्धातुस्तु सुतः श्रीमान् सुसंधिरुदपद्यत,  
सुसंधेरपि पुत्रौ द्वौ ध्रुवसंधिः प्रसेनजित्।  
यशस्वी ध्रुवसंधेस्तु भरतो नाम नामतः,  
भारतात् तु महातेजा असितो नाम जायत।

वा०रा०, बा० 70.20-27

असितोऽल्पबलो राजा कालधर्ममुपेयिवान्,  
द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः।  
सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया,  
सह तेन गरेणैव संजातः सगरोऽभवत्।  
सागरस्यासमजजस्तु असमज्जादथांशुमान्,  
दीलोपोऽशुमतः पुत्रो दिलीपस्य भगीरथः।  
भगीरथात्ककुस्थश्च ककुस्थाच्च रघुस्थता,  
रघोस्तु पुत्रो तेजस्वी प्रवृद्ध पुरुषादकः।  
कल्माषपादोऽप्यभवत् तस्माज्जातस्तु शंखणः,  
सुदर्शनः शंखणस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्।  
शीघ्रगस्त्वनिग्नवर्णस्य शीघ्रस्य मरुः सुतः,  
मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदम्बरीशः प्रशुश्रुकात्।  
अम्बरीशस्य पुत्रोऽभूत् नडुपश्च महीपतिः,  
नडुपस्य ययातिस्तु नाभागस्तु ययातिजः।  
नाभागस्य बभूवाजः अजाद्दशरथोऽभवत्,  
अस्माद्दशरथाज्जातौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।

वा०रा०, बाल०, 70.20-43

इस वंशावली से यह तो पूरी तरह स्पष्ट ही है कि वाल्मीकि ने जिस वंश के इतिहास आख्यान को विषय बनाकर रामायण लिखी है, यह उस वंश की ऐतिहासिक परंपरा को आदिपुरुष से लेकर रामायण के नायक राम तक पुष्ट करती है। यह वंशावली न्यूनाधिक अंतर के साथ पुराणग्रंथों में भी मिलती है।

सूर्य से प्रवृत्त वैवस्वत मनु के इस लंबे राजवंश की ऐतिहासिक ख्याति पर प्रकाश डालते हुए सत्यकेतु विद्यालंकार लिखते हैं—

#### राज्य संस्था का प्रारंभ :

पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार पहला आर्य राजा वैवस्वत मनु था। उससे पहले इस देश में अराजक दशा थी। जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, वैसे ही बलवान लोग निर्बलों को नष्ट करने में लगे रहते थे। मत्स्य-न्याय की इस दशा से परेशान होकर लोगों ने मनु को अपना राजा चुना और उसके आदेशों का पालन स्वीकार किया। मनु आर्थिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित होकर राज्य-व्यवस्था में अपना सब समय लगा सके, इसके लिए प्रजा ने उन्हें अपनी पैदावार का छठा भाग देना स्वीकार किया। वैवस्वत मनु के इस प्रकार पहले पहल राजा बनने की बात न केवल पुराणों में, अपितु महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों में भी उपलब्ध होती है। इस अनुश्रुति का अभिप्राय शायद इतना ही है कि अराजक दशा से जब पहले-पहल राज्य-संस्था का विकास हुआ, तो मनु सर्वप्रथम राजा के पद पर अधिष्ठित हुए। संविदा (समय, ठहराव, इकरार) द्वारा राज्य-संस्था के प्रादुर्भूत होने की कल्पना अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी की है। प्राचीन ग्रीस तक में इस विचार की सत्ता थी।

### नव वंश का विस्तार :

राज्य-संस्था के प्रादुर्भूत हो जाने के बाद मनु आर्यों का पहला राजा बना। उसकी एक कन्या और आठ पुत्र थे। मनु ने अपने राज्य को अपने पुत्रों में बाँट दिया। उसके सबसे बड़े पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। वह मध्यदेश का राजा बना, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। इक्ष्वाकु द्वारा उस राजवंश का प्रारंभ हुआ, जो भारतीय इतिहास में ऐश्वकाकव, मानव या सूर्यवंश के नाम से विख्यात है। इसी वंश में आगे चलकर राजा दिलीप, रघु, दशरथ और राम हुए। मनु के एक अन्य पुत्र नेदिष्ट को पूर्व को और तिरहुत का राज्य मिला। इस वंश में आगे चलकर राजा विशाल हुआ, जिसने वैशाली नाम की नगरी बसाई। बौद्ध-युग में इस वैशाली की बहुत प्रसिद्धि हुई और यह लिच्छवि नाम के प्रसिद्ध क्षत्रियों की राजधानी बनी। इस नगरी के अवशेष उत्तरी बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के बसाढ़ नामक ग्राम में पाए गए हैं। मनु के एक अन्य पुत्र का नाम करूप था। उसके नाम से कारूप राज्य की स्थापना हुई, जो इस समय के बधेलखंड के क्षेत्र में विद्यमान था। मनु के एक अन्य पुत्र शर्याति ने दक्षिण में आधुनिक गुजरात की ओर अपने राज्य की स्थापना की। शर्याति के पुत्र का नाम आनर्त था। यह बहुत प्रतापी राजा था, इसी के नाम से उस देश का नाम ही आनर्त पड़ गया। आनर्त देश की राजधानी कुशस्थली या द्वारिका थी। वैवस्तु मनु के ये चार पुत्र-इक्ष्वाकु, नेदिष्ट, शर्याति और करूप चार बड़े और शक्तिशाली राज्यों से संस्थापक हुए। मनु के अन्य चार पुत्रों ने भी अपने पृथक् राज्य स्थापित किए, पर वे अधिक प्रसिद्ध नहीं हैं।

सूर्य-वंश के संस्थापक इक्ष्वाकु के भी अनेक पुत्र थे। उन्होंने भी अपने पृथक् राज्य स्थापित किए। उसका बड़ा लड़का विकुक्षि अयोध्या की राजगद्दी पर बैठा। इक्ष्वाकु के छोटे पुत्र निमि ने अयोध्या और वैशाली के बीच में एक अन्य राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी मिथिला थी। इस नगरी का नाम निमि के वंशज मिथि के नाम पर पड़ा था। आगे चलकर मिथिला के इसी वंश के राजा 'जनक' कहाने लगे थे।

पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार मनु के पुत्रों व वंशजों ने भारत के विविध प्रदेशों में अपने विविध राज्य स्थापित किए थे। पुत्र का अभिप्राय शायद वंशज से है। यह मान सकना तो कठिन है कि मनु के पुत्रों के समय में आर्य-राज्यों का पूर्व में वैशाली तक और दक्षिण में द्वारिका तक विस्तार हो गया था। पौराणिक अनुश्रुति का अभिप्राय शायद यह है कि मनु के वंशजों द्वारा इन सुदूरवर्ती प्रदेशों तक आर्यजाति के प्रभुत्व की स्थापना हुई थी। ऊपर दी गई अनुश्रुति में आर्यजाति के विजयों व विस्तार की वह स्मृति सुरक्षित है, जिसके कारण भारत के आदि-निवासियों या आइबीरियन (द्रविड़) लोगों को परास्त कर आर्य जाति ने अपना प्रभुत्व कायम किया था। संभवतः, वैवस्वत मनु उन आर्यों का नेता था, जिन्होंने भारत में प्रवेश कर इस देश में अपनी सत्ता को स्थापित किया था। इक्ष्वाकु, नेदिष्ट शर्याति और करूप मनु के बाद में हुए और उनके नेतृत्व में आर्यों का विस्तार सुदूरवर्ती प्रदेशों में हुआ। ये विजयी आर्य नेता भी मनु के वंशज थे, यह बात भी स्वीकार की जा सकती है।

### अयोध्या का सूर्य ( ऐश्वकाकव ) वंश :

वैवस्वत मनु के वंशज या पुत्र इक्ष्वाकु ने अयोध्या में अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की, यह हम ऊपर लिख चुके हैं। इक्ष्वाकु के उन्नीस पीढ़ी बाद उसके वंश में एक अत्यंत



प्रतापी राजा हुआ, जिसका नाम मान्धाता था। उसे पुराणों में 'चक्रवर्ती और सम्राट' कहा गया है। वह अपने समय का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। उसने पड़ोस के अन्य आर्य राज्यों को जीतकर दिग्विजय किया। उसके संबंध में पौराणिक अनुश्रुति में कहा गया है कि सूर्य जहाँ से उगता है और जहाँ अस्त होता है, वह संपूर्ण प्रदेश मान्धाता के शासन में था। जिन आर्य-राज्यों को जीतकर मान्धाता ने अपने अधीन किया, उनमें पौरव, आनव, द्रुह्यु और हैहय राज्यों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मान्धाता के बाद उसका पुत्र पुरुकुत्स अयोध्या का राजा बना। उसके समय में अयोध्या के सूर्य-वंश की शक्ति निर्बल पड़ने लगी। जिन अनेक राज्यों को मान्धाता ने जीतकर अपने अधीन किया था, वे धीरे-धीरे पुनः स्वतंत्र हो गए। पुरुकुत्स के ग्यारह पीढ़ी बाद (इक्ष्वाकु के इक्ष्वाकु पीढ़ी पीछे) राजा हरिश्चंद्र अयोध्या की राजगद्दी पर आरूढ़ हुआ। इसकी रानी शैव्या थी। संभवतः वह शिवि-वंश की राजकुमारी थी। हरिश्चंद्र बड़ा दानवीर था। उसकी कथा भारत में बहुत प्रसिद्ध है। अपना सर्वस्व दान करके वह एक चांडाल के घर दास बनकर रहा था। हरिश्चंद्र, रानी शैव्या और उनके पुत्र रोहित की कथा को कौन नहीं जानता? अयोध्या के ऐक्ष्वाक-वंश में आगे चलकर राजा दिलीप और भागीरथ हुए। वे भी मान्धाता के समान ही चक्रवर्ती सम्राट थे। गंगा नदी को हिमालय से उतारकर मैदान में लाने का श्रेय राजा भागीरथ को ही दिया जाता है। इसी के नाम पर गंगा की एक शाखा भागीरथी कहाती है। दिलीप का पोता रघु और भी अधिक प्रतापी हुआ। उसके दिग्विजय का विशद वर्णन महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक रघुवंश में किया है। रघु के नाम से प्राचीन ऐक्ष्वाक-वंश रघुवंश या राघव-वंश भी कहाने लगा। रघु का पुत्र अज था, और अज का पुत्र दशरथ। दशरथ का पुत्र राम था, जिसकी कथा भारत के बच्चे-बच्चे को ज्ञात है। राजा रामचंद्र ऐक्ष्वाक-वंश की 65वीं पीढ़ी में हुए। उनकी कथा को लेकर भारत के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य में जितने अधिक काव्य व ग्रंथ बने हैं, उतने शायद अन्य किसी कथा को लेकर नहीं बने।<sup>3</sup>

भारत के राष्ट्रीय इतिहास के पुनर्निर्माण की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए हमने उससे जुड़ी समस्याओं की भी इस अध्याय में पर्याप्त चर्चा की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे राष्ट्रीय इतिहास के अभी कुछ आदिम अध्याय सँजोए जाने आवश्यक हैं, उनके बिना हमारा इतिहास अधूरा लगता है। यह भी बहुत ही स्पष्ट है कि राष्ट्रीय इतिहास के पुनर्निर्माण की आधारशिला रामायण, महाभारत और पुराणों के सतर्क अध्ययन से ही रखी जा सकती है। भारत के राष्ट्रीय इतिहास के इस प्रकार से पुनर्निर्माण की आवश्यकता राष्ट्रीय इतिहास में अभिरुचि रखने वाले विद्वानों को लंबे समय से अनुभव हो रही है। इस प्रसंग में सत्यकेतु विद्यालंकार का यह कथन हमारी दृष्टि को पर्याप्त समर्थन और सही आधार देता है।

#### संदर्भ

1. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० 129
2. जीन फिलियोजैट, पोलिटीकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० 99-100
3. सत्यकेतु विद्यालंकार, भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० 101-103

□ पुरु-प्रांगण, 89, महावीर कॉलोनी  
चिलकाना रोड, सहारनपुर (उ०प्र०)

## निर्धनता : एक विश्वव्यापी समस्या

डॉ० विश्वनाथ पांडेय

प्रवक्ता अर्थशास्त्र विभाग

राजकीय महाविद्यालय, मानिला (अल्मोड़ा) उत्तराखण्ड

आज के युग में निर्धनता एक अभिशाप है। यह जीवन का सबसे बड़ा न किया हुआ ऐसा अपराध है, जिसकी सज़ा बेगुनाह व मजलूम इंसान को भुगतनी पड़ती है। मानव-जाति का सबसे बड़ा और क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि विधाता की बनाई हुई इस धरती पर एक तरफ़ सुख-संपन्नता, भोग-विलास व ऐशो-आराम अपनी पराकाष्ठा पर है तो दूसरी ओर करोड़ों अभागे इंसान ज़िल्लत, भूख और ग़रीबी के दुख से पीड़ित हैं। जालिम और जाहिल लोग इसे तक्रदीर का नाम देते हैं और मजलूम इंसान इसे अपनी बेबसी मानता है। अगर यह सच है कि भाग्य-विधाता ने इंसान के पुतले में जान डालते वक्त उसके हाथ की लकीरों के साथ मनचाहा खिलवाड़ किया, तो इंसानों की इस धरती पर बसने वाली इंसानियत का यह तकाज़ा है कि भाग्य की इन विषमताओं को हमेशा-हमेशा के लिए मिटा दिया जाए।<sup>1</sup>

विश्व बैंक की रिपोर्ट 2000 के अनुसार, 1998 में विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का एक-तिहाई भाग निर्धनता-रेखा से नीचे था और इनकी लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या अति निर्धन थी। निर्धनता-रेखा का आधार ग़रीबों के लिए 370 डालर प्रति व्यक्ति वार्षिक और अति ग़रीबों के लिए 275 डालर माना गया। अल्पविकसित देशों में कुल जनसंख्या के निम्नतम 40 प्रतिशत परिवारों के जी०एन०पी० का औसत 14 प्रतिशत भाग और उच्चतम 20 प्रतिशत परिवारों को जी०एन०पी० का 47 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। विकसित देशों के लिए यह अनुपात क्रमशः 18 तथा 41 है। इससे एक बात स्पष्ट है कि ग़रीबी और आय-विषमताएँ विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान हैं। हाँ, उसकी गहनता विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक है। उल्लेखनीय बात यह है कि धन तथा निर्धन देशों की प्रति-व्यक्ति आय में निरपेक्ष अंतर अधिक तेज़ी से बढ़ा है और यह लगातार बढ़ने की प्रवृत्ति बनाए है।<sup>2</sup>

अक्सर यह माना जाता है कि वे लोग ग़रीब हैं, जो एक निश्चित न्यूनतम उपभोग का स्तर प्राप्त करने में असफल रहते हैं।<sup>3</sup> मोटे तौर पर निर्धनता से तात्पर्य उस अवस्था से है, जब समाज का एक वर्ग अपने जीवन, स्वास्थ्य एवं कार्यकुशलता के लिए आवश्यक न्यूनतम उपभोग की आवश्यकताओं को पूरा करने में अपने को असमर्थ पाता है।<sup>4</sup>

भले ही भारत विश्व के निर्धनतम राष्ट्रों में पंक्तिबद्ध न किया जाए, लेकिन यह सच है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या आज भी निम्नतर ज़िंदगी बसर कर रही है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों जैसे बी०एम० मिन्हास, ए० वैद्यनाथन, पी०के० वर्धन, दांडेकर व रथ, एम०एस०

अहलूवालिया, पी०डी० ओझा, डी० कोस्टा, योजना आयोग तथा विश्व बैंक द्वारा किए गए सर्वेक्षण देश में व्यापक दरिद्रता का संकेत देते हैं। योजना आयोग द्वारा गठित 'Task force on Minimum Needs and Effective Consumption Demand' की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में एक व्यक्ति के प्रतिदिन के भोजन में 2100 कैलोरी होनी चाहिए। आहार-संबंधी इन जरूरतों को ध्यान में रखकर 1979-80 की कीमतों पर, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी-रेखा 76 रु० तथा शहरी क्षेत्रों में 88 रु० होती है।<sup>5</sup> केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय की घोषणानुसार गरीबी-रेखा अब विभिन्न राज्यों में 13900 रुपए से 16900 रुपए वार्षिक तक होगी। पाँच सदस्यों वाला परिवार यदि अपने संबंधित राज्य के लिए निर्धारित आलोच्य धनराशि से कम वार्षिक आय प्राप्त करता है, तब वह गरीबी-रेखा के नीचे माना जाएगा।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा जुलाई, 1999 से जून 2000 के बीच किए गए सर्वेक्षण के आधार पर वर्ष 1999-2000 के लिए योजना आयोग द्वारा जारी नवीनम आँकड़ों के अनुसार देश में निर्धनता 26.1 प्रतिशत आकलित किया गया है, जो 1993-94 में 36 प्रतिशत था। इस प्रकार देश में निर्धनता अनुपात में विगत 6 वर्षों में 10 प्रतिशत बिंदु की प्रभावपूर्ण कमी दर्ज की गई है।<sup>6</sup>

भारत में गरीबी के नवीनतम आँकड़े योजना आयोग द्वारा फरवरी 2001 में जारी किए गए। देश में गरीबी-रेखा के नीचे रहनेवाली जनसंख्या का प्रतिशत वर्ष 1999-2000 में 26.1 प्रतिशत रहा, जबकि 1993-94 में यह 35.97 प्रतिशत के ऊँचे स्तर पर था। ताजा आँकड़ों के अनुसार 1999-2000 में ग्रामीण क्षेत्रों में यह गरीबी प्रतिशत 27.09 तथा शहरी क्षेत्रों में 23.62 प्रतिशत रहा, जबकि 1993-94 के आकलन में यह प्रतिशत 37.3 प्रतिशत तथा 32.4 प्रतिशत था। निरपेक्ष संख्या की दृष्टि से कुल 26.02 करोड़ आबादी 1999-2000 में गरीबी-रेखा से नीचे थी, जिसमें 19.32 करोड़ व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 6.70 करोड़ व्यक्ति शहरी क्षेत्रों में थे। 1992-94 में यह संख्या क्रमशः 24.40 करोड़ तथा 7.63 करोड़ थी।

#### भारत : निर्धनों की संख्या व निर्धनता अनुपात

वर्ष	निर्धनता का अनुपात (प्रतिशत में)			निर्धनों की संख्या (करोड़ में)		
	शहरी	ग्रामीण	संपूर्ण भारत	शहरी	ग्रामीण	संपूर्ण भारत
1973-74	49.0	56.4	54.9	6.0	26.1	32.1
1983-84	40.8	45.7	44.7	7.1	25.2	32.2
1993-94	32.4	37.3	36.0	7.6	24.4	32.0
1999-2000	23.6	27.1	26.1	6.7	19.3	26.0
2004-2005	21.7	21.8	21.8	6.8	17.0	23.9

राज्यानुसार निर्धनता-अनुपात के मामले में स्थिति स्पष्ट है कि सभी राज्यों में गरीबी का फैलाव तथा गहनता एक समान नहीं है। जहाँ कुछ राज्यों में निर्धनता में गिरावट काफी तेज़ दर से हुई है, वहीं अन्य राज्यों में यह दर काफी धीमी रही है। राज्यों में निर्धनों की सर्वाधिक

संख्या (5.90 करोड़) उत्तर प्रदेश में है, जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में 4.73 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 1.17 करोड़ निर्धन 2004-05 में दर्ज किए गए। दूसरे स्थान पर बिहार में 3.69 करोड़ (ग्रामीण क्षेत्रों में 3.37 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 0.32 करोड़) निर्धन इन आँकड़ों में बताए गए हैं। निर्धनों की निरपेक्ष संख्या छत्तीसगढ़ में 90.96 लाख, हरियाणा में 32.10 लाख व पंजाब में 21.63 लाख आकलित की गई है।

निर्धनों की निरपेक्ष संख्या के मामले में उत्तर प्रदेश का स्थान जहाँ सबसे ऊपर है, वहीं निर्धनता-अनुपात के मामले में (कुल जनसंख्या में निर्धन जनसंख्या के प्रतिशत के मामले में) उड़ीसा का स्थान सर्वोच्च है। वहाँ 46.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। बिहार में 41.4 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 40.9 प्रतिशत, झारखंड में 40.3 प्रतिशत व उत्तर प्रदेश में 32.8 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे है। नीचे निर्धनता अनुपात वाले राज्यों में असम (19.7 प्रतिशत), केरल (15 प्रतिशत), दिल्ली (14.7 प्रतिशत), हरियाणा (14 प्रतिशत), गोआ (13.8 प्रतिशत), हिमाचल प्रदेश (10 प्रतिशत), पंजाब (8.4 प्रतिशत) व जम्मू-कश्मीर (5.4 प्रतिशत) शामिल हैं।

यद्यपि भारत में नियोजित विकास का मूल उद्देश्य लोगों के जीवन-स्तर और आर्थिक कल्याण में वृद्धि करना रहा है, किंतु ऐसा संभव नहीं हो सका। पूरे आयोजन काल में प्रतिव्यक्ति (एन०एन०पी०) 1.9 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ी, (स्रोत : Economic Survey 1999-2000; Tata Diary 1999-20000, P 8) जबकि प्रति-व्यक्ति उपभोग 2.3 प्रतिशत की दर से बढ़ा। इस संबंध में कुछ सामान्य निष्कर्ष इस प्रकार है—

- अल्प विकास दर से जनता की गरीबी दूर नहीं हो सकती।
- प्रतिव्यक्ति आय की तुलना में उपभोग-व्यय नीची दर से बढ़ा है।
- आय का वितरण और उपभोग-वृद्धि का लाभ ऊपरी सतह के उपभोक्ताओं के पक्ष में अधिक हुआ है, जो देश में आर्थिक विषमताओं में वृद्धि होने का प्रतीक है।

गरीबी एक अभिशाप है और आय-विषमताएँ एक सामाजिक कलंक। इस संदर्भ में अमर्त्य सेन का यह कथन महत्वपूर्ण है कि गरीब कोई एक आर्थिक वर्ग नहीं है। गरीबी बहुत-सी आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है। इसलिए गरीबी की समस्या का हल करने के लिए स्वयं गरीबी की संकल्पना से परे जाना होगा। इस आधार पर विभिन्न लोगों के बीच अंतर करना आवश्यक है। अमर्त्य सेन के अनुसार, गरीबी के विश्लेषण में दो चरण होने चाहिए। पहले चरण में तो यह पता लगाना चाहिए कि अलग-अलग लोगों को कितना मिला और इस आधार पर प्रति व्यक्ति आय के किसी मापदंड के सहारे गरीबों का पता लगाना चाहिए। दूसरे चरण में हमें इस बात का अनुमान लगाना चाहिए कि स्थिति वास्तव में कितनी 'ख़राब' है और एक ख़राब स्थिति दूसरी ख़राब स्थिति से कितनी भयावह है। यह जानना काफ़ी नहीं है कि कितने लोग गरीब हैं। यह जानना भी महत्वपूर्ण है कि गरीब 'कितने' गरीब हैं।<sup>7</sup>

### **गरीबी निवारण के कार्यक्रम :**

ग्रामीण जनसंख्या के उत्थान और देश में बढ़ रही आय की असमानताओं को कम करने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक विकास एवं रोज़गारपरक कार्यक्रम आरंभ किए गए। इन कार्यक्रमों का मौलिक उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ-साथ

सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना था। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए सरकार ने अनेक परियोजनाओं का शुभारंभ किया। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाएँ विकास में संबंधित थीं। चौथी और पाँचवी योजनाओं में गरीब एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के उत्थान के लिए अनेक राजगारपरक कार्यक्रमों का सूत्रपात हुआ। पाँचवी पंचवर्षीय योजना में गरीबी निवारण प्रमुख उद्देश्य था, जिसे लक्षित करते हुए अनेक विकासपरक कार्यक्रम लागू हुए।<sup>8</sup>

विभिन्न योजनाओं में गरीबी उन्मूलन और रोजगार सृजन के चलाए गए प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं—

1. स्व-रोजगार कार्यक्रम— : स्वर्ण ज्यंती ग्राम स्वरोजगार योजना
2. मजदूरी रोजगार कार्यक्रम—  
: संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना  
: प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना
3. शहरी निर्धनता दूर करने के लिए कार्यक्रम—  
: स्वर्ण जयंती शहरी योजना योजनाएँ।
4. राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम—  
: राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना।  
: राष्ट्रीय राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना  
: राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना
5. अन्य योजनाएँ—निर्धनता को दूर करने की दृष्टि से कुछ अन्य प्रमुख योजनाएँ निम्नवत् हैं—  
1. सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना—28 फरवरी 2008 को वित्तमंत्री द्वारा घोषित।  
2. जननी सुरक्षा योजना—8 मार्च 2003 को केंद्रीय स्वास्थ्य एवं संसदीय कार्यमंत्री द्वारा घोषित।  
3. जयप्रकाश नारायण रोजगार गारंटी योजना—फरवरी 2002 के बजट में वित्तमंत्री द्वारा घोषित।  
4. हरियाली योजना—27 जनवरी 2008 को प्रधानमंत्री द्वारा घोषित।  
5. आश्रय बीमा योजना—वर्ष 2001-02 के बजट में घोषित।  
6. खेतिहर मजदूर बीमा योजना—1 जुलाई 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।  
7. शिक्षा सहयोग बीमा योजना—1 जुलाई 2001 से इस योजना को पूरे देश में लागू किया गया है।  
8. अंबडेकर-वाल्मीकि मलिन बस्ती आवास योजना—15 अगस्त 2001 को घोषित।  
9. महिला स्वाधार योजना—जुलाई 2001 को मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा घोषित।

#### आलोचनात्मक मूल्यांकन :

गरीबी-निवारण युक्ति की निम्नलिखित आलोचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं—

1. गरीबी-निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केंद्रित रहा है,

इसलिए दीर्घकालीन आधार पर गरीबी को दूर करने के लिए आवश्यक सामाजिक आगतों की आपूर्ति पर ध्यान नहीं किया गया है। इसका अर्थ यह है कि परिवार-कल्याण, पौष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है।<sup>9</sup>

2. इस कार्यक्रम में अपाहिज, बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है। इन लोगों की समस्या अलग है, क्योंकि ये सामान्य आर्थिक गतिविधियों में हिस्सा नहीं ले सकते।

3. गरीबी-निवारण के कार्यक्रमों की सफलता को जाँचने के लिए इस कसौटी का प्रयोग करना कि गरीबी की रेखा को कितने लोग पार कर सके हैं, उपयुक्त नहीं है। इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे, विभिन्न लोगों के आय-स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इस संदर्भ में अमर्त्य सेन का यह सुझाव है कि गरीबी की रेखा से नीचे वाले आय वर्गों को अलग-अलग भार दिए जाए।<sup>10</sup>

इस प्रकार ऐसा लगता है कि जब तक मूल ढाँचागत परिवर्तन नहीं लाए जाते, तब तक गरीबी निवारण के कार्यक्रमों से लाभा गरीबी लोगों की तुलना में धनी व मध्यम आय वर्गों के लोगों को कहीं ज्यादा होंगे (हालाँकि ये कार्यक्रम गरीबों के लिए ही बनाए जाते हैं) निष्कर्ष यह है कि जब तक संरचना में आमूल परिवर्तन नहीं होते अर्थात् जब तक उत्पादन-संबंधों को बदला नहीं जाता तब तक हमारे जैसे देश के गरीबों के लिए बहुत अधिक आशा करना व्यर्थ है।

#### संदर्भ

1. एस०पी० सिंह, आर्थिक विकास एवं नियोजन, एस० चंद एंड कंपनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली 2001, पृ० 50
2. वही, पृ० 591
3. मिश्र-पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालय पब्लिशिंग हाउस 1999, पृ० 165
4. डा० सिन्हा, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस०वी०पी०डी० पब्लिकेशंस 2009, पृ० 253
5. Government of India, Planning Commission, Sixth Five year plan 1980-85 (New Delhi 1981) P 51
6. डॉ० एस०सी० जैन एवं डॉ० अनुपम अग्रवाल, विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, साहित्य भावन पब्लिकेशंस, आगरा 2008, पृ० 121
7. Amartya Sen, Poverty & Economic Development, in Charan D. Wadhva (Ed). Some Problems of India Economic Policy (New Delhi, 1977) P 246
8. डॉ० एस०सी० जैन एवं डॉ० अनुपम अग्रवाल, विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, साहित्य भावन पब्लिकेशंस, आगरा 2008, पृ० 125
9. S.C. Jain, Poverty Alleviation Programmes in India : Some Issues of Macro Policy. India Journal of Agriculture Economics, July September 1986 P 386-99.
10. A.K. Sen, The Welfare Basis of Rural Comparison, Journal of Economic Literature, Vol. 17 March 1979.

12 पत्थर कालोनी, वीसलपुर ( पीलीभीत )

## मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यास-त्रयी में नारी-विमर्श

डॉ० परविंदर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर

स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (तवी)

यूँ तो विश्व में नारी-मुक्ति का लंबा इतिहास है, लेकिन 19वीं शताब्दी में यह विश्वव्यापी आंदोलन बन गया और अमरीका तथा यूरोप से होता हुआ भारतीय समाज तक पहुँच गया। नारी-विषय पर वाद-विवाद और संवाद की संभावना को विदेशी आयात कहकर बार-बार खारिज किया जाता रहा है। बावजूद इसके वक्त ने बता दिया है कि भारत में नारी-विमर्श की अपनी धरती है और चिंतन का यह अंकुरण अपनी धरती की छाती फोड़कर वटवृक्ष कामना के साथ बढ़ा हो रहा है। मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यास-त्रयी<sup>1</sup> ने नारी-लेखन पर लगे आरोप को सिरे से खारिज कर दिया है कि यह घर-परिवार की चारदीवारी तक ही सीमित रहता है। इनके उपन्यासों का एक सिरा नारी-देह-मुक्ति से जुड़ा है तो दूसरा नारी की सामाजिक-राजनीतिक प्रतिबद्धता से।

इसमें कोई संदेह नहीं कि नारी के पास संतान-उत्पत्ति का नैसर्गिक सामर्थ्य है, परंतु इस सामर्थ्य पर उसका कभी अधिकार नहीं रहा। न चाहते हुए भी पुरुष के संसर्ग मात्र से गर्भ रह सकता था। स्त्री के लिए संभोग का आनंद सदैव अनचाहे गर्भधारण की आशंका से आक्रांत रहता था। संभवतः इसीलिए पुरुष ने मातृत्व को इतना गौरवान्वित किया होगा, लेकिन उसी मातृत्व को जो पुरुष के संरक्षण में उससे विवाह करने के पश्चात् प्राप्त होता है। विवाहेतर मातृत्व को कलंकित एवं कलुषित घोषित कर दिया गया। अर्थात् महिमा माँ बनने में नहीं, पुरुष को विधिवत् पिता बनाने में थी। इस प्रकार संतान-उत्पत्ति का सामर्थ्य पुरुष के संरक्षण व प्रभुत्व में आ गया ताकि उसके बिना स्त्री माँ बनने से डरे, माँ बनने से डरेगी तो संभोग से डरेगी, प्रेम करने से डरेगी, डरेगी तो उस आनंद को नकारने लगेगी जो प्रेम, संभोग और शिशु-प्राप्ति में निहित है। परंतु आधुनिक नारी इन सामाजिक बंधनों को स्वीकारते हुए भी दैहिक सुख को नकार नहीं पाती। 'यह जल निरमल है यह मेला? पवित्र है या पाप? इमरत है कि बिस? ... आदमी जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है, तो कहाँ देखता है कहाँ सोचता है, कहाँ करता है कोई भेद? कोई अंतर?'<sup>2</sup>

'चाक' उपन्यास में विधवा रेशम के गर्भवती होने की बात सुनकर बूढ़ी सास की आँखें फटी रह जाती हैं, परंतु रेशम सहज भाव से अम्मा को समझाती है— 'अम्मा! तुम बिरथा

दाँत क्लिकटिका रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठंडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती? जीतो-मरतों का भेद भी भूल गईं तुम? बेटा संग मैं भी मरी मान ली? <sup>3</sup> रेशम बिना बाप के बच्चे को जन्म देने में किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं करती। बूढ़ी सास इसे पापकर्म मानती है परंतु रेशम का उत्तर स्पष्ट एवं सटीक है— 'मैं तो पुन कर रही हूँ अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँआरी-विधवा की कोख सुखा डालता।' <sup>4</sup> मैत्रेयी पुष्पा स्त्री-देह की नैसर्गिक आवश्यकता का समर्थन करती है— 'रेशम विधवा थी— जमाने के लिए, रीति-रिवाजों के लिए, शास्त्र-पुराणों के चलते, घर और गाँव के लिए। विधवा सिर्फ विधवा होती है, वह औरत नहीं रहती फिर। यह बात पता नहीं उसे किसी ने समझाई की नहीं? किसी ने कहा नहीं कि इच्छाओं के रेशमी तारों में आग लगा दे रेशम? उसने तो केवल इतना माना कि पेड़ हरा-भरा रहे तो फूल-फल क्यों नहीं लगेंगे? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और बल्लरी लता फूले नहीं? औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं?' <sup>5</sup>

नई सदी की नारी इतनी जागरूक हो चुकी है कि पौराणिक कथाओं का अंधानुकरण उसके बस का नहीं रहा। वह प्रत्येक कथा को तर्क की कसौटी पर कसती है। उसका मानना है— 'वे सब पुरुष-प्रधान समाज के अवसरवादी प्रसंग हैं। एक और पतिव्रता धर्म की परिभाषा करता राम के साथ सीता का वनगमन, दूसरी ओर उसी निष्ठा को तोड़ता मर्यादा पुरुषोत्तम राम का सीता की अग्नि-परीक्षा लेना। सीता ने क्यों नहीं माँगा कोई सबूत कि हे भगवान कहे जाने वाले राम, तुम भी तो उस अवधि में मुझसे अलग रहे हो, अपने पवित्र रहने के साक्ष्य दो।' <sup>6</sup> इसके अतिरिक्त माता दयावती का अपनी बहुओं को वंश चलाने की खातिर ऋषि के सामने गंगी अवस्था में खड़ी कर देना तथा द्रौपदी को पाँच भाइयों में विभाजित कर देना कहाँ तक न्यायसंगत है? <sup>7</sup> मंदा इन पुरानी परंपराओं की थोथी और दुखदायिनी नीति की अंधभक्ति से बचने की प्रेरणा देती है— 'पुरुष-पूजा को मान-मर्यादा का नाम न दो। तुम उसी परंपरा को तो निभाने की कोशिश कर रही हो और उसी का फल है कि आज तक हमारे घर की स्थिति वही की वही है और बुरी।' <sup>8</sup> स्त्री-पुरुष के संदर्भ में सामाजिक दोगलेपन के प्रति नारी की प्रश्नाकुलता स्वाभाविक है। पत्नी के मृत्युपरांत पुरुष को दूसरी औरत चाहिए तो स्त्री को क्यों नहीं? विधवा प्रेमा को दूसरे पुरुष के साथ चले जाने पर मिली सामाजिक प्रताड़ना के प्रति मंदा के प्रश्न— 'क्या अम्मा स्त्री होने के नाते दंड की, मखौल की, हेय दृष्टि की भागीदार है? यदि ऐसा नहीं है तो उन पुरुषों से अटपटे प्रश्न क्यों नहीं पूछता कोई? उन्हें क्यों नहीं निकाल देता घर से कोई? उनकी निगाह नीची क्यों नहीं होती?' <sup>9</sup> समाज के दोहरे मानदंडों को बेनकाब करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री की दैहिक भूख को आदिम इच्छा मानते हुए भी इसका उदात्तीकरण किया है। इसे शरीर-भोग की कामना से परे आत्मा के स्तर पर ले जाकर स्थापित किया है। 'इदन्नमम्' की नायिका मंदा का मकरंद के प्रति प्रेम एकांतिक ऐंद्रिय अनुभूति से विस्तार पाता हुआ समाज-सेविका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मंदा के भीतर यह द्वंद्व सदैव चलता रहता है कि 'क्या उसमें वे इच्छाएँ, कामनाएँ, आकाक्षाएँ नहीं हैं?' अंत में वह आदिम इच्छाओं के होने को नकार नहीं पाती, क्योंकि 'नींद है, भय है, भूख है, उसी तरह चाह है। आवेग-संवेग है, तृप्ति की अबूझ कामना है, अनुभूत दैहिक तरंगें हैं। मनोभावों में जाग्रत उमंगें



हैं, तभी तो मकरंद है। एक आकार, एक इष्ट, एक प्यार, क्षमा पाने के अ-दमित सपने। सपनों को साकार करने की लगन। जैसे एक रेशे से दूसरा जुड़ता है और अनंत डोर का निर्माण होता है, उसी तरह दैहिक-मानसिक तंतुओं से बनता है जीवन।<sup>10</sup>

जीवन में इस तरह मकरंद का होना विकट अँधेरे में जगमग लो का काम करता है और मंदा दुगने उत्साह के साथ समाज-सेवा में जुट जाती है। मकरंद उसकी जीजीविषा है—‘तुम्हारी यादें जीने की इच्छा जगाती रहीं मेरे भीतर और वही इच्छा बटोरती रही तुम्हारी खुशी, हर्ष-उल्लास। तुम्हारे आगे बढ़ने की कामना। डोर से डोर बँधती चली गई। तुम्हारा परस, तुम्हारी चितवन, छुअन, तुम्हारी साँसों की सुगंध, तुम्हारे प्रेम का अनहद नाद, कितनी निधियाँ हैं मेरे पास।’<sup>11</sup> मंदा का मकरंद के प्रति प्रेम विस्तार पाता हुआ समाज-सेवा में परिवर्तित हो जाता है। उसकी माँ प्रेमा को भी पछतावा है कि आज तक वह अपने पेट और देह की भूख को मिटाने में ही लगी रही—‘मन में पहले से ही यह अलख जागा होता तो हम भी समझ लेते कि रोटी और देह से आगे भी कोई संसार है। परहित और दीनधर्म की भी कोई दुनिया है।’<sup>12</sup>

इसी प्रकार ‘अल्मा कबूतरी’ में भूरी अपने पति की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए देह के प्रयोग को हेय नहीं मानती। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है—‘पतिविरता लुगाई अपने आदमी के संग सत्ती होती है। मैं अपने मर्द की ब्याहता खुद को तब मानूँगी, जब रामसिंह को पढ़ा-लिखा कर इसी कचहरी के दरवाजे खड़ा कर दूँगी। भले इस सफ़र में मुझे दस मर्दों के नीचे से गुज़रना पड़े।’<sup>13</sup> वह पति की एक बात कभी नहीं भूली कि ‘पढ़े-लिखे अनपढ़ों की क्स्मित लिखें तो अनपढ़ क्या पाएँ?’ इसी वाक्य से प्रेरित होकर वह अपने बेटे को पढ़ाना चाहती है, ताकि उसका बेटा अन्याय का विरोध कर सके। बिरादरी के लोग उसे दूसरा पति करने के लिए कहते हैं, परंतु वह दृढ़-संकल्प है—‘मैं किसी मर्द की बाँह पकड़कर क्या रामसिंह के बाप को भूल जाऊँगी? भूल भी जाऊँ तो उसकी कही बात नहीं भूल पाऊँगी। सो बिरादरी के चलते पाप करती ही रहूँगी। जिन दिन रामसिंह के बाप का लाल खून नीली स्याही में बदलकर अपने हक में चार आँक लिख लिए, समझूँगी मुझमें राई-भर कलंक नहीं। विद्या-रत्न के आगे देह का ख़ज़ाना कुछ भी नहीं।’<sup>14</sup>

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में नारी के व्यक्तिनिष्ठ ऐंद्रिय प्रेम का उदात्तीकरण करते हुए उन्हें समाज-सेविका के रूप में राजनीति के क्षेत्र में उतारा है। इसके लिए तर्क स्पष्ट है—‘जब घर-परिवार में औरत का दखल हो सकता है तो राजनीति में क्यों नहीं।’<sup>15</sup> आज राजनीति नीति की धुरी से अपदस्थ होकर निहित स्वार्थसिद्धि-मात्र रह गई है। परिणामतः चारों ओर दंगे, आंदोलन, घेराव, बंद, भाषा-जाति व प्रांत-भेद आदि खड़े हो रहे हैं। राजनीति व्यक्ति को आगे ले जाने वाली नहीं, अपितु स्वयं आगे निकल जाने वाली है। कहने को हम प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली के अंतर्गत आते हैं, परंतु हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और। इदन्नमम् में बाबा आधुनिक राजनीति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं—‘नौकरशाह और राजनेताओं के हाथ का खिलौना हो गया है हमारा जीवन, यहाँ प्रजातंत्र नहीं, शासन-तंत्र लागू है। बिटिया, सरकार क्या नागरिकों से बड़ी होती है?’<sup>16</sup> आज राजनीति में भ्रष्टाचार इतना फैल चुका है कि लोगों को किसी दल अथवा नेता पर विश्वास ही नहीं रहा। राजनेता अपने दोगलेपन के कारण जनता के विश्वासपात्र नहीं रहे—‘ये अंधे, बहरे और सुन्न आदमी, संवेदनशून्य इंसान

पाँचों इंद्रियों को जाग्रत करते हैं तो वोटों के समय तब ही चेतते हैं हड़बड़ाकर ... वास्तव में नेता लोग हमें जीवित आदमी नहीं, केवल वोट समझते हैं। हम सोचने-समझने का माद्दा रखने वाले इंसान नहीं। इनकी निगाह में कागज़ पर टुकी मोहर हैं।’<sup>17</sup>

लोकतांत्रिक राज्य-व्यवस्था होने के बावजूद राजनेता भोली-भाली, अनपढ़ जनता को बहला-फुसलाकर वोट प्राप्त कर लेते हैं। वोट की राजनीति पर ‘इदन्नमम्’ में करारा व्यंग्य किया गया है— ‘ऐसा नहीं है कि कुछ भी न मिलता हो। हर वोटर को उसके वोट की कीमत धरते हैं ... कार्यकर्ता। दो सौ, तीन सौ, चार सौ और पाँच सौ तक में निपटा लेते हैं सौदा।’<sup>18</sup> इसीलिए चुनाव को दंगल की परिभाषा दी गई है— ‘चुनाव माने दंगल ऐसा दंगल, जिसमें हर आदमी को कुश्ती लड़नी है, पैतरों पर पैतरा, दाँव पर दाँव लगाने की जुगत में अलावों को घेरे रहते हैं लोग-आधी रात तक।’<sup>19</sup> ‘अल्मा कबूतरी’ में तो राजनीतिक भ्रष्टाचार अपनी पराकाष्ठा पर चित्रित किया गया है। इसमें राजनीति का मोहरा बनी है बुंदेलखंड की विलुप्त होती जन-जाति-कबूतरा। मंसाराम जैसे राजनेता वोट प्राप्त करने के लिए इनका प्रयोग करते हैं तो पुलिस इनके अवैध धंधों को रिश्वत लेकर बढ़ावा देती है। आज सरकार चलती ही पुलिस हत्यारों एवं डाकुओं के बल पर है। राजनीति में समाज-सेवकों का नहीं, डाकुओं का राज हो गया है। फूलनदेवी जैसे डाकू समर्पण द्वारा अच्छे नागरिक बनने की होड़ में राजनीति का क्षेत्र सँभाले हैं। डाकुओं के राजनीति में प्रवेश पर मैत्रेयी पुष्पा का व्यंग्य देखिए— ‘डाकुओं की सुरक्षित सीटें हो गई हैं शायद। आरक्षण आ गया है सबके हक का मामला है। ... यह भी मुमकिन है। सताए हुए बहिष्कृत लोगों में डाकू तो सबसे पहले आते हैं। चलो, यह सहूलियत अच्छी हुई, शायद यहीं से जुलम की दुनिया में बदलाव आए।’<sup>20</sup> परंतु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ ऐसी होती जा रही हैं कि डाकुओं को समर्पण द्वारा अच्छे नागरिक बनने की आवश्यकता नहीं रही। ‘अल्मा कबूतरी’ में बेटासिंह डाकू समर्पण के प्रति अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है— ‘समाजवादी पार्टी से प्रस्ताव आ चुका है, बी०जे०पी० के लोग चंदा माँग रहे हैं, काँग्रेस का गुपचुप निमंत्रण है। हौसलेमंद सामर्थ्यवान और पैसे को मिट्टी समझने वाला आदमी उन्हें कहाँ मिलेगा? सभी पार्टियों को ऐसे लोगों की तलाश है, अबे साले कतल और डकैती के केस देखें कि अपने बचने के मौके? नेता लोग हाथ जोड़ रहे हैं, तुम कहते हो समर्पण। वे हवा तो कबकी चली गई। अब तो हम देखेंगे कि समर्पण करने वाली पार्टियों में हमारे माफ़िक कौनसी है?’<sup>21</sup> ‘इदन्नमम्’ में राजनेताओं का चरित्रांकन आज के किसी भी भ्रष्ट नेता का हो सकता है— ‘राजनीति का आदमी डाकू, चोर और ठग से भी अधिक खतरनाक हो जाता है, क्योंकि इनमें से भी वह किसी एक का पेशा नहीं अपनाता। समय-समय पर तीनों के हथकंडे इस्तेमाल करता है और अपने-आपको सबके सामने ऐसा साध-तोलकर परोसता है कि भूले से भी भ्रम न हो उसकी असलियत का।’<sup>22</sup> ऐसी कुत्सित राजनीति में मैत्रेयी पुष्पा नारियों की सक्रिय भागीदारी चाहती हैं।

‘इदन्नमम्’ की मंदा भ्रष्ट नेताओं के प्रति विद्रोह करने में सफल होती है, क्योंकि जनता का उस पर अगाध विश्वास है— ‘मंदा इस गाँव की नहीं, इस क्षेत्र की भूमिसुता है, जो इस धरती की रग-रग को पहचानती है। जैसे यहाँ के आदमी की धड़कन से चलती हो उसकी साँसें।’<sup>23</sup> रामसजीवन जैसे राजनेता ऐसी जागरूक नारियों से डरते हैं। वह गाँव के लोगों को

मूर्ख समझकर उनके नाम के वोटों पर मोहर ठोककर पेटियाँ भरना चाहता है, परंतु उन्हीं में से एक बोल उठता है— 'ऐसा ग़ज़ब न कर देना रामसजीवन त्रिपाठी। यहाँ पर कोई मंदाकिनी नाम की लड़की है। महाकाली समझो। चुनाव कमीशन से लेकर डरई के अख़बारों तक में पहुँचा दी है उसने ख़बर कि हम वोटों का बहिष्कार करेंगे।' <sup>24</sup> इस प्रकार मंदा चुनाव का बहिष्कार कर राजनीतिक भ्रष्टाचार का विरोध करती है तो 'चाक' उपन्यास की सारंग जनता की माँग पर चुनाव में अपने पति के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। उसका विद्रोह तब फूटता है, जब उसका पति रंजीत अपने ही आदर्शों को रौंदता हुआ गाँव की राजनीतिक दलदल में फँसता हुआ दलदल हो उठता है। भारतीय समाज में आज भी पत्नी पति के विरुद्ध खड़ी नहीं होती, लेकिन जनहित के लिए उसे आगे बढ़ना ही है— 'यह गाँव चाहता है और चाहती हैं सारी औरतें। तुम्हारे लिए, तुम्हारे माथे पर ताज धरने की बात कोई नहीं सोच रहा। सिर्फ़ गाँव के लिए प्रधानी नहीं, सेवकाई करोगी तुम।' <sup>25</sup>

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की नायिका अल्मा प्रत्येक स्थिति को सीढ़ी बनाकर दीवारें फाँदती कबूतरी है। वह श्रीराम शास्त्री जो डाकू से राजनेता बन गए हैं की रखैल बनकर सत्ता में बनी रहती है ताकि पिछड़ी जन-जातियों को अधिकार दिलाने में सहायक हो सके। उसी के शब्दों में— 'आप जानते हैं मैं यहाँ क्यों रुकी हुई हूँ? आप समझते हैं कि मैं ज़िंदा भी क्यों हूँ? बड़ी सीधी बात है कि आप लोगों ने हमारी दुनिया उजाड़ी है। मैं आपको उजाड़े बिना नहीं मरूँगी। मैं सबको बता दूँगी कि पाप कहाँ पलता है? अपराध कौन लोग करते हैं। सताने और मारने वाले ठेकेदार कौन हैं? मेरे पिता ने इन्हीं बातों से समझौता करना चाहा था, यही उनका गुनाह रहा है, पर इतना तो समझती हूँ कि हमारे लिए क्या ग़लत और क्या सही?' <sup>26</sup> अंततः रामशास्त्री की हत्या के बाद उसे बबीना विधानसभा सीट के लिए सत्तारूढ़ पार्टी का संभावित उम्मीदवार खड़ा कर दिया जाता है।

मंदा, सारंग एवं अल्मा जैसी दृढ़ नारियाँ ही जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। आज इन जैसी महाकालियों की ही आवश्यकता है। राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय भाग लेने के लिए नारियों को प्रेरित करती हुई लेखिका कहती है— 'ग़रीब को धन के लिए, निर्बल को बल के लिए और अज्ञानी को ज्ञान के लिए संघर्ष करना पड़ता है, यह शास्त्रों में लिखी प्रमाणिक बात है। यदि ऐसा नहीं होता है तो इंसान और पशु में कोई फ़र्क नहीं। ... इसीलिए तुममें जो योग्यता है, उसको बेकार न जाने दो। यह क्यों मानने को तैयार नहीं होतीं कि तुम रंजीत से ज़्यादा कुशल हो, ज़्यादा समझदार हो, ज़्यादा साहसी हो, ज़्यादा व्यावहारिक और ज़्यादा दृढ़ हो? इसीलिए जिस काम में रंजीत असफल रहे हैं, तुम करने खड़ी हो जाओ।' <sup>27</sup> अतः सारंग रामराज्य की प्राप्ति के लिए नहीं अपितु अन्याय को रोकने के लिए चुनाव में खड़ी होती है। उसी के शब्दों में— 'रामराज्य लेकर हम क्या करेंगे? सीता की कथा सुनी तो है धरती में ही समा जाना है तो यह जद्दोजहद? अपने चलते कोई अन्याय न हो। जान की कीमत देकर इतनी-सी बात, छोटा-सा संकल्प करके निभाने की इच्छा है, बस।' <sup>28</sup>

निष्कर्षतः मैत्रेयी पुष्पा ने नारी को देह होते हुए भी देह के भूगोल से मुक्त कर मनुष्य की संज्ञा से विभूषित किया है। इनकी उपन्यास-त्रयी में चित्रित नारी मी मानवीय संबंधों के प्रति संवेदना तथा शोषण के विरुद्ध संघर्ष ही नारी-शक्ति के प्रतीक हैं। नारी के इस संघर्ष में

पुरुष प्रतिद्वंद्वी नहीं सहयोगी है क्योंकि नारी की चुनौती अपने समीकरण को छोड़कर पुरुष के समीकरण को पाना नहीं बल्कि अपने सत्य से वृहत् सत्य की परिधि तक जाना है। बदलते परिवेश, बदलती नारी और उसके कारण नारी के लिए निर्धारित मानदंडों में बदलाव सामाजिक संक्रांति को जन्म दे रहा है।

### संदर्भ

1. इदन्नमम्, चाक एवं अल्मा कबूतरी
2. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, पृ० 81
3. वही, चाक, पृ० 18
4. वही, वही, पृ० 19-20
5. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, पृ० 18
6. वही, वही, पृ० 269
7. वही, वही, पृ० 269
8. वही, वही, पृ० 270
9. वही, वही, पृ० 271
10. वही, वही, पृ० 268
11. वही, वही, पृ० 223
12. वही, वही, पृ० 272
13. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ० 74
14. वही, वही, पृ० 74
15. वही, वही, पृ० 400
16. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, पृ० 181
17. वही, चाक, पृ० 310-355
18. वही, चाक, पृ० 308
19. वही, वही, पृ० 274
20. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, पृ० 246
21. वही, अल्मा कबूतरी, पृ० 193
22. वही, इदन्नमम्, पृ० 355
23. वही, वही, पृ० 305
24. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम्, पृ० 305
25. वही, चाक, पृ० 400
26. वही, अल्मा कबूतरी, पृ० 370
27. मैत्रेयी, चाक, पृ० 401
28. वही, वही, पृ० 428

□ ई-५, निदेश अपार्टमेंट्स  
त्रिकुटा नगर, जम्मू तवी ( जम्मू-कश्मीर )  
09419204813

## महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

निश्तर खानकाही एवं डॉ० गिरिराजशरण	
गज़ल और उसका व्याकरण	150.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल	
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1	495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2	700.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश ( सचित्र )	1500.00
शोधसंदर्भ-भाग-1	500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2	550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3	525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4	595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5	795.00
तुकांत कोश	300.00

## समीक्षा-ग्रंथ

डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान/डॉ० अंजु भटनागर	500.00
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा/डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी	325.00
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य/डॉ० मनोज कुमार	250.00
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर/डॉ० दीपा के०	250.00
हिंदी का हास्य-व्यंग्य : विविध आयाम/	250.00
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत)/डॉ० मीना अग्रवाल	450.00
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य/डॉ० हरीशकुमार सिंह	350.00
साठोत्तरी हिंदी-गज़ल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	
का योगदान/डॉ० अनिलकुमार शर्मा	350.00
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ/डॉ० शंकर क्षेम	150.00
गज़ल : सौंदर्य और यथार्थ/अनिरुद्ध सिन्हा	150.00
समय के हस्ताक्षर ( हिंदी के आधुनिक कवि )/डॉ० ज्योति व्यास	150.00
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व/डॉ० लालबहादुर रावल	300.00
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार/डॉ० अशोककुमार	350.00
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन/डॉ० ओमदत्त आर्य	500.00

## हास्य-व्यंग्य

मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
बाबू झोलानाथ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00

राजनीति में गिरगिटवाद/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 100.00

### कहानी

जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 60.00  
पच्चीस कहानियाँ/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00  
कथा जारी है/बाबूसिंह चौहान 150.00  
इक्कीस कहानियाँ/सत्यराज 100.00  
अंदर धूप बाहर धूप ( नारी-मन की कहानियाँ )/डॉ० मीना अग्रवाल 150.00

### एकांकी-नाटक

मंचीय व्यंग्य एकांकी/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00  
बच्चों के हास्य नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
बच्चों के रोचक नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 175.00  
ग्यारह नुक्कड़ नाटक/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00  
संसार : एक नाट्यशाला/बाबूसिंह चौहान 150.00  
ग्यारह एकांकी/डॉ० हरिशरण वर्मा 200.00

### गीत-गुज़ल

निश्तर ख़ानकाही समग्र (प्रकाशनाधीन)/निश्तर ख़ानकाही 500.00  
मेरे लहू की आग (गुज़ल-संग्रह)/निश्तर ख़ानकाही 150.00  
कोई आवाज़ देता है/डॉ० कुँअर बेचैन 150.00  
दिन दिवंगत हुए/डॉ० कुँअर बेचैन 150.00  
कुँअर बेचैन के नवगीत/डॉ० कुँअर बेचैन 200.00  
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत/डॉ० कुँअर बेचैन 150.00  
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
सन्नाटे में गुँज (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 160.00  
भीतर शोर बहुत है (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 160.00  
मौसम बदल गया कितना (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 100.00  
रोशनी बनकर जिओ (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
शिकायत न करो तुम (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 150.00  
आदमी है कहाँ (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल 200.00  
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह)/डॉ० मीना अग्रवाल 150.00  
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह)/डॉ० मीना अग्रवाल 150.00  
फ़ासले मिट जाएँगे (गुज़ल-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह 150.00  
शब्द-शब्द संदेश (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह 150.00  
जीवन है मुस्कान (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह 150.00  
भीतर का संगीत (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह 200.00

सुख के बिरवे रोप (दोहा-संग्रह)/डॉ० बलजीत सिंह	200.00
बहती नदी हो जाइए/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	150.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा संग्रह)/डॉ० योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'	200.00

### हास्य-व्यंग्य

भञ्जी का जूता/महेशचंद्र द्विवेदी	150.00
क्लियर फंडा/महेशचंद्र द्विवेदी	120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग/महेशचंद्र द्विवेदी	170.00
वसीयतनामा/पं० सूर्यनारायण व्यास, सं० राजशेखर व्यास	150.00
नो टेंशन/डॉ० सुरेश अवस्थी	170.00
पैसे कहाँ से दें/डॉ० आशा रावत	200.00
चाहिए एक और भगतसिंह/डॉ० आशा रावत	100.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य उपन्यास)/डॉ० आशा रावत	100.00
नमस्कार प्रजातंत्र/महेश राजा	150.00
नमस्ते जी/डॉ० बलजीत सिंह	150.00
अब हँसने की बारी है/डॉ० बलजीत सिंह	200.00
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य/डॉ० शिव शर्मा	50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ० शिव शर्मा	150.00
अपने-अपने भस्मासुर/डॉ० शिव शर्मा	150.00
धमकीबाज़ी के युग में/निशतर खानकाही	60.00
ला खर्चा निकाल/गजेंद्र तिवारी	200.00
प्रतिनिधि व्यंग्य/दामोदरदत्त दीक्षित	100.00
पेट में दाढ़ियाँ हैं/सूर्यकुमार पांडेय	100.00
ये है इंडिया/डॉ० हरीशकुमार सिंह	120.00
आँखों देखा हाल/डॉ० हरीशकुमार सिंह	150.00
लिफ्ट करा दे/डॉ० हरीशकुमार सिंह	200.00

### उपन्यास

अनोखा उपहार/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	200.00
आसरा/श्रीमती सुषमा अग्रवाल	100.00
अराज-राज/डॉ० मोहन गुप्त	200.00
सुराज-राज/डॉ० मोहन गुप्त	350.00
एक बौना मानव/महेशचंद्र द्विवेदी	100.00
लघु कथाएँ/डॉ० हरिशरण वर्मा	150.00

### बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (बालगीत)/ शंभूनाथ तिवारी	150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत)/ गीतिका गोयल	150.00

किशोर मन की कहानियाँ/ डॉ० सरला अग्रवाल	150.00
यह है मानव-सभ्यता की कहानी/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
बच्चों के अनुपम नाटक/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	175.00
बच्चों के उत्तम नाटक/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	175.00
भारतीय गौरव के बाल नाटक/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	175.00
पार्टी गेम्स/ चाँदनी कक्कड़	125.00

### विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन/ डॉ० सरिता शाह	200.00
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष/ डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत)/ निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
नारी : कल और आज/ निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण, डॉ० मीना अग्रवाल	200.00
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे/ निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	125.00
हिंसा : कैसी-कैसी/ निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	200.00
दंगे : क्यों और कैसे (पुरस्कृत)/ निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण	100.00
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत)/ रमेशचंद्र दीक्षित, निशतर खानकाही, डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	300.00
सुरक्षा-संस्कृति/ रमेशचंद्र दीक्षित, गिरिराज शाह, गिरिराजशरण अग्रवाल	150.00
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन/ डॉ० गिरिराज शाह	200.00
गुरु नानकदेव/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	40.00
अमृतवाणी/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	60.00
आप भी तनावमुक्त हो सकते हैं/ डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल	250.00
वेद-वेदान्त दर्शन/ डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व/ डॉ० मूलचन्द दालभ	300.00
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स/ डॉ० गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर	450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी/ मनोज भारद्वाज	150.00
समुद्री दैत्य सुनामी/ डॉ० लालबहादुर रावल	150.00
यादों की गुल्लक/ गीतिका गोयल, अनुभूति भटनागर (संपादक)	300.00
मेरा जीवन : ए-वन/ काका हाथरसी	100.00

### प्रकाशक

## हिन्दी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 09368141411